T

RIT SER

श्री पं.. म. दे. ...साद भट्ट
आयुर्वेद ...

डा. ... ...लित पोंडपाल
एम.बी. (...)
एम.पी. एच. (... ...)

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

...कुर साहिब को ११७

...रवणारिन

१ माजामा

आईको कुल वचौराई - १

पालनीकुरगुरअंकुर ल १

शुद्धमद वमवा - १

सुसालधुप लो १

...को पुडी आधालोवा को आधा

पीली ~~...~~ र गोडी ला

दिपालाति के हुंद अनुभव सिद्ध

THE

HARIDAS SANSKRIT SERIES

91

Rasaratna Samuchchaya

by

S'RĪ VĀGBHATĀCHĀRYA

Edited with-

THE SURATNOJJVALĀ HINDI COMMENTARY

and

Notes, Introduction, Indices, Appendices etc,.

By

PANDIT S'RĪ AMBIKĀDAṬṬA S'ĀSTRĪ

Āyurvedāchārya (A. M. S.) B. H. U.

PUBLISHED BY

JAYA KRISHNA DÂS HARIDÂS GUPTA

The Chowkhamba Sanskrit Series Office.

Benares City.

1939

PRINTED BY

JAYA KRISHNA DAS GUPTA,

VIDYA VILAS PRESS, BENARES CITY.

1939.

Registered According to Act XXV of 1867.

All Rights Reserved by the Publishers.

॥ श्रीः ॥

हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला

९९

श्रीवाग्भटाचार्यविरचितः

रसरत्नसमुच्चयः ।

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयेऽधिगतप्राच्यपाश्चात्य
चिकित्साशास्त्रतत्त्वेन श्री कृष्णात्मजेन
आयुर्वेदाचार्य, ए. एम्. एस्. इत्युपाधिधारिणा
पण्डित श्री अम्बिकादत्त-शास्त्रिणा
विरचितया—
पारदगन्धकाभ्रकलाहताम्रादिरसोपरसधातूपधात्वादीनां विज्ञानानुमत-
वर्णनोपेतेन ज्वरादिसमस्तरोगपथ्यापथ्यप्राच्यपाश्चात्यमतानुमत-
निदानाद्यनेकविषयोपबृंहितेन च
विमर्शेण विभूषितया—
सुरत्नोज्ज्वलाख्य-भाषा-टीकयाऽलङ्कृतः
तेनैव संशोधितश्च ।

प्रकाशकः—
जयकृष्णदास हरिदास गुप्तः
चौखम्बा संस्कृत सीरिज़ आफिस,
विद्याविलास प्रेस, बनारस सिटी ।

१९९६

इस्मा प्रकृती॥
आजस्वं आजवं नमोकना
रत-मुलेमानदी ५०२०।३५
गोरप हिसीध्द ज़ेद: फरवरी
(लारदेवाडनेगोवेर)

भूमिका

वर्तमान् समय में पृथ्वीमण्डल पर अनेक चिकित्सा प्रणालियां प्रचलित हैं जैसे आयुर्वेद, एलोपेथी, होमियोपेथी, यूनानी, जलचिकित्सा (हाइड्रोपेथी), विद्युच्चिकित्सा आदि। इन सब चिकित्साओं की जननी कहलाने का सौभाग्य आयुर्वेदचिकित्सा प्रणाली को ही प्राप्त है, अथवा यों कह सकते हैं कि इन सब का अन्तर्भाव आयुर्वेद के अन्दर ही हो सकता है। जो लोग एलोपेथी ही को वैज्ञानिक कह कर अन्य चिकित्सा को अवैज्ञानिक कहने का साहस करते हैं उनकी धारणा एक दम असत्य है क्योंकि एलोपेथी के अन्दर जितने भी विषय (Anotomy, Physiology, Surgery, Toxicology, Jurisprudence, Midwifery, Materiamedica, Medicine etc.,) हैं उन सबका वर्णन आयुर्वेद के अन्दर करोड़ों वर्ष पहिले से लिखा हुआ मिलता है। इस लिए हम दावे के साथ कह सकते हैं कि संसार भर की चिकित्साप्रणालियों में सर्वप्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ यदि कोई चिकित्सा प्रणाली है तो वह आयुर्वेदचिकित्सा प्रणाली ही है। हमारे आयुर्वेद के अन्दर इस समय कोई शाखा पिछड़ी हुई है तो वह सिर्फ शल्यशालाक्य चिकित्सा ही है। इसका कारण इस शाखा को प्रोत्साहन नहीं मिलना है तथा वैद्यबन्धुओं का आलस्य और आधुनिक भूपालों की उपेक्षा आदि है। अब इसकी सर्वोत्कृष्ट उन्नति होने का समय अत्यन्त निकट ही है। अस्तु आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली आसुरी, मानुषी और दैवी इस तरह तीन भागों में विभक्त है जैसे कहा भी है—

सा दैवी प्रथमा सुसंस्कृतरसैर्या निर्मिता सद्रसै-
श्चूर्णस्नेहकषायलेहरचिता स्यान्मानवी मध्यमा।
शस्त्रच्छेदनलास्यलक्ष्मणाकृताऽचाराधमा साऽऽसुरी-
त्यायुर्वेदरहस्यमेतदखिलं तिस्रश्चिकित्सा मताः ॥ १ ॥

आसुरी मानुषी दैवी चिकित्सा त्रिविधा मता।
शस्त्रैः कषायैर्लोहाद्यैः क्रमेणान्त्याः सुपूजिताः ॥ २ ॥

इन तीनों में दैवी (रस) चिकित्सा सर्व श्रेष्ठ मानी गई है। यह मानना सोलहों आना (पूर्णतया) सत्य भी है क्योंकि शस्त्रचिकित्सा केवल वर्धित या विकृत हुए शरीराङ्ग को काट सकती है। किन्तु उस विकार का पूर्ण निर्मूलन नहीं कर सकती है। जैसे अर्श (Piles), अर्बुद (Tumours) आदि का छेदन करने पर भी अनेकों बार उनकी पुनरुत्पत्ति होते देखी गई है किन्तु रसचिकित्सा के द्वारा चिकित्सा करने पर लाभ (रोगनाश) देर से होता है किन्तु स्थाई होता है इस लिए रसचिकित्सा सर्वोत्तम है। रसों के सेवन करने से शरीर रोगों से प्रथम ही पृथक् रहता है।

"प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्"

इस लिए इस चिकित्सा को दैवी चिकित्सा कहना अत्युक्ति नहीं है अपि तु यथार्थ हो है। अत एव रसचिकित्सक सर्व चिकित्सकों में उत्तम "उत्तमो रस वैद्यस्तु मध्यमो मूलिकादिभिः।

अधमः शस्त्रदाहाभ्याम्"

माना गया है। यद्यपि काष्ठौषधियों द्वारा निर्मित चूर्ण, अवलेह आदि भी शरीर के लिये हितकर हैं तथापि चूर्ण अवलेहादिक को तरह रसों का अधिक प्रयोग नहीं करना पड़ता है तथा रस अरुचिकर कभी भी नहीं होते हैं और शीघ्रातिशीघ्र शरीर को आरोग्य प्रदान करते हैं।

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः॥

इस लिये निर्विवाद सिद्ध हो गया कि रसचिकित्सा अन्य चिकित्साओं में तो श्रेष्ठ है हो परन्तु आयुर्वेदीय 'अष्ट' 'अङ्गों' में भी सर्व प्रथम मानी गई है। इस रस चिकित्सा का आविर्भाव सर्व प्रथम महादेवजी ने किया है। अत एव यह चिकित्सा दैवी है। बाद में रसचिकित्सा के प्रवर्तक कई आचार्य हुए हैं।

आदिमश्चन्द्रसेनश्च लङ्केशश्च विशारदः।
कपालीमत्तमाण्डव्यौ भास्करः शूरसेनकः॥ १॥
रत्नकोशश्च शम्भुश्च सात्विको नरवाहनः।

इन्द्रदो गोमुखश्चैव कम्बलिर्व्याडिरेव च ॥ २॥
नागार्जुनः सुरानन्दो नागबोधिर्यशोधनः ।
खण्डः कापालिको ब्रह्मा गोविन्दो लम्पको हरिः ॥ ३ ॥

इन आचार्यों ने कई रस ग्रन्थ बनाये हैं । निम्न रसतन्त्र या संहिताओं का नामोल्लेख मिलता है।

रसेन्द्रसंहिता	सिद्धलक्ष्मीश्वरतन्त्र	चन्द्रसेनसिद्धान्त
दत्तात्रेयसंहिता	लम्पटतन्त्र	लङ्केशसिद्धान्त
अगस्त्यसंहिता	स्वच्छन्दभैरवतन्त्र	कपिलसिद्धान्त
नासत्यसंहिता	मन्थानभैरवतन्त्र	ब्रह्मसिद्धान्त
गोरक्षसंहिता	काकचण्डीश्वरतन्त्र(१)	रसरत्नाकर
रुद्रयामलतन्त्र	हरीश्वरतन्त्र	रसरत्नप्रदीप
महारसायनतन्त्र	महादेवतन्त्र	रसपारिजात
कामधेनुतन्त्र	नागार्जुनतन्त्र	रसेन्द्रसारसङ्ग्रह
दत्तात्रेयतन्त्र	बालतन्त्र	रसरत्नसमुच्चय आदि।

इनमें से बहुत से ग्रन्थ लुप्त हैं तथा जो मिलते हैं उनमें यह रसरत्नसमुच्चय नामक ग्रन्थ भी रसचिकित्सा का एक सर्वाङ्गीण ग्रन्थ है। यद्यपि इस का प्रचार कुछ वर्षों पहिले कम था किन्तु इसके अन्दर अनेक रसों के उत्तमोत्तम योग तथा पारद के अनेक संस्कारों का उत्तम वर्णन होने से अब दिनों दिन इसकी आवश्यकता बढ़ती जा रही है तथा यह ग्रन्थ अब वैद्य समुदाय में अधिक प्रचलित हो रहा है तथा विहार आदि अनेक स्थानों की सम्मानित परीक्षाओं में भी रखा हुआ है। इस ग्रन्थ में अनेक उत्तमोत्तम योग हैं, जिनका अनुभव करना अत्यन्त आवश्यक है । यदि इन योगों का प्रयोग किया जाय तो चिकित्सा में आश्चर्यजनक लाभ हो सकता है । यह ग्रन्थ तीस अध्यायों में विभक्त है।

प्रथमाध्याय-में हिमालयवर्णन, रस (पारद) के उत्कर्ष का वर्णन, मूर्च्छित पारद के गुण तथा उसकी उत्पत्ति, भेद और निरुक्ति आदि पारदसम्बन्धी वर्णन है।

---

(१) काशी संस्कृत ग्रन्थमाला नं० ७३ में मुद्रित है।

द्वितीयाध्याय-में आठ महारसों के भेद, गुण, शोधन तथा मारण और उनकी उत्पत्ति का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। यथा—

अभ्रवैक्रान्तमाक्षीकविमलाद्रिजसस्यकम्।
चपलो रसकश्चेति........................॥

तृतीयाध्याय-में अष्ट उपरसों की उत्पत्ति, भेद, गुण, शोधन तथा उनके प्रयोगों का वर्णन है। यथा—

"गन्धाश्मगैरिकासीसकाङ्क्षीतालशिलाञ्जनम्।
कङ्कुष्ठं चेत्युपरसाः..............................॥

चतुर्थाध्याय-में रत्नों के भेद, नाम, गुण, शोधन, मारण और प्रयोगों का वर्णन है। यथा—

वैक्रान्तः सूर्यकान्तश्च हीरकं मौक्तिकं मणिः।
चन्द्रकान्तस्तथा चैव राजावर्तश्च सप्तमः॥
गरुडोद्गारकश्चैव ज्ञातव्या मणयस्त्वमी।
पुष्परागो गोमेदश्च पद्मरागः प्रवालकम्॥
वैदूर्यं च तथा नीलः........................॥

पञ्चमाध्याय-में शुद्धलोह (स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह अर्थात् मुण्ड, तीक्ष्ण, कान्त), पूतिलोह (नाग, वङ्ग) और मिश्रलोह (पित्तल, कांसा, भरत, रुक्मलोह) की उत्पत्ति, भेद, गुणदोष, शोधन, मारण और प्रयोगों का वर्णन है।

षष्ठाध्याय-में शिष्योपानयन, रसविद्या गुरुलक्षण, शिष्य और अनुचरों का गुण, रसशाला और रसमण्डप का निर्माण, रसलिङ्ग की स्थापना, पूजन और ध्यान, शिष्यदीक्षादानविधि, कालिनीलक्षण और होमविधि का वर्णन है।

सप्तमाध्याय-में रसशालानिर्माण, उपरस, महारस, अष्ट लोह और उपकरणों की पूजाविधि, पद्महस्तवैद्यादिकों का लक्षण तथा रससाधनीय पदार्थों का वर्णन और परिचारकों के लक्षण का वर्णन है।

अष्टम व नवम अध्याय-में क्रमशः परिभाषावर्णन, व दोलायन्त्र, विद्याधरयन्त्र, घटयन्त्र, पातनयन्त्रादिकों का वर्णन है।

दशमाध्याय–में विविध मूषा तथा विविधपुट तथा अम्लवर्ग, विष-वर्ग, दुग्धवर्ग, रक्तादिवर्ग, शोधनीयगणादिकों का वर्णन है।

एकादशाध्याय—में मानपरिभाषा, पारद के अष्टादश संस्कार तथा २५ प्रकार के बन्धनों का विस्तृत वर्णन है।

बारहवें से पच्चीसवें अध्याय–में शरीर में होने वाले समस्तरोगों (जैसे ज्वर, रक्तपित्त, कास, श्वास, हिक्का, वैस्वर्य, क्षय, अरुचि, प्रसेक, छर्दि, हृद्रोग, तृष्णा, मदात्यय, अर्श, उदावर्त, अतिसार, ग्रहणी, प्रवाहिका, विसूची, अग्निमान्द्य, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, सोमरोग, पिडिका, विद्रधि, वृद्धि, गुल्म, शूल, उदररोग, पाण्डु, शोफ, विसर्प, कुष्ठ, श्वित्र, वातव्याधि, वातरक्त, वन्ध्यारोग, गर्भिणीविकार, सूतिकारोग, बालरोग, उन्माद, अपस्मार, नेत्ररोग, कर्णरोग, नासिकारोग, मुखरोग, शिरोरोग, व्रण, अस्थिभग्न, भगन्दर, गलगण्ड, गण्डमाला, क्षुद्ररोग, उष्णवात (औपसर्गिक मेह) उपदंश आदि गुह्यरोग, विषजन्य रोग के लक्षण, भेद, निदान तथा चिकित्सा का विस्तृत वर्णन है।

छब्बीसवें अध्याय–में जरारोग की निदानचिकित्सा, मासिकरसायन, षाण्मासिकरसायन, पाक्षिकरसायन, अष्टमासिक रसायन, त्रिवार्षिक-रसायन, सहस्रवर्षायुष्करसायन, त्रिफलारसायन और कान्ताभ्रक रसायनादि का वर्णन है।

सत्ताइसवें अध्याय–में वाजीकरण के लिये अनेक प्रकार के दिव्य रसों का वर्णन तथा स्तम्भनशक्तिवर्द्धक उपाय हैं।

अट्ठाइसवें अध्याय–में लोह अर्थात् स्वर्ण, रजत ताम्रादिकों के अनेक कल्पों का वर्णन है।

उन्तीसवें अध्याय–में विषों की उत्पत्ति, विषों के भेद, गुणदोष तथा अनेक रोगों पर विषके कल्पों का वर्णन है।

तीसवें अध्याय–में रसमारण, रसजारण तथा रस (पारद) के अनेक रोगों को नष्ट करने के लिये अनेक कल्पों का वर्णन, ग्रन्थोप-संहार, आचार रसायन, आयुर्वेदोपदेश का पालन, कुवैद्यवर्जन, शास्त्रज्ञ वैद्य का साफल्य, चिकित्सा की सर्वत्र सफलता, वैद्य और रोगी

का परस्पर कर्तव्य, वैद्य की सर्वत्र आवश्यकता तथा ग्रन्थकार की विज्ञप्ति आदि का सुन्दर वर्णन है।

इस प्रकार प्रथमाध्याय से लेकर तीसवें अध्याय तक आये हुए विषयों के अवलोकन करने से इस ग्रन्थ की कितनी आवश्यकता है यह सहज ही में विदित हो सकता है। इस प्रकार का अन्य रस ग्रन्थ मिलना अत्यन्त असम्भव है। ऐसे ही रस ग्रन्थ के ऊपर अन्वेषण करने से आतुरों का अधिक हित तथा आयुर्वेद की उन्नति में परम सहायता हो सकती है। इस ग्रन्थ की हिन्दी में आजतक कोई ऐसी सरल तथा गूढार्थों का प्रबोध कराने वाली वैज्ञानिक अन्वेषण से परिपूर्ण टीका नहीं निकली थी। इस महती क्षति की पूर्ति के लिए काशीस्थ सुप्रसिद्ध चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय के अध्यक्ष श्रीमान् बाबू जयकृष्णदास जी गुप्त ने 'जो कि आयुर्वेदोद्धार तथा विद्वज्जन तथा आयुर्वेदामृतपान करने के लिए उत्कण्ठित छात्रों के हित का विचार सदा चाहते हैं, एक ऐसी विस्तृत भाषा टीका जो कि वैज्ञानिक व्याख्यानों से परिपूर्ण हो, लिखने के लिए प्रार्थना की। उस प्रार्थना को मैंने भी स्वीकार करके कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

इस ग्रन्थ की टीका के उत्तम रूप से समाप्ति होने में कई कारण हैं। सर्व प्रथम रसेन्द्र की संस्कृत टीका के अवलोकन करने से प्रसन्न हुए काशीस्थ वैद्यशिरोमणि गुरुजनों का शुभाशीर्वाद तथा मेवाडाधिराज रविकुलकमलदिवाकर श्री श्री श्री १००८ श्री जी हजूर भूपाल सिंह जी के प्रधान चिकित्सक (राजवैद्य) श्रीमान् डाक्टर रविशङ्कर जी का शुभाशीर्वाद तथा आगे आयुर्वेदोद्धार सम्बन्धी कार्य करने का प्रोत्साहन और उक्त महाराणाधिराज उदयपुर (मेवाड़) की पूर्ण स्नेहदृष्टि तथा सहायता ही प्रधान है।

इस टीका की विशेषतायें—

मूलग्रन्थ में जितने विषय लिखे हुए हैं उतने अन्य रस ग्रन्थों में इस प्रकार स्पष्ट और विस्तृत नहीं हैं अत एव यह ग्रन्थ स्वयं ही अत्यन्त उपादेय है, फिर भी टीका इतनी स्पष्ट और विस्तृत तथा वैज्ञानिक अन्वेषणों

से परिपूर्ण होने के कारण यह एक पूर्ण रस ग्रन्थ बन गया है तथा इसटीका के समान पूर्व में कोई ऐसी टीका नहीं थी और न बनेगी कारण यह है कि ग्रन्थारम्भसे लेकर ग्रन्थ समाप्ति तक मूलका अर्थ स्पष्टतया लिख कर नीचे विमर्श के अन्दर खनिजों का वैज्ञानिक पूर्ण वर्णन तथा रोगों का डाक्टरी के मत से भेद निदानादिक का जहां तहां वर्णन कर दिया गया है। अत एव मुझे पूर्ण विश्वास है कि ऐसी टीका "न भूता न भविष्यति" हां हो सकती है कि इसी का अनुकरण कर के कुछ इधर उधर परिवर्तन कर के अन्य टीका प्रकाशित हो किन्तु वह भी निम्न पद्यानुकूल होगी।
"उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी"
अस्तु जो कुछ है संसार के पूज्य विद्वानों की सेवा में उपस्थित है।

हंसः श्वेतो बकः श्वेतः को भेदो बकहंसयोः।
नीरक्षीरविभागे तु हंसो हंसो बको बकः॥

विशेषतायें—

[१]

प्रथमाध्याय में सर्व प्रथम लिखे हुए पारद के विषयका विमर्श ३८ पृष्ठों में वर्णित है। पारद का स्वरूप, सङ्केत (Symbol), परमाणुभार (Atomic weight), आपेक्षिकघनत्व (Relative Density). हिमाङ्क (Freezing Point), क्वथनाङ्क (Boiling Paint) आदि का परिभाषा के सहित वर्णन है तथा उसके पश्चात् पारद की उपस्थिति, पारद की सर्वप्रथम प्राप्ति, पारद निकालने योग्य खनिज, पारद की परीक्षा (Test), पारदीय खनिज प्राप्ति के स्थान, पारद के दोषों का समन्वय, पारद के भेद, शुद्धाशुद्धपारद के लक्षण आदि पारदसम्बन्धि अनेक बातों पर प्राच्य-पाश्चात्य मत से अच्छा वर्णन किया गया है जिस से हमारे वैद्य बन्धुओं को पारद के ज्ञान की विशेष करके नव्य ज्ञान की पूर्ण प्राप्ति हो जाय।

[२]

द्वितीयाध्याय में लिखित अभ्रकादिक अष्ट महारसों के विमर्श में प्रत्येक महारस की उत्पत्ति, भेद, प्राप्तिस्थान, गुणदोष आदि का आधुनिक मत से वर्णन है।

[३]

तृतीयाध्याय में लिखित गन्धकादिक अष्ट उपरसों की उपलब्धि, भेद, प्राप्तिस्थान आदि विषयों का वर्णन किया गया है।

[४]

एकादशाध्याय में पारद के संस्कारों की सब विधियां टिप्पणी के रूप में प्रत्येक स्थान पर लिखी गई हैं।

[५]

प्रत्येक ज्वर के लक्षण, प्रत्येक ज्वर का पथ्य तथा अपथ्य का विशेष उल्लेख किया गया है। साथ २ रसनिर्माण में जो २ पारिभाषिक शब्द आये हैं उन की टिप्पणी में परिभाषा लिख दी हैं।

[६]

इसी तरह रक्त पित्त, कास, श्वास, हिक्का, स्वरभङ्ग, राजयक्ष्मा, छर्दि, हृद्रोग, मदात्यय, अर्श, उदावर्त, अतीसार, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, वृद्धि, गुल्म, उदररोग, पाण्डु, शोथ, विसर्प, कुष्ठ, वातव्याधि, वातरक्त, भगन्दर, नेत्र रोग आदि समस्त रोगों के विषय में विमर्श लिख दिया है जिस में सब रोगों का पथ्यापथ्य तथा जहां तहां डाक्टरी मत से रोग भेद आदि का वर्णन भी किया गया है।

[७]

सर्व प्रकार के विषों का भेद, उन के शोधन की विधि तथा प्रयोगों का वर्णन किया गया है।

[८]

सर्व प्रकार के क्षुद्र रोगों का पृथक् २ लक्षण, पृथक् २ चिकित्सा तथा पथ्यापथ्य का अन्य रसग्रन्थों की सहायता से पूर्ण वर्णन कर दिया है।

[९]

कहीं २ पर अनेक रोग तथा उन की चिकित्सा का प्रक्षिप्त रूप से आवश्यक होने के कारण वर्णन कर दिया गया है।

[१०]

रसायन और वाजीकरण का लक्षण, कुटीनिर्माणविधि, चरकोक्ताचार, रसायन आदि अनेक उपयुक्त विषयों का चरक सुश्रुतादि ग्रन्थों के आधार पर वर्णन किया गया है।

इस तरह मैंने टीका की विशेषता को संक्षेप में दिखलाई है। विमर्शानुक्रमणिका के अवलोकन करने से विज्ञ महानुभावों को विदित हो जायगा कि यह टीका कहां तक उपयुक्त है।

इस टीका के लिखने में चरक, सुश्रुत, वाग्भट, रसेन्द्रसारसङ्ग्रह, भैषज्यरत्नावली, रसतरङ्गिणी, खनिजविज्ञान, प्रारम्भिक रसायन आदि अनेक ग्रन्थों की सहायता प्राप्त हुई है अतः उन ग्रन्थकर्ताओं के प्रति परम श्रद्धा प्रकट करता हूं तथा उनके ऋण से कभी भी निर्मुक्त नहीं हो सकता। सर्वप्रथम श्रीमान् विप्रकुलावतंस, हिन्दूविश्वविद्यालय के प्राण, देशोद्धारक, भगवद्भक्त, कुलपति महोदय श्रीमहामना मदनमोहन मालवीय जी के प्रति असीम श्रद्धा प्रगट करता हूं क्योंकि आप ही की साधना से यह प्राच्यनव्यायुर्वेदीय विद्यालय स्थापित हुआ और इसी में मैंने जन्तुशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र तथा आयुर्वेद और डाक्टरी का उच्चज्ञान प्राप्त करके इस प्रकार की वैज्ञानिक टीका के लिखने में प्रवृत्ति प्रदर्शित की। इस टीका के लिखने में विशेष कर अनेक जटिल स्थलों पर पूज्यपाद गुरुवर्य, चिकित्सकचूडामणि, आयुर्वेद विद्यालय (हिन्दू यूनिवरसीटी) के प्रधानाध्यक्ष श्रीमान् पं० सत्यनारायण जी शास्त्री ने चिकित्सा के सिद्धान्तों में तथा खनिजविषयों पर श्रीमान् कविराज प्रतापसिंह जो (रसशास्त्राध्यापक आयुर्वेद फार्मेसी सुपरिन्टेण्डेण्ट) ने अत्यन्त सहायता प्रदान की है अतः उक्त दोनों महानुभावों के प्रति मैं परम श्रद्धा प्रगट करता हूं। साथ ही साथ आयुर्वेद कालेज के पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र के अध्यापक तथा अनेक ग्रन्थों के लेखक आयुर्वेदाचार्य डा० भास्कर गोविन्द घाणेकर जी के प्रति परमश्रद्धा प्रगट करता हूं क्योंकि आप ही ने सर्व प्रथम अपनी सुकृतियों के द्वारा हम लोगों की इस नवीनप्रकार की टीका लेखन पद्धति में रुचि उत्पन्न की तथा एक मार्ग सा बना दिया। इनके अतिरिक्त डा० मुकुन्द स्वरूप जी वर्मा (सरसुन्दरलाल हास्पिटल सुपरिन्टेण्डेण्ट तथा वायस-प्रिन्सिपल आयुर्वेदकालेज तथा सर्जरी के प्रोफेसर) तथा पं० जगन्नाथजी शर्मा वाजपेयी एम० ए० (प्रोफेसर आयुर्वेद कालेज) तथा अन्य समस्त-

गुरुओं के प्रति भी परम श्रद्धा प्रकट करता हूं, क्यों कि आप लोगों के सदुपदेश तथा प्रोत्साहन का ही फल है कि मैं इस टीका के लिखने में सफल हुआ।

आयुर्वेद प्रेमी तथा छात्रों के हितचिन्तक और सरस्वतीसेवापरायण परम वैष्णवभक्त चौखम्बा पुस्तकालय के अध्यक्ष श्रीमान् जयकृष्णदास जी को मैं अनेक धन्यवाद देता हूं, क्यों कि आपने अपने उदारभावसे तथा सरस्वती की सेवा और आयुर्वेद की उन्नति तथा छात्रों के हित आदि अनेक विषयों का विचार रखकर आयुर्वेद ग्रन्थों के प्रकाशन की सदिच्छा प्रगट की तथा अब दिनों दिन प्रत्यक्ष रूप में प्रगट भी हो रही है, इस ग्रन्थ के प्रकाशन में तन, मन, धन सब कुछ व्यय करके इस कार्य को पूर्ण किया। अन्त में मैं इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक प्रूफ संशोधन में पं० रामचन्द्र पणशीकरजी ने अपना समय दिया अतः उन्हें धन्यवाद देता हूं।

ग्रन्थ की छपाई का कार्य बहुत ही शीघ्रता से हुआ है इसलिये अनेक स्थानों पर अत्यन्त ध्यान देने पर भी सम्भव है अशुद्धियां रह गई हों तो पाठक क्षमा करें, आगामी संस्करण में सब ठीक कर दी जायगीं। इस टीका से यदि वैद्यक शास्त्र तथा वैद्यसमुदाय का स्वल्प भी उपकार हुआ तो मैं अपने श्रम को सफल समझूंगा।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्।

इति।

निवेदयति—विद्वदनुचरः
अम्बिकादत्तशास्त्री
आयुर्वेदाचार्य (A. M. S.)
हिन्दू विश्वविद्यालय
आयुर्वेदकालेज, काशी

सम्वत् १९९६
ज्येष्ठ शुक्ल
पूर्णिमा

समर्पणम्

श्रीमन्महीमहेन्द्रमहाराजाधिराजमहाराणेति
विरुदालङ्कृतानां हिन्दूकुलपतीनां
के० सी० एस० आई० जी० सी० आई० इत्युपाधिविभूषितानां
६ श्रीमेदपाटेश्वराणां
"श्रीभूपालसिंहवर्म" महोदयानां
करकमलयोः
द्वितीयमिदं कृतिपुष्पं सप्रणयोल्लसन्मानसा समर्प्यते

श्रीएकलिङ्गेश्वरपादपद्म
सम्पूजयन् धर्मपुरःसरेण ।
सम्पालयन् स्वाः प्रकृतीरिदानीं
श्रीमेदपाटाऽवनिपालकोऽसौ ॥ १ ॥
"भूपालवर्मा" वसुधाधिपेन्द्र
आस्ते तदीये च करारविन्दे ।
रत्नोज्ज्वलाख्यां रसरत्नटीकां
समर्पयेऽहं मुदितात्मना वै ॥ २ ॥

श्रीमतां शुभचिन्तकः
अम्बिकादत्त शास्त्री "आयुर्वेदाचार्यः"

रसरत्नसमुच्चयस्य मूलविषयानुक्रमणिका—

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
प्रथमोऽध्यायः ।	
मङ्गलाचरणम्	१
टीकाकारकृतमङ्गलाचरणं व्याख्या-प्रयोजनञ्च	,,
ग्रन्थकर्तॄणां नामानि	२
हिमालयवर्णनम्	३
महादेवस्थितिवर्णनम्	४
रसोत्कर्षवर्णनम्	५
पारदस्य विशेषतो महत्ता	६
मूर्च्छितादिपारदगुणाः	७
पारदे सर्वौषधानामन्तर्भावः	९
रसस्य जीमन्मुक्तिकारणता	१०
रसोत्पत्तिवर्णनम्	१३
रसानां भेदाः	१४
रसादीनां निरुक्तिः	१६
रससंस्कारकारणम्	१७
रसस्य स्थानान्तरगतिवर्णनम्	१८
हिङ्गुलोत्पत्तिवर्णनम्	१९
द्वितीयोऽध्यायः ।	
महारसाः	५८
गन्धाभ्रयोः स्वरूपम्	,,
अभ्रकगुणाः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
अभ्रभेदाः	६०
पिनाकादीनां लक्षणानि	,,
वर्णभेदेनाभ्रकस्य भेदास्तेषां क्रिया-विषयश्च	,,
ग्रासयोग्याभ्रम्	६१
निश्चन्द्रसचन्द्राभ्रयोर्गुणदोषौ	,,
अशुद्धाभ्रस्य दोषाः	,,
अभ्रशोधनमारणे	६२
धान्याभ्रकम्	६३
धान्याभ्रमारणम्	,,
अभ्रमारणम्	,,
मतान्तर	,,
अभ्रकसत्त्वपातनम्	६४
प्रकारान्तर	,,
किट्टात्सत्त्वग्रहणम्	६५
सत्त्वशोधनम्	,,
सत्त्वानां मृदुकरणम्	,,
अभ्रमारणम्	६६
मारणे प्रकारान्तरम्	६७
सत्त्वस्यशोधनमारणे	,,
अभ्रप्रयोगः	६८
वैक्रान्तः	,,
वैक्रान्तस्य वर्णभेदाः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
वैक्रान्तस्य गुणाः	६९
वैक्रान्तोत्पत्तिः	,,
वैक्रान्तस्य स्थानं निरुक्तिश्च	७०
मतान्तरेण वर्णभेदकथनम्	,,
वर्णभेदेन कार्यभेदकथनम्	,,
आहरणविधिः	७१
गुणान्तरम्	,,
शोधनम्	,,
मतान्तरे शोधनमारणे	७०
मतान्तरम्	७१
सत्त्वपातनम्	७२
मतान्तरम्	,,
मृतवैक्रान्तस्य प्रयोगविधिर्गुणाश्च	,,
प्रयोगान्तरम्	७३
अथ माक्षिकम्	,,
माक्षिकोत्पत्तिवर्णनम्	,,
माक्षिकस्य गुणाः	,,
माक्षिकभेदाः	७४
माक्षिकगुणाः	७५
सुवर्णमाक्षिकशोधनमारणे	,,
सत्त्वपातनम्	,,
विशुद्धताप्यसत्त्वलक्षणम्	७६
सुवर्णमाक्षिकरसायनम्	,,
सुवर्णमाक्षिकरसायनम्	७७
विमलभेदाः	,,
विमलस्य लक्षणगुणाः	७८
विमलभेदानां प्रयोगनिर्देशः	,,
विमलशोधनम्	,,
विमलस्य मारणम्	७८
विमलस्य सत्त्वपातनविधिः	,,
मतान्तरेण सत्त्वपातनम्	७९
विमलस्य प्रयोगविधिर्गुणाश्च	,,
अथ शिलाजतु	८०
शिलाजतुभेदाः	,,
शिलाजतुन उत्पत्तिः	,,
शुद्धशिलाजतुलक्षणम्	८१
गुणाः	८२
शोधनम्	८३
शिलाजतुमारणम्	,,
प्रयोगविधिः	,,
सत्त्वपातनम्	,,
कर्पूरशिलाजतुनो लक्षणादिकम्	८४
सस्यकः	,,
सस्यकोत्पत्तिवर्णनम्	,,
प्रशस्तसस्यकलक्षणम्	,,
गुणाः	८५
शोधनम्	,,
मतान्तरम्	,,
तुत्थखर्परमारणम्	,,
तुत्थसत्त्वपातनम्	,,
मतान्तरम्	८६
प्रयोगविधिः	,,
भाल्लुकितन्त्रोक्तप्रयोग विधिः	,,
अथ चपलः	,,
गुणाः	८८
शोधनम्	८९

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
सत्त्वपातनम्	८९
रसकः	,,
रसकस्य प्रयोगविषयो गुणाश्च	९०
शोधनम्	,,
मतान्तरम्	,,
रसकस्य ताम्रादिरञ्जनविधिः	९१
खर्परस्य भस्म तथा सत्त्वपातन-विधिश्च	,,
मतान्तरम्	९२
मतान्तरम्	,,
मतान्तरम्	,,
सत्त्वमारणम्	९३
प्रयोगविधिः	,,
तृतीयोऽध्यायः ।	
उपरसानां नामानि	,,
गन्धकोत्पत्तिः	,,
गन्धकभेदाः	९५
गन्धकगुणाः	९६
बलिवसाख्यगन्धकोत्पत्तिः	,,
गन्धकशुद्धिः	९७
मतान्तरम्	,,
मतान्तरम्	९८
प्रयोगः	,,
गन्धकद्रुतिः	,,
प्रयोगविधिः	९९
अन्यविधप्रयोगविधिः	,,
गन्धकसेवने वर्ज्यानि	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
कुष्ठे गन्धकप्रयोगः	१००
कण्डूहर प्रयोगः	,,
गन्धकतैलम्	१०१
गन्धकगुणाः	,,
गैरिकम्	११०
गैरिकभेदाः	,,
पाषाणस्वर्णगैरिकयोर्लक्षणम्	,,
गैरिकशोधनम्	१११
कासीसरसायनम्	,,
कासीसभेदाः	,,
बालुकासीसगुणाः	११२
पुष्पकासीसगुणाः	,,
कासीस शोधनम्	,,
सत्त्वग्रहणनिर्देशः	,,
शोधनान्तरम्	११३
कासीसप्रयोगः	,,
तुवरीनिरूपणम्	,,
तुवरीपरिचयः	,,
तुवरीभेदाः	११४
तुवरीलक्षणगुणाः	,,
तुवरीशोधनम्	,,
तुवरीसत्त्वपातनविधिः	,,
तालकसन्निरूपणम्	११५
तालकभेदाः	,,
पत्रतालकलक्षणम्	,,
पिण्डतालकलक्षणम्	,,
गुणाः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
हरतालशुद्धिः	११६
अशुद्धतालसेवनदोषाः	,,
मतान्तरेण तालशोधनम्	,,
मतान्तरेण शोधनमारणनिरूपणम्	,,
सत्त्वपातनम्	११७
मतान्तरम्	,,
मनःशिलानिरूपणम्	११९
मनःशिलाया भेदाः	,,
त्रिविधमनःशिलालक्षणानि	
गुणाः	,,
अशुद्धशुद्धदोषगुणाः	,,
शोधनम्	१२०
मतान्तरम्	,,
सत्त्वपातनम्	,,
मतान्तरम्	,,
अञ्जनानां सन्निरूपणम्	,,
अञ्जनभेदाः	,,
सौवीराञ्जनगुणाः	१२२
रसाञ्जनगुणाः	,,
स्रोतोऽञ्जनगुणाः	,,
लेखनस्वरूपम्	,,
पुष्पाञ्जनगुणाः	१२३
नीलाञ्जनगुणाः	,,
शोधनम्	,,
अञ्जनसत्त्वाहरणम्	,,
स्रोतोऽञ्जनलक्षणम्	,,
अञ्जनरसबन्धनम्	,,
रसाञ्जनस्य विशेषशोधनम्	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
स्रोतोऽञ्जनसत्त्वपातनविधिः	१२४
कङ्कुष्ठनिरूपणम्	,,
कङ्कुष्ठोत्पत्तिवर्णनम्	,,
द्विविधकङ्कुष्ठलक्षणम्	,,
कङ्कुष्ठोत्पत्तौ मतान्तराणि	,,
गुणाः	१२५
रसोपरसानां सामान्यशोधनं सत्त्वपातनविधिश्च	,,
कङ्कुष्ठशोधनम्	,,
रेचकयोगः	,,
ताम्बूलानुपानवर्जनम्	१२६
त्रिषनाशार्थं कङ्कुष्ठप्रयोगविधिः	,,
साधारणरसपरिगणनम्	,,
कम्पिल्लः	,,
गुणाः	१२७
गौरीपाषाणः	,,
शोधनम्	१२८
सत्त्वग्रहणम्	१२९
गुणाः	,,
नवसारनिरूपणम्	,,
नवसारोत्पत्तिः	,,
मतान्तरेणोत्पत्तिः	१३०
गुणाः	,,
वराटिकावर्णनम्	,,
वराटिकालक्षणम्	,,
उत्तमादि वराटिका	,,
गुणाः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
शोधनम्	१३१
अग्निजारनिरूपणम्	,,
अग्निजारपरिचयः	,,
गुणाः	,,
तस्य स्वभावतः शुद्धत्वनिर्देशः	,,
गिरिसिन्दूरनिरूपणम्	१३२
गिरिसिन्दूरगुणाः	,,
हिङ्गुलनिरूपणम्	,,
हिङ्गुलभेदाः	,,
शुकतुण्डकस्य परिचयः	,,
हंसपादलक्षणम्	,,
हिङ्गुलगुणाः	,,
शोधनम्	१३३
हिङ्गुलसत्त्वाकर्षणविधिः	,,
मृद्दारश्रृङ्गम्	,,
परिचयः	,,
गुणाः	,,
साधारणशोधननिर्देशः	१३४
सत्त्वानां सामान्यशोधनम्	,,

चतुर्थोऽध्यायः ।

रत्ननिरुपणम्	१३५
मणयः	,,
मणीनां नामानि	,,
श्रेष्ठमणीनां नामानि	,,
ग्रहप्रसादकरत्नानि	,,
ग्रहानुसारेण रत्नपरिगणनम्	१३६
रत्नप्रयोगविषयः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
माणिक्यम्	१३६
द्विविधमाणिक्यनिर्देशः	,,
श्रेष्ठमाणिक्यलक्षणम्	,,
श्रेष्ठनीलमाणिक्यलक्षणम्	,,
निकृष्टमाणिक्यलक्षणम्	१३७
माणिक्यगुणाः	,,
मौक्तिकनिरूपणम्	,,
प्रशस्तमौक्तिकलक्षणम्	,,
मौक्तिकशुक्त्योर्गुणाः	,,
हेममौक्तिकम्	१३८
मौक्तिकगुणान्तरम्	,,
प्रवालनिरूपणम्	,,
ग्राह्यप्रवालस्वरूपः	,,
हेयप्रवालस्वरूपम्	,,
प्रवालगुणाः	१३९
तार्क्ष्यम्	,,
प्रशस्ततार्क्ष्यलक्षणम्	,,
अप्रशस्ततार्क्ष्यलक्षणम्	,,
तार्क्ष्यगुणाः	,,
पुष्परागः	,,
श्रेष्ठपुष्परागलक्षणम्	,,
हेयपुष्परागलक्षणम्	१४०
पुष्परागगुणाः	,,
वज्रम्	,,
वज्रभेदाः	,,
पुंवज्रलक्षणम्	,,
स्त्रीनपुंसकवज्रयोर्लक्षणानि	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
जातिभेदेनाधिकारीभेदकथनम्	१४१
वर्णभेदेनाधिकारीभेदकथनम्	,,
वज्रगुणाः	,,
रत्नदोषाः	१४२
वज्रशोधनम्	,,
वज्रमारणम्	,,
मतान्तरेण मारणम्	,,
मतान्तरेण मारणम्	१४३
मतान्तरेण मारणम्	१४४
प्रयोगविशेषेण गुणविशेषकथनम्	,,
वज्ररसायनम्	,,
नीलनिरूपणम्	१४५
नीलभेदाः	,,
जलशक्रनीलयोः स्वरूपम्	,,
गुणाः	,,
गोमेदः	१४६
गोमेदनिरुक्तिः	,,
प्रशस्तगोमेदलक्षणम्	,,
हेयगोमेदलक्षणम्	,,
गुणाः	,,
रत्नमारणनिषेधः	,,
रत्नप्रयोगः	१४७
रत्नानां साधारणशोधनम्	,,
वैदूर्यम्	,,
श्रेष्ठवैदूर्यलक्षणम्	,,
हेयवैदूर्यलक्षणम्	,,
गुणाः	,,
रत्नशुद्धिः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
रत्नभस्मक्रमः	१४८
रत्नानां द्रावणम्	,,
मुक्ताद्रावणे विशेषक्रमः	,,
वज्रद्रावणविशेषविधिः	१५०
वैक्रान्तद्रावणे विशेषक्रमः	,,
अन्यविधिः	,,
अन्यविधिः	,,
राजावर्तः	१५१
उत्तममध्यमराजावर्त्तलक्षणम्	,,
गुणाः	,,
राजावर्त्तादिसामान्यशोधनम्	,,
राजावर्त्तशोधनम्	,,
राजावर्त्तमारणम्	,,
सत्त्वपातनम्	१५२
द्रुतीनां दीर्घकालरक्षणोपायः	,,
रत्नधारणगुणाः	,,
गैरिकम्	,,
गैरिकस्य शोधनं सत्त्वपातनञ्च	,,

पञ्चमोऽध्यायः ।

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
लोहानि	१५३
लोहजातिपरिगणनम्	,,
स्वर्णम्	१५४
स्वर्णभेदाः	,,
प्राकृतस्वर्णस्योत्पत्तिः	,,
सहजस्वर्णोत्पत्तिः	,,
वह्निजस्वर्णोत्पत्तिः	,,
स्वर्णत्रयगुणाः	१५५

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
खनिजस्वर्णोत्पत्तिस्तल्लक्षणगुणाश्च	१५५
वेधजस्वर्णोत्पत्तिर्गुणाश्च	,,
स्वर्णरौप्ययोः सामान्यगुणाः	,,
स्वर्णगुणाः	१५६
अशोधितामारितस्वर्णदोषाः	,,
स्वर्णशोधनम्	,,
लौहमारणार्थमुत्तमद्रव्यकथनम्	,,
स्वर्णमारणम्	१५७
अन्यविधिः	,,
अन्यविधिः	,,
स्वर्णद्रावणम्	,,
अन्यविधिः	१५८
स्वर्णभस्मप्रयोगविधिः	,,
अशुद्धामारितस्वर्णदोषाः	,,
रजतम्	१५९
रजतभेदाः	,,
सहजरौप्योत्पत्तिर्गुणाश्च	,,
खनिजरौप्योत्पत्तिर्गुणाश्च	,,
कृत्रिमरौप्योत्पत्तिर्गुणाश्च	,,
उत्तमरौप्यलक्षणम्	,,
निकृष्टरौप्यलक्षणम्	१६०
रौप्यगुणाः	,,
गुणान्तरम्	,,
स्वर्णादिशोधनम्	,,
अशोधितमारितलोहस्य दोषाः	१६१
रौप्यस्य विशेषशोधनम्	,,
अन्यविधिः	,,
रौप्यमारणम्	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
अन्यविधिः	१६२
रौप्यस्य निरुत्थीभस्मकरणम्	,,
अन्यविधिः	,,
स्वर्णरौप्ययोर्द्रावणम्	,,
रौप्यप्रयोगः	१६३
ताम्रम्	,,
ताम्रभेदाः	,,
म्लेच्छताम्रस्य लक्षणम्	,,
नेपालताम्रलक्षणम्	,,
रसकर्मानर्हताम्रलक्षणम्	१६४
गुणाः	,,
ताम्रस्य दोषाः	,,
ताम्रशुद्धिः	१६५
मतान्तरम्	,,
मतान्तरम्	,,
मतान्तरम्	,,
ताम्रभस्म	,,
अन्यविधिः	१६६
मारणान्तरम्	,,
सोमनाथीताम्रभस्म	,,
ताम्रभस्मगुणाः	१६७
ग्रन्थान्तरोक्त ताम्रप्रयोगः	,,
अथलौहम्	१६८
लौहभेदाः	,,
मुण्डलौहभेदाः	,,
मृदुमुण्डलक्षणम्	,,
कुण्ठमुण्डलक्षणम्	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्का
कडारमुण्डलक्षणम्	१६९
मुण्डगुणाः	,,
अशुद्धलौहस्य दोषाः	,,
तीक्ष्णलौहम्	,,
तीक्ष्णलौहभेदाः	,,
खरलौहलक्षणम्	,,
सारलौहलक्षणम्	१७०
हृन्नाललौहलक्षणम्	,,
सपर्यायपोगरलक्षणम्	,,
वाजीरलौहलक्षणम्	,,
काललौहलक्षणम्	,,
खरलौहगुणाः	१७१
अन्यसारादितीक्ष्णलौहगुणाः	,,
कान्तलोहभेदाः	,,
वर्णानुसारकार्यभेदाः	,,
अधमादिकथनम्	१७२
भ्रामककान्तलक्षणम्	,,
चुम्बककर्षकलक्षणम्	,,
द्रावककान्तलक्षणम्	,,
रोमकान्तलक्षणम्	,,
सुखभेदेनश्रेष्ठाश्रेष्ठकथनम्	,,
भ्रामकादिलौहकार्यनिर्देशः	१७३
रसक्रमेण कान्तस्य विशेषता	,,
कान्तलौहस्य ग्राह्याग्राह्यनिर्देशः	,,
कान्तलौहलक्षणम्	१७४
कान्तलौहगुणाः	,,
लौहकल्पश्रेष्ठता	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
मारणार्थं लौहस्य परिमाणनिर्देशः	१७४
लौहमारणे मन्त्रः	,,
लौहत्रयाणामुत्तरोत्तरगुणाधिक्यम्	,,
सर्वलौहशुद्धिः	१७५
लौहस्थगिरिजदोषनाशनविधिः	,,
मतान्तरम्	,,
मतान्तरेण शोधनं मारणञ्च	१७६
मतान्तरेण मारणञ्च	,,
तीक्ष्णलौहस्य मारणम्	,,
कान्तलौहस्य गुणाः	१७७
लौहस्य मारणान्तरम्	,,
तीक्ष्णलौहस्य विशेषमारणम्	१७८
मतान्तरम्	,,
मतान्तरे सर्वलौहानां मारणम्	,,
अन्यविधिः	१७९
अन्यविधिः	,,
अन्यविधिः	,,
कान्तलोहस्य रामराजीप्रोक्त-शोधनम्	१८०
अन्यविधिः	१८१
लौहप्रयोगः	,,
लौहानां रामराजीप्रोक्तगुणाः	१८२
श्रेष्ठकान्तलौहस्य लक्षणम्	,,
लौहद्रुतिः	,,
कान्तलौहस्य विशेषमारणम्	१८३
अथाष्टलौहानां द्रावणम्	,,
मतान्तरम्	,,
अशुद्धपक्वलोहदोषाः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
उत्तरोत्तरमधिकगुणकरं लौहम्	१८४
मण्डूरम्	,,
मण्डूरशोधनम्	,,
मतान्तरम्	,,
लौहमण्डूरयोर्गुणसाम्यता	१८५
वङ्गनिरुपणम्	,,
वङ्गस्य द्वैविध्यनिर्देशः	,,
खुरकवङ्गस्य मिश्रकवङ्गस्य च लक्षणम्	,,
वङ्गगुणाः	,,
खुरकवङ्गशोधनम्	,,
मिश्रकवङ्गशोधनम्	,,
नागवङ्गकांस्यताम्राणां सामान्यशोधनम्	,,
वङ्गभस्म	,,
मतान्तरम्	,,
मतान्तरम्	१८६
मतान्तरम्	,,
वङ्गरसायनम्	,,
नागः	१८८
शुद्धसीसकलक्षणम्	,,
सीसकगुणाः	१८९
नागशुद्धिः	,,
नागभस्म	,,
मतान्तरम्	१९०
नागस्यनिरुत्थभस्मीकरणम्	,,
मतान्तरम्	१९१

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
नागरसायनम्	१९२
पित्तलम्	,,
पित्तलभेदाः	,,
रीतिकालक्षणम्	,,
काकतुण्डीलक्षणम्	,,
रीतिकाया गुणाः	,,
काकतुण्ड्या गुणाः	१९३
शुभरीतिकालक्षणम्	,,
अशुभरीतिलक्षणम्	,,
रीतिकाशोधनम्	,,
रीतिकामारणम्	,,
मतान्तरम्	१९४
पित्तलरसायनम्	,,
पित्तलद्रुतिः	,,
कांस्यम्	१९५
कांस्योत्पत्तिवर्णनम्	,,
प्रशस्तकांस्यलक्षणम्	,,
त्याज्यकांस्यलक्षणम्	,,
कांस्यगुणाः	,,
कांस्यशोधनम्	१९६
कांस्यमारणम्	,,
मतान्तरम्	,,
वर्तलौहम्	,,
वर्तलौहस्वरूपः	,,
वर्तलौहगुणाः	,,
वर्तलौहशोधनम्	१९७
वर्तलौहमारणम्	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
रसोपरसलोहानां सूतसाधकत्वनिर्देशः	१९७
रत्नादीनां सूतयोग्यत्वनिर्देशः	,,
भूनागसत्त्वपातनम्	१९८
मतान्तरम्	१९९
भूनागमुद्रिका	२००
तैलपातनविधिः	,,
मतान्तरम्	,,
मतान्तरम्	२०१
मतान्तरम्	,,
तैलपातनम्	२०२
विष्णुमुष्टितैलपातनम्	,,
जैपालतैलपातनम्	,,
वाकुचीतैलाहरणविधिः	,,
कृष्णमिश्रश्वेतगुञ्जाबीजतैलपातनविधिः	,,
षष्ठोऽध्यायः ।	
शिष्योपानयननिरुपणम्	२०३
क्रमयुक्तशास्त्रम्	,,
शास्त्रक्रमयोः परस्परापेक्षा	,,
रसविद्यागुरुः	,,
शिष्यगुणाः	२०४
अनुचरगुणाः	,,
अयोग्यशिष्याः	,,
रससाधनरसशालारस मण्डपाः	२०५
रसलिङ्गस्थापनादि	२०६
रसलिङ्गपूजनफलम्	,,
ध्यानम्	२०७
देवीपूजनमन्त्रम्	,,
कुम्भस्थापनादिशिष्यदीक्षादानविधिः	२०८
कालिनीलक्षणम्	२०९
कालिन्यभावे तदनुकल्पविधिः	,,
होमविधिः	२१०
रससिद्धयर्थं सङ्ग्रहणीयपदार्थास्तत्पूजनादिकञ्च	२११
रसशक्तयः	,,
उपरसाः	,,
महारसाः	२१२
अष्टलौहपूजाक्रमः	,,
उपकरणानां पूजाविधिः	,,
रससिद्धीश्वरब्राह्मणादीनां पूजनम्	२१३
अदीक्षितस्य रसविद्यासाधनवैफल्यनिर्देशः	२१४
रससाधने सिद्धिलाभहेतुनिर्देशः	,,
कस्मै किमर्थं रसविद्यादात्तव्या तन्निर्देशः	२१५
गुरुसन्तोषस्य सर्वसिद्धिहेतुत्वनिर्देशः	,,
रसविद्याया अवश्यगोप्यत्वनिर्देशः	,,
सप्तमोऽध्यायः ।	
रसशाला	२१६
रससाधनीयपदार्थाः	२१७
चालनीभेदलक्षणादिकम्	२१८
रससि ावुपकरणानि	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
उपलनामानि	२१९
कूपीनिर्माणद्रव्याणि	,,
कूपीपर्यायाः	,,
चषकस्य पर्यायाः	,,
शूर्पादीनां समर्चनम्	,,
रसविद्यायां कीदृशा वैद्या अन्ये वा नियोज्यास्तत्कथनम्	२२०
रसपाककाले मन्त्रजपस्य कर्तव्यतानिर्देशः	,,
परिचारकलक्षणम्	,,
पद्महस्तवैद्यलक्षणम्	२२१
अमृतहस्तवैद्यलक्षणम्	,,
दग्धहस्तवैद्यलक्षणम्	,,
निधिरक्षायोग्यपुरुषाः	,,
बलिसाधने नियोज्यपुरुषलक्षणम्	,,
रसायने नियोज्यपुरुषलक्षणम्	२२२
स्वर्णादिधातुसिद्धिनियुक्तियोग्यपुरुषाः	,,
भेषजाहरणे नियोज्यपुरुषलक्षणम्	,,
केषां रससिद्धिर्भवतीत्याह	,,
रससिद्धसाधकस्य कर्तव्यनिर्देशः	,,
रससिद्धमर्त्यफलम्	२२३

अष्टमोऽध्यायः ।

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
परिभाषा	२२४
धन्वन्तरिभागः	,,
रुद्रभागः	,,
विश्वासघातकवैद्यलक्षणम्	,,
कज्जली	२२५
रसपङ्कः	,,
पिष्टी	,,
मतान्तरम्	,,
पातनपिष्टी	,,
स्वर्णरौप्ययोः कृष्टिः	२२६
कृष्ट्या उपयोगः	,,
स्वर्णकृष्ट्याः कार्यम्	,,
वरलोहकम्	,,
हेमरक्ती	,,
हेमरक्तीप्रयोगः	,,
ताररक्ती	२२७
दलम्	,,
अन्यविधदलम्	,,
शुल्वनागम्	,,
शुल्वनागगुणाः	२२८
पिञ्जरी	,,
चन्द्रार्कम्	,,
निर्वापणम्	२२९
निर्वापणद्रव्यमात्रा	,,
वारितरलौहलक्षणम्	,,
मृतलौहलक्षणम्	,,
अपुनर्भवलक्षणम्	,,
उत्तमभस्मलक्षणम्	२३०
निरुत्थलौहलक्षणम्	,,
बीजलक्षणम्	,,
ताडनस्वरूपम्	,,
धान्याभ्रलक्षणम्	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
सत्त्वलक्षणम्	२३१
एककोलिसकलक्षणम्	,,
द्रावणादिकर्मसाधनेकाष्ठनिर्देशः	,,
हिङ्गुलाकृष्टो रसः	,,
घोषाकृष्टताम्रलक्षणम्	,,
वरनागलक्षणम्	२३२
उत्थापनलक्षणम्	,,
ढालनलक्षणम्	,,
नागसम्भूतचपलः	,,
वङ्गसम्भूतचपलः	२३३
चपलकार्यम्	,,
बद्धरसोपयोगः	,,
धौतम्	,,
द्वन्द्वानम्	२३४
भञ्जनी	,,
चुल्लका	,,
पतङ्गीरागः	,,
आवापः	,,
अभिषेकः	२३५
निर्वापलक्षणम्	,,
प्रतिवापसमयनिर्देशः	,,
शुद्धावर्तः	,,
बीजावर्तः	,,
स्वाङ्गशीतलम्	,,
बहिःशीतलम्	२३६
स्वेदनलक्षणम्	,,
मर्दनलक्षणम्	,,
मूर्च्छनलक्षणम्	,,
उत्थापनादिलक्षणम्	२३७
बन्धलक्षणम्	,,
पातनलक्षणम्	,,
रोधनलक्षणम्	२३८
नियमनलक्षणम्	,,
दीपनलक्षणम्	२३९
ग्रासमानम्	,,
जारणाभेदनिर्देशः	,,
निर्मुखजारणालक्षणम्	२४०
बीजादिनिर्देशः	,,
मुखलक्षणम्	,,
सम्मुखजारणालक्षणम्	,,
राक्षसवक्त्ररसलक्षणम्	,,
चारणालक्षणम्	२४१
गर्भद्रुतिलक्षणम्	,,
बाह्यद्रुतिलक्षणम्	,,
द्रुतेर्भेदाः	,,
द्रुतेः स्वरूपम्	,,
जारणाभेदः	,,
जारणालक्षणम्	,,
बिडादिलक्षणम्	२४२
रञ्जनलक्षणम्	,,
सारणालक्षणम्	,,
वेधलक्षणं भेदाश्च	,,
लेपवेधलक्षणम्	२४३
क्षेपवेधलक्षणम्	,,
कुन्तवेधलक्षणम्	,,
धूमवेधलक्षणम्	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
शब्दवेधलक्षणम्	२४४
उद्घाटनलक्षणम्	,,
स्वेदनलक्षणम्	,,
सन्यासलक्षणम्	,,
रसस्वेदसन्यासगुणाः	२४५
परिभाषाऽऽवश्यकता	,,
अध्यायपठनफलम्	,,

नवमोऽध्यायः ।

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
यन्त्राणि	२४६
यन्त्रशब्दनिरुक्तिः	,,
दोलायन्त्रम्	,,
स्वेदनीयन्त्रम्	२४७
पातनायन्त्रम्	,,
अधःपातनयन्त्रम्	२४८
कच्छपयन्त्रम्	,,
दीपिकायन्त्रम्	,,
डेकीयन्त्रम्	२४९
जारणायन्त्रम्	,,
जारणायन्त्रस्य–	,,
प्रकारान्तरम्	२५०
विद्याधरयन्त्रम्	२५१
सोमानलयन्त्रम्	,,
गर्भयन्त्रम्	,,
हंसपाकयन्त्रम्	२५२
बालुकायन्त्रम्	२५३
बालुकायन्त्रस्य प्रकारान्तरम्	,,
लवणयन्त्रम्	,,
प्रकारान्तरम्	२५४
नालिकायन्त्रम्	,,
भूधरयन्त्रम्	,,
पुटयन्त्रम्	,,
कोष्ठीयन्त्रम्	२५५
वलभीयन्त्रम्	,,
तिर्यक्पातनयन्त्रम्	२५६
पालिकायन्त्रम्	,,
घटयन्त्रम्	,,
इष्टिकायन्त्रम्	२५७
हिङ्गुलाकृष्टि विद्याधरयन्त्रम्	,,
डमरुयन्त्रम्	२५८
नालियन्त्रम्	,,
तोयमृल्लक्षणम्	,,
वह्निमृत्स्ना	२५९
शेषनाभियन्त्रवर्णनम्	,,
प्रस्तयन्त्रम्	,,
स्थालीयन्त्रम्	२६०
धूपयन्त्रम्	,,
कन्दुकयन्त्रम्	२६१
प्रकारान्तरम्	,,
खल्लयन्त्रम्	२६२
खल्लयन्त्रस्य त्रैविध्यनिर्देशः	,,
द्विविधखल्लयोः सामान्यलक्षणम्	,,
अर्धचन्द्राकृतिखल्लनिर्देशः	,,
वर्त्तुलखल्लनिर्देशः	२६३
तप्तखल्लप्रमाणनिर्देशः	,,
तप्तखल्लविधिः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
दशमोऽध्यायः ।	
मूषादिकथनम्	२६४
मूषायाः पर्यायाः	,,
मूषाया निरुक्तिः	,,
मूषाया उपादानम्	२६५
मूषा शंसा	,,
सन्धिलेपस्य पर्यायाः	,,
मूषोपयुक्तमृत्तिका	,,
मतान्तरम्	२६६
मूषामृत्तिकायां संयोज्यद्रव्याणि	,,
वज्रमूषा	,,
योगमूषा	,,
वज्रदावणीमूषा	२६७
गारमूषा	,,
वरमूषा	,,
वर्णमूषा	२६८
रौप्यमूषा	,,
विडमूषा	,,
वज्रद्रावणमूषा	,,
मूषाऽऽप्यायनम्	२६९
वृन्ताकमूषा	,,
गोस्तनीमूषा	२७०
मल्लमूषा	,,
पक्कमूषा	,,
गोलमूषा	,,
महामूषा	२७१
मण्डूकमूषा	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
मूसलाख्यमूषा	२७१
कोष्ठिकानिर्देशः	,,
अङ्गारकोष्ठी	२७२
पातालकोष्ठी	२७३
गारकोष्ठी	,,
वङ्कनालम्	२७४
मूषाकोष्ठी	,,
पुटस्य लक्षणम्	२७५
पुटस्य फलम्	,,
महापुटम्	२७७
गजपुटम्	,,
वाराहपुटम्	२७८
कुक्कुटपुटम्	,,
कपोतपुटम्	,,
गोर्वरस्वरूपम्	,,
गोर्वरपुटलक्षणम्	२७९
भाण्डपुटम्	,,
वालुकापुटम्	,,
भूधरपुटम्	२८०
लावकपुटम्	,,
अनुक्तपुटमानेकर्त्तव्यनिर्देशः	२८१
उपलपर्यायाः	,,
कृत्रिमाकृत्रिमलौहनिर्देशः	,,
षड्लवणानि	२८२
क्षारत्रयम्	,,
क्षारपञ्चकम्	,,
मधुरत्रयम्	२८३

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
रसकर्मणितैलाहरणोपयोगिद्रव्याणि	२८३
वसावर्गः	,,
मूत्रवर्गः	,,
माहिषपञ्चकछागलपञ्चकयोर्निर्देशः	२८४
अम्लवर्गः	,,
अम्लपञ्चकम्	,,
पञ्चमृत्तिका	२८५
विषवर्गः	,,
उपविषवर्गः	२८६
दुग्धवर्गः	,,
विड्वर्गः	२८७
रक्तवर्गः	,,
पीतवर्गः	२८८
श्वेतवर्गः	,,
कृष्णवर्गः	,,
रक्तवर्गादीनां प्रयोजननिर्देशः	,,
शोधनीयगणः	,,
लौहमलनाशनगणः	२८९
लौहकाठिन्यनाशकोयोगः	,,
द्रावकवर्गः	,,
क्षारादिकानां कार्यम्	,,

एकादशोऽध्यायः।

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
रसशोधनादिकथनम्	२९०
मानपरिभाषा	,,
मानपरिभाषायां मतान्तरम्	२९१
अष्टादशसंस्काराः	२९२
व्याधिविशेषेरसप्रयोगनिषेधः	२९३
शुद्धमूर्च्छितरसगुणाः	,,
मृतपारदगुणाः	,,
रसदोषास्तेषां कार्याणि च	,,
संस्कारार्थं पारदस्य परिमाणर्निर्देशः	२९४
स्वेदनसंस्कारः	२९५
मर्दन संस्कारः	२९६
मूर्च्छनसंस्कारः	२९७
उत्थापनसंस्कारः	२९८
पातनसंस्कारः	२९९
उर्द्ध्वाधः पातनयोः सङ्ख्यानिर्देशः	३००
अधःपातनविधिः	,,
पातने प्रकारान्तराणि	,,
तिर्यक्पातनम्	३०१
मर्दनादीनां गुणाः	३०३
निरोधसंस्कारः	,,
नियामनसंस्कारः	३०४
प्रकारान्तरम्	३०५
दीपनसंस्कारः	,,
प्रकारान्तरेण दीपनम्	३०६
रसभावनादौ मूलिन्यः	३०७
सूतसंस्कारकार्यत्वनिर्देशः	३०९
रसबन्धनप्रतिज्ञा तस्य व्युत्पत्तिश्च	,,
रसबन्धाः	,,
हठबन्धः	३१०
आरोटबन्धः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
आभासबन्धः	३११
क्रियाहीनबन्धः	३१२
पिष्टिकाबन्धः	,,
क्षारबन्धः	,,
खोटबन्धः	३१३
पोटबन्धलक्षणम्	,,
कल्कबन्धलक्षणम्	,,
कज्जलीबन्धलक्षणम्	३१४
सजीवबन्धलक्षणम्	,,
निर्जीवबन्धलक्षणम्	३१५
निर्बीजबन्धलक्षणम्	,,
सबीवबन्धलक्षणम्	,,
शृङ्खलाबन्धलक्षणम्	३१६
द्रुतिबन्धलक्षणम्	,,
बालकबन्धलक्षणम्	३१७
कुमारबन्धलक्षणम्	,,
तरुणबन्धलक्षणम्	३१८
वृद्धबन्धलक्षणम्	,,
मूर्तिबन्धलक्षणम्	,,
जलबन्धलक्षणम्	३१९
अग्निबन्धलक्षणम्	,,
सूतानां मूर्च्छाकल्पः	,,
महाबन्धलक्षणम्	३२१
जलूकाबन्धः	,,
क्रियाविशेषेण जलूकाया गुणविशेषः	३२२
जलूकायाः त्रिविधप्रमाणनिर्देशः	,,
जलूकायाः संस्कारविशेषः	३२३

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
प्रकारान्तरेण जलूकानिर्माणम्	३२३
प्रकारान्तरम्	३२४
प्रकारान्तरम्	,,
प्रकारान्तरम	३२५
प्रकारान्तरम्	३२६
योनिद्रावणम्	,,
मदनवलयम्	३२७
प्रकारान्तरम्	,,
पारदभस्म	३२८
प्रकारान्तरम	,,
प्रकारान्तरम्	,,
प्रकारान्तरम्	,,
प्रकारान्तरम्	३२९
प्रकारान्तरम्	,,
प्रकारान्तरम्	३३०
प्रकारान्तरम्	,,
रसभस्मविधिः	३३१
पारदभस्मनि पथ्यम्	३३२
पारदभस्मनि कुपथ्यम्	,,
देवीशास्त्रोक्तककरादिगणः	३३३
श्रीकृष्णदेवोक्तककरादिगणः	३३४
ककारादिनिषेधस्यापवादः	३३५
पारदविकार उपायाः	,,
रससेवने उपचारविधिः	,,

द्वादशोऽध्यायः ।

ज्वरचिकित्सा	३३६
रोगगणना	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
वातज्वरलक्षणम्	३३७
पित्तज्वरलक्षणम्	३३८
कफज्वरलक्षणम्	,,
द्विदोषजत्रिदोषजज्वरकथनम्	३३९
त्रैलोक्यसुन्दररसः	३४०
त्रैलोक्यडम्बररसः	३४१
मेघनादरसः	३४३
ज्वरगजहरिरसः	,,
दीपिकारसः	३४४
शीतभञ्जीरसः	३४५
प्रकारान्तरेण शीतभञ्जीरसः	३४६
मृतजीवनरसः	३४७
वृद्धज्वराङ्कुशरसः	३४९
महाज्वराङ्कुशरसः	,,
मृत्युञ्जयरसः	३५१
सर्वज्वरादिरसः	,,
चन्द्रसूर्यरसः	३५२
विषप्रयोगायोग्यनिर्देशः	३५३
उमाप्रसादनोरसः	३५४
ज्वराङ्कुशरसः	३५५
सर्वाङ्गसुन्दरचिन्तामणिरसः	३५६
लोकनाथगुटिका	३५७
सूचिकाभरणरसः	३५९
शार्ङ्गष्टादिवर्गः	३६४
सूचीमुखरसः	३६५
सन्निपातगजाङ्कुशरसः	३६६
चातुर्थिकहरो रसः	३६७
चातुर्थिकगजाङ्कुशरसः	३६८
मृत्युञ्जयरसः	३६९
पञ्चवक्त्ररसः	,,
उन्मत्तरसः	३७०
सन्निपाताञ्जनरसः	,,
नस्यम्	३७१
प्रतापलङ्केश्वररसः	,,
प्राणेश्वररसः	३७३
मृतसञ्जीवनरसः	३७४
द्वितीयमृतसञ्जीवनरसः	३७५
सन्निपातकुठाररसः	३७६
नवज्वरारिरसः	३७७
जलमञ्जरीरसः	३७८
कान्तरसः	३७९
चन्द्रोदयरसः	,,
जीर्णज्वरारिरसः	३८०
नवज्वरमुरारिरसः	३८१

त्रयोदशोऽध्यायः ।

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
रक्तपित्तम्	३८४
रक्तपित्ताङ्कुशरसः	३८५
चन्द्रकलारसः	३८६
पटोलादियोगः	३८८
रसेन्द्रयोगः	३८९
अन्यश्च	,,
नवनीतादियोगः	,,
शिरोलेपः	,,
द्राक्षादिक्काथः	३९०

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
योगद्वयम्	३९०
सितामृता	,,
कासः	,,
कासनाशनरसः	३९१
कासहररसः	,,
रक्तकारण्डरसः	३९२
भूताङ्कुशरसः	३९३
बोलवद्धरसः	३९४
अग्निरसः	३९५
स्वयमग्निरसः	,,
सामान्योपायाः	३९६
भृङ्गराजयोगः	,,
अर्कादियोगः	,,
कासघ्नधूमद्वयम्	,,
क्षयकासान्तकोयोगः	३९८
श्वासः	,,
ऊद्र्ध्वश्वासादिः	३९९
सूर्यावर्तरसः	,,
श्वासान्तकरसः	४००
श्वासारिवटकः	४०१
सप्तामृतावटी	,,
नीलकण्ठरसः	४०२
श्वासकासकरिकेसरी रसः	४०३
सूर्यरसः	४०४
सामान्योपचाराः	,,
हिक्का	४०५
हिक्कानाशनरसः	४०७

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
कज्जलयोगः	४०७
शिलापूतरसः	,,
मन्थानभैरवरसः	४०९
विश्वादिवटिका	४१०
सामान्योपचाराः	४११
तत्र रास्नादिक्षीरम्	,,
हिक्काघ्नधूमः	,,
गन्धपाषाणयोगः कफेभेषजविशेषनिर्देशश्च	४१२
स्वरभङ्गः	,,
पर्पटीरसः	४१३
कफरोगे क्रियासूत्रम्	४१७
चतुर्दशोऽध्यायः ।	
राजयक्ष्मा	,,
कनकसुन्दररसः	४१८
राजमृगाङ्करसः	४२१
शङ्खेश्वररसः	,,
मृगाङ्कपोट्टलीरसः	४२२
मृगाङ्कपोट्टलीरसः	४२३
यक्ष्मणि औषधविशेषसेवनोपदेशः	,,
पञ्चामृतोरसः	४२४
जयन्तीप्रयोगः	,,
क्षयशामकरसः	,,
लोकनाथरसः	४२५
वैद्यनाथरसः	४२८
लोकनाथरसः	४२९

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
प्राणनाथरसः	४३०
वज्ररसः	४३१
महावीररसः	४३३
अरुचिस्तस्या निदानम्	४३५
अरुचेः सलक्षणभेदाः	,,
अरुचि-चिकित्सा	,,
यवानीखाण्डवचूर्णम्	,,
छर्दिरोगः	४३६
वान्तिचिकित्सायां मातुलुङ्गादि योगः-	४३७
रजन्यादियोगः	,,
सुगन्धालक्तकयोगौ	४३८
हृदयरोगः	४३९
हृदयरोग-चिकित्सा	,,
दशमूलादिकाथः	,,
ककुभाद्यं चूर्णम्	,,
हृदयार्णवोरसः	४४०
'नागार्जुनाभ्रम्	,,
पञ्चाननरसः	४४१
तृष्णारोगः	,,
तृष्णाहररसः	४४२
मदात्ययरोगः	,,
राजावर्तरसः	४४४
द्वितीयराजावर्त्तरसः	,,
भैरवनाथी पञ्चामृतपर्पटी	४४५
पञ्चदशोऽध्यायः ।	**४५०**
अर्शः	,,
पित्तार्शोलक्षणम्	४५१

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
वातार्शोलक्षणम्	४५२
अर्शःकुठाररसः	४५३
पित्तार्शोहररसः	४५४
सर्वलोकाश्रयरसः	४५५
अर्शोघ्नवटकम्	४५६
अर्शोघ्नी वटिका	४५७
मूलकुठाररसः	४५८
महोदयप्रत्ययसाररसः	४६१
कनकसुन्दररसः	४६२
अर्केशः	४६४
तीक्ष्णमुखरसः	४६६
अर्शःकुठाररसः	४६७
त्रैलोक्यतिलकरसः	४६८
सामान्योपचाराः	४७२
वचादिमोदकः	,,
लौहादिचूर्णम्	,,
श्लेष्मार्शसि औषधविशेषनिर्देशः	४७३
अर्शोहरयोगः	,,
देवदार्व्वादिलेपः	,,
अर्शःकुठारलेपः	४७४
अर्शोघ्नशौचः	,,
दुर्नामहरोलेपः	,,
अर्शोघ्नीवर्तिः	,,
अर्कक्षीरादिलेपः	४७५
शिग्रुमूलादिलेपः	,,
षोडशोऽध्यायः ।	**४७६**
उदावर्तः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
उदावर्तहरघृतम्	४७७
अतिसारः	४७९
दर्दुररसः	४८०
द्वितीयदर्दुररसः	४८१
आनन्दभैरवरसः	,,
सुधासाररसः	४८२
रसोत्तमः	४८४
स्वेदनीयन्त्रलक्षणम्	४८५
लोकेश्वररसः	,,
लोकनाथरसः	४८६
नागसुन्दररसः	,,
षण्निष्कतैलम्	४८८
सङ्ग्रहणी	४८९
वज्रकपाटरसः	,,
अग्निकुमाररसः	४९०
कनकसुन्दररसः	४९१
ग्रहणीहररसः	४९२
चण्डसङ्ग्रहगदैककपाटरसः	,,
लघुसिद्धाभ्रकरसः	४९३
सर्वरोगरसः	४९४
ग्रहणीगजकेसरीरसः	४९७
शीघ्रप्रभावरसः	४९९
पोट्टलीरसः	५००
वह्निज्वालावटीरसः	५०१
वज्रधररसः	५०२
ग्रहणीकपाटरसः	,,
सौवर्चलादिचूर्णम्	५०३
मुस्तादिचूर्णम्	५०४

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
सामान्योपायाः	५०४
वह्न्यादिचूर्णम्	,,
दग्धशम्बूकादियोगः	,,
अन्योपायः	५०५
अजीर्णम्	,,
अजीर्णकण्टकरसः	५०६
विध्वंसरसः	,,
विसूचीविजयरसः	५०७
अग्निकुमाररसः	,,
वडवाग्निरसः	५०८
वैश्वानरपोटलीरसः	५०९
चराचरवटीलक्षणंम्	५१०
श्रेष्ठमध्यमाधमवराटिकायालक्षणम्	५११
पुंवराटलक्षणं तस्य दोषाश्च	,,
वडवामुखी गुटी	,,
क्रव्यादरसः	५१२
राजशेखरवटी	५१४
अग्निकुमाररसः	५१५
अमृतवटी	५१६
राक्षसनामारसः	५१७
जीवननामारसः	५१८
वडवानलरसः	५१९
अग्निजननीवटी	५२०
सर्वरोगान्तका वटी	,,
सामान्योपायः	५२१
सप्तदशोऽध्यायः ।	
मूत्रकृच्छ्राश्मर्यादिचिकित्सनम्	५२३

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
पाषाणभेदीरसः	५२६
द्वितीयपाषाणभेदीरसः	५२७
गोक्षुरादिचूर्णम्	५२८
त्रिविक्रमरसः	,,
आनन्दभैरवी वटी	५२९
अश्मरीहरयोगः	,
यवक्षारप्रयोगः	५३०
हरिद्राप्रयोगः	,,
शिवोक्तयोगः	,,
लघुलोकेश्वररसः	,
सामान्योपायः	५३१
गोक्षुरप्रयोगः	,,
पाण्डुरादियोगः	,,
शुक्लपिण्याकादियोगः	५३२
मूत्रकृच्छ्रान्तको रसः	,,
विदार्यादिकषायः	,,
क्षारप्रयोगः	५३३
प्रमेहः	,,
चन्द्रप्रभावटी	५३९
प्रमेहगजसिंहरसः	५४०
महाविद्यागुटी	५४१
मेहध्वान्तविवस्वान् रसः	५४२
उमाशम्भुरसः	५४४
रसेन्द्रनागरसः	५४६
मेहशत्रुरसः	५४७
कासीसबद्धरसः	५४८
भीमपराक्रमरसः	५४०

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
सञ्जीवन रसः	५५१
मेहमर्दनरसः	५५२
रामबाणरसः	५५३
राजमृगाङ्करसः	५५५
मेहहररसः	५५७
उदयभास्कररसः	५५८
हिमांशुरसः	५६०
वसन्तकुसुमाकररसः	५६१
सर्वमेहान्तकरसः	५६३
मेहारिरसः	,,
मेहबद्धरसः	५६६
हरिशङ्कररसः	,,
वङ्गेश्वरो रसः	५६७
गुडमार्कण्डी	,,
ताम्रयोगः	५६८
रक्तमेहे वङ्गप्रयोगः	,,
शुक्रमेहे वङ्गप्रयोगः	,,
मधुमेहे वङ्गप्रयोगः	,,
शाल्मलिप्रयोगः	५६९
रक्तमेहे बोलबद्धरसोपदेशः	,,
श्लेष्मातककाथः	,,
कुष्माण्डस्वरसप्रयोगः	,,
स्त्रीणांरक्तस्रावे तौवरयोगः	५७०
मेहकुठारो रसः	,,
अष्टादशोऽध्यायः ।	
विद्रधिः	५७१
सर्वेश्वरपोट्टलीरसः	५७२

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
सर्वामयहरो रसः	५७५	देवदार्वादिचूर्णम्	५९३
वरुणकषायः	५७७	देवदालीपञ्चाङ्गचूर्णम्	,,
शोभाञ्जनादिक्वाथः	,,	तक्रासवः	,,
वृद्धिचिकित्सा	५७८	एरण्डक्षारम्	५९४
वातारिरसः	,,	शरपुङ्खादियोगः	५९५
सामान्योपायः	५७९	वज्रक्षारप्रयोगः	,,
दार्वीप्रयोगः	,,	काञ्चनीप्रयोगः	,,
वातारिरसस्य प्रयोगोपदेशः	,,	प्लीह्नि रक्तमोक्षणोपदेशः	,,
तैलार्द्रकप्रयोगः	५८०	**शूलचिकित्सा**	५९६
आन्त्रवृद्धौ पानीयतैलम्	,,	अग्निमुखरसः	,,
आन्त्रवृद्धौ पानीयतैलान्तरघृतञ्च	,,	त्रिनेत्ररसः	५९८
अन्त्रवृद्धौ मांसरसः	५८१	सौभाग्ययोगः	५९९
अन्त्रवृद्धौ द्वितीयमांसरसः	,,	चिन्तामणिरसः	,,
गुल्मः	५८२	शूलकेसरीरसः	६००
गन्धकादिपोट्टलीरसः	,,	मृतोत्थापनरसः	६०१
गन्धकादिपोट्टल्याः प्रयोगान्तरम्	५८३	क्षारताम्ररसः	६०३
वङ्गेश्वररसः	५८४	शूलान्तकर :	६०४
शिखिवाडवरसः	५८५	द्वितीयोऽग्निमुखरसः	६०५
दीप्तामररसः	५८६	द्वितीयत्रिनेत्ररसः	६०६
विद्याधररसः	,,	उदयभास्कररसः	६०७
रक्तोदरकुठाररसः	५८७	शूलगजकेसरीरसः	६०८
वैश्वानररसः	५८८	द्वितीयक्षारताम्रम्	६०९
अग्निकुमाररसः	५८९	ताम्राष्टकम्	६१०
सर्वाङ्गसुन्दररसः	,,	वडवानलगुटिका	,,
गुल्मनाशनरसः	५९२	अग्निकुमाररसः	६११
सामान्योपायः	५९३	शूलहरक्षारः	६१३
तिलक्वाथः	,,	क्षारवटी	६१४

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
सामान्योपायः	६१४
शम्बूकादिलौहम्	,,
अथेन्द्रवारुणिकादिचूर्णम्	६१५
भूदार्व्यादियोगः	,,
सद्यःशूलहरोयोगः	,,
सद्यःशूलहरयोगद्वयम्	६१६
कार्श्य-चिकित्सा	,,
अमृतार्णवरसः	,,
पूर्णचन्द्ररसः	६१७
स्थौल्यचिकित्सा	६१८
वडवाग्निमुखरसः	,,
स्थौल्ये पूर्वकृत्यनिर्देशः	,,
मध्वार्द्रकप्रयोगः	,,
अग्निकुमाररसः	,,
अम्लपित्त-चिकित्सा	६२३
तत्रादौ अम्लपित्तलक्षणम्	,,
लीलाविलासरसः	,,
ताम्रद्रुतिरसः	६२५
कुष्माण्डखण्डलेहः	६२७
सामान्योपायः	६२८
वमनयोगः	,,
विरेचनयोगः	६२९
पित्तरोग-चिकित्सा	,,
पित्तान्तकरसः	,,
दशसारचूर्णम्	६३०
एकोनविंशोऽध्यायः।	
उदरादिचिकित्सा	६३१
जलोदरलक्षणम्	,,
वातोदरलक्षणम्	६३२
उदरघ्नरसः	६३३
विनोदविद्याधररसः	,,
सुरेचनकररसः	६३४
मृत्युञ्जयरसः	,,
उदरे विरेचनविधिः	६३६
त्रैलोक्यसुन्दररसः	,,
महावह्निरसः	६३७
गुडनागरप्रयोगः	६३८
वैश्वानररसः	,,
उदयमार्त्तण्डरसः	६३९
सूर्यप्रभागुटिका	६४०
वज्रक्षारम्	,,
सामान्योपायाः	६४२
खदिरादियोगः	,,
पिप्पलीप्रयोगः	,,
पाण्डुरोगः	६४३
हंसमण्डूरः	,,
कालविध्वंसनरसः	६४४
पञ्चाननरसः	६४६
आरोग्यसागररसः	६४८
पाण्डुपङ्कशोषणरसः	६५०
पित्तपाण्डवरिरसः	,,
त्रैलोक्यसुन्दररसः	६५१
त्रिनेत्राख्यरसप्रयोगः	,,
जयपालरसः	,,
देवदालीचूर्णम्	६५२

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
पाण्डुहारीहरीतकी	६५२
विजयावटिका	६५३
टङ्कणादियोगः	६५४
कामला	,,
कामलाप्रणुद्रसः	,,
त्रियोनिरसः	६५५
कामेश्वररसः	६५६
सिन्दूरभूषणरसः	६५७
सुधापञ्चकरसः	६५८
मुस्तादिचूर्णम्	,,
सामान्योपायः	६५९
विंशोऽध्यायः ।	
विसर्पजिद्रसः	६६०
वसर्पनाशनतैलम्	६६१
विसर्पहरतैलम्	,,
कुष्ठरोगः	६६२
गलत्कुष्ठलक्षणम्	,,
श्वित्रकुष्ठलक्षणं भेदाश्च	,,
वातकुष्ठहररसः	६६३
पित्तकुष्ठहररसः	,,
कफकुष्ठहररसः	६६४
सन्निपातकुष्ठहररसः	,,
विजयरसः	६६५
सर्वेश्वररसः	६६६
सुप्तकुष्ठारिरसः	६६७
प्रतापलङ्केश्वरः	६६८
कुष्ठनाशनरसः	,,
कुष्ठजिद्रसः	६६९
तालेश्वररसः	,,
महातालेश्वररसः	६७१
ककनसुन्दररसः	६७२
हरिबोलाङ्कुशरसः	६७३
त्रिपुरान्तकरसः	,,
विश्वहितरसः	६७४
व्योषादिगुटिका	६७५
कुष्ठकुठाररसः	६७६
वज्रशेखररसः	६७७
दद्रुकुष्ठविद्रावणरसः	६७९
माणिक्यतिलकरसः	,,
परहितरसः	६८०
तालकेश्वररसः	६८२
खगेश्वररसः	६८४
कुष्ठनाशनरसः	६८५
आरोग्यवर्धिनी गुटिका	,,
नारायणरसः	६८७
मेदिनीसाररसः	६८८
जन्तुघ्नीगुटिका	६९०
धन्वन्तरिरसः	६९१
वज्रधाररसः	६९२
महातालेश्वररसः	,,
कुष्ठकुठाररसः	६९४
स्वर्णक्षीररसः	६९५
त्रैलोक्यविजयतैलम्	६९६
कुष्ठान्तपर्पटीरसः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
कासीसबद्धरसः	६९७
सर्वेश्वररसः	६९८
योगराजगुग्गुलुप्रयोगोपदेशः	६९९
श्वित्रारिरसः	”
चन्द्रप्रभावटिका	७००
क्लिलासनाशनरसः	७०१
उदयादित्यरसः	”
अल्पश्वित्रे शिलादिलेपः	७०३
अङ्कोलतैलादिलेपद्वयम्	”
श्वित्रान्तकरसः	७०४
श्वेतारियोगः	७०५
कृष्णीकरणयोगः	”
श्वित्रकुष्ठारिरसः	७०६
स्नुह्यादितैलम्	”
आरग्वधादितैलम्	”
गन्धपिष्टीतैलम्	७०७
सर्वकुष्ठान्तकृत्तैलम्	७०८
कुष्ठविद्रावणतैलम्	”
वज्रतैलम्	७०९
महाभल्लाततैलम्	७१०
महामार्त्तण्डतैलम्	”
श्वित्रारितैलम्	७१२
कुष्ठारितैलम्	”
कुष्ठामयघ्नगणः	७१३
महानिम्बादिचूर्णम्	”
सर्वकुष्ठाङ्कुशचूर्णम्	७१४
श्वित्रनाशनचूर्णम्	”

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
श्वेतकुष्ठहरचूर्णम्	७१४
सामान्योपायः	७१५
सिध्मेगन्धपाषाणलेपः	”
सिध्मे वराटिकालेपः	”
दद्रुकुष्ठे मयूरक्षारादिलेपः	७१६
चर्मकुष्ठे पर्पटीरसप्रयोगविधिः	”
मेघनादाद्युद्वर्तनम्	”
निर्गुण्ड्यादिप्रलेपः	७१७
गुञ्जाद्युद्वर्तनम्	”
काञ्चन्यादिप्रयोगः	७१८
कुमार्यादिलेपः	”
महामुण्डीलेपः	”
कण्डूव्रणादिहरः शिलादिप्रलेपः	”
गन्धकादिप्रयोगः	७१९
कुष्ठविध्वंसनो लेपः	”
कृमिचिकित्सा	७२०
क्रिमिलक्षणम्	”
अग्नितुण्डरसः	”
क्रिमिज्वरे आखुपर्णीप्रयोगः	७२१
क्रिमौ पर्पटीप्रयोगोपदेशः	”
कीटमर्दनरसः	”
कृमिघ्नरसः	७२२
क्रिमिहररसः	”
कृमिशूलहरो रसः	७२३
सूतभस्मप्रयोगः	”
एकविंशोऽध्यायः ।	
अष्टौ महारोगाः	७२४

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
शीतवातलक्षणम्	७२४
वातारिरसः	७२५
विजयागुटिकाप्रयोगोपदेशः	,,
शीतारिरसः	७२६
स्पर्शवातः	,,
सर्वेश्वररसः	७२७
अर्केश्वररसः	७२८
स्पर्शवातघ्नरसः	,,
गन्धाश्मगर्भरसः	७२९
द्वितीयगन्धाश्मगर्भरसः	७३०
स्पर्शवातारिरसः	७३१
स्पर्शवातान्तकृद्वटी	,,
स्पर्शवातारितैलम्	७३२
स्पर्शवाते राजवृक्षप्रयोगः	७३३
स्पर्शवाते चक्रमर्दादिः	,,
अस्पर्शवाते त्रिगन्धप्रयोगः	७३४
अस्पर्शवाते ह्यियावलीप्रयोगः	,,
यवानीघृतम्	,,
स्पर्शान्तकरोऽर्कदुग्धप्रयोगः	,,
स्पर्शान्तको हल्यादियोगः	७३५
स्पर्शवाते रसेन्द्रलेपः	,,
रक्तवात-चिकित्सा	,,
रक्तवातलक्षणम्	,,
सामान्योपायाः	,,
त्रियोनिरसप्रयोगः	,,
कोकिलाक्षादिकषायः	७३६
संशोधनोपदेशः	,,
रक्तवातेऽपथ्यम्	७३६
आमवातः	,,
आमवातेवातारिरसप्रयोगोपदेशः	,,
अनिलारियोगः	७३७
आमवातेएरण्डतैलप्रशंसा	,,
अपस्मारः	,,
पर्पटीरसप्रयोगविधिः	७३८
ब्राह्म्यादिनस्यम्	,,
गवाक्ष्यादिनस्यम्	,,
श्वेतापराजितादिनस्यम्	७३९
अपस्मारहरनस्यम्	,,
अपस्मारहरो योगः	,,
उन्मादः	७४०
माहेश्वरधूपः	,,
उन्मादे पर्पटीरसप्रयोगोपदेशः	७४१
उन्मादे उपचारविशेषाः	,,
एकाङ्गवातः	७४२
वडवानलरसः	,,
मार्त्तण्डेश्वररसः	७४३
चतुःसुधारसः	७४५
सर्ववातारिरसः	७४७
वातविध्वंसनरसः	७४९
वृकोदरगुटिका	७५१
प्रभावती वटी	७५२
स्वच्छन्दभैरवरसः	७५३
स्वच्छन्दभैरवरसः	७५४
वडवानलरसः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
त्र्यम्बकेश्वररसः	७५५
गगनगर्भा वटी	७५६
वातगजाङ्कुशरसः	,,
शतावरी गुग्गुलुः	७५७
योगराज गुग्गुलुः	७५८
द्वितीयो योगराजगुग्गुलुः	७६०
षडङ्गगुग्गुलुः	७६१
विजयभैरवतैलम्	७६२
द्वितीयविजयभैरवतैलम्	,,
सूततैलम्	७६३
एरण्डतैलत्रिफलादिसिद्धघृतवानन्द भैरवोपदेशश्च	७६४
सामान्योपायाः	,,
पर्पटरसप्रयोगविधिः	,,
सर्जतैलम्	७६५
एकाङ्गवाते पर्पटीरसप्रयोगविध्यन्तरम्	,,
धूमसारादिषडङ्गप्रयोगः	,,
निर्गुण्डीप्रयोगः	७६६
रक्तैरण्डप्रयोगः	,,
इन्द्रवारुणीप्रयोगः	,,
सर्वाङ्गैकाङ्गवातारिरसः	,,
वातरक्तः	७६७
अधिकारान्तरोक्तौषधप्रयोगोपदेशः	,,
वातरक्तादिसर्वरोगे सर्वेश्वरी पर्पटी	,,
पित्तरोग-चिकित्सा	,,
चन्द्रावलेहः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
अमृतप्राशचूर्णम्	७६८
ऐलेयकतैलम्	७७०
ऐलेयसर्पिः	७७१
ऐलेयकप्रयोगः	७७२

द्वाविंशोऽध्यायः।

वन्ध्यादिचिकित्सा	७७३
वन्ध्यादोषभेदादिकथनम्	,,
जयसुन्दररसः	७७५
रत्नभागोत्तररसः	७७७
चक्रिकाबन्धरसः	७७८
वर्धमानरसः	७८०
द्रुतिसाररसः	७८३
समान्योपायाः	७८५
देवदालीप्रयोगः	,,
शरपुङ्खाप्रयोगः	७८६
रुद्राक्षादिप्रयोगः	,,
श्वेतकण्टकारीप्रयोगः	,,
विष्णुक्रान्ताप्रयोगः	७८७
अश्वगन्धाप्रयोगः	७८८
शिवोक्ततान्त्रिकप्रयोगः	,,
मृतवत्सालक्षणम्	,,
शङ्करोक्तदेवव्यपाश्रयचिकित्सा	,,
युक्तिव्यपाश्रये वन्ध्याकर्कटकीप्रयोगः	७९१
गर्भिणीरोगः	,,
गर्भिणीरोगापनयन-गर्भपोषण-सामान्योपायाः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
प्रथममासे पद्माकादिकल्कः	७९१
द्वितीयमासे नीलोत्पलादिकल्कः	,,
तृतीयमासे श्रीखण्डादिकल्कः	७९२
तृतीयमासे नीलोत्पलादिकल्कान्तरम्	,,
गर्भिणीज्वरहरः पाठादिकषायः	,,
गर्भिणीज्वरहरश्छिन्नादिकषायः	७९३
गर्भिणीज्वरहरः पयस्यादिकषायः	,,
गर्भिणीज्वरहानिः	७९४
गर्भिण्यतीसारहरो वृक्षकत्वगादिकषायः	,,
गर्भिण्यतिसारहरौ श्रीपर्ण्यादिबलादिक्काथौ	,,
गर्भिण्युदावर्त्तादिहरः पुनर्नवादिकषायः	,,
गर्भिण्याः शोथहरोपायः	७९५
गर्भिणीशोथहरः पुनर्नवादिलेपः	,,
गर्भिण्युदावर्त्तादिहरोवर्षाभूक्काथः	,,
गर्भिण्याः पित्तार्तिहरोयष्टिकादिक्काथः	,,
गर्भिण्याः श्वासकासहरस्तिक्तकादिकषायः	७९६
गर्भिणीकासे मरिचप्रयोगः	,,
गर्भिण्या वान्तौ लाजादिकषायः	,,
गर्भिण्या हिक्कायां बालबिल्वादिक्काथः	,,
गर्भिण्या अग्निमान्द्ये अजमोदादिचूर्णम्	,,
गर्भिण्या वातरोगे बालबिल्वादिसाधितक्षीरप्रयोगः	७९७
गर्भिण्या मूत्ररोगे श्वदंष्ट्रादिकषायः	,,
गर्भिण्या मासानुमासिकयोगाः	,,
मूढगर्भचिकित्सा	८००
अन्तर्मृतापत्याया लक्षणम्	,,
मूढगर्भाया असाध्यलक्षणम्	,,
गर्भप्रसवसामान्योपायाः	८०१
तत्र करञ्जबीजादिप्रलेप अहिनिर्मोकस्नुहीक्षीरौ च	,,
हलिनीप्रयोगः	,,
यष्टिकादिकल्कः	,,
लाङ्गल्यादिलेपः	८०२
मातुलुङ्गीरम्भाप्रयोगौ	,,
सिद्धार्थादिवस्तिः	,,
सिद्धार्थकानुवासनम्	,,
सूतिका-चिकित्सा	**८०३**
पर्पटीरसः	,,
सूतिकारोगनाशनरसः	,,
सौभाग्यशुण्ठी	,,
सामान्योपायाः	८०५
तत्रादौ कौरण्टकादिक्काथः	,,
पञ्चमूलक्काथः	,,
भूनिम्बादितैलम्	,,
योनिव्यापच्चिकित्सा	**८०६**
योनिशूलहरोनिर्गुण्ड्यादिप्रयोगः	,,
प्रस्रंसिन्यां कारलीकन्दप्रयोगः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
शिथिलयोनौ इन्द्रगोपप्रयोगः	८०६
विवृतायां माकन्दमूलादिलेपः	,,
श्रीपर्णीतैलम्	८०७
बालरोगः	,,
माहेश्वरधूपः	,,
विजयधूपः	८०८
ग्रहनाशिनीगुटिका	,,
सामान्योपायाः	८०९
कणास्वर्णप्रयोगः	,,
सद्योजातबालस्य संज्ञाजननोपायः	,,
सद्योजातबालस्य ज्वरादिनिवारणोपायः	,,
पित्तज्वरे रोहिणीक्षीरम्	,,
पित्तज्वरे अश्वत्थक्षीरम्	८१०
गन्धोत्पलजटादिकल्कः	,,
सहदेव्यादिचूर्णम्	,,
न्यग्रोधादिक्काथः	,,
रक्तातिसारहरचूर्णम्	८११
सक्षीरबोलप्रयोगः	,,
मूत्रविड्ग्रहहरं मधुकादि	,,
यष्ट्यादिघृतम्	,,
शङ्खनाभ्यादिवर्तिः	८१२
अश्वगन्धाघृतम्	,,
तालुकण्टलक्षणम्	,,
तालुकण्टकचिकित्सा	८१३
गुदकीटस्य निदानलक्षणे	,,
गुदकीटचिकित्सा	८१४

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
गुदपाकचिकित्सा	८१४
मुखपाकचिकित्सा	८१५
नाभिपाकचिकित्सा	,,
कुण्डलचिकित्सा	,,
बालपञ्चामृतम्	८१६
तिक्ताद्यं घृतम्	,,
राजीकुष्ठादि लेपः	,,
छिन्नातैलम्	८१७
स्फूर्जकादितैलम्	,,
निम्बादिघृतं क्षीरञ्च	,,
त्रयोविंशोऽध्यायः ।	
उन्मादरोगः	८१८
उन्मादस्य निदानसम्प्राप्ती	,,
उन्मादलक्षणम्	८१९
उन्मादचिकित्सा	,,
ग्रहघ्नधूपः	,,
सामान्योपायाः	,,
अर्कमूर्तिरसस्यप्रयोगविधिः	,,
निर्गुण्डिकादितैलम्	८२०
अपस्मारः	,,
अपस्मारसम्प्राप्तिलक्षणे	,,
अपस्मारचिकित्सा	८२१
अपस्मारनाशनरसः	,,
नवाङ्गवटिका	८२२
सूतकप्रत्ययः	,,
सर्वेश्वररसः	८२३
धूस्तूरपञ्चाङ्गघृतम्	८२४

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
चूर्णाञ्जनम्	८२४
मसीयोगः	”
तिलजदीपाञ्जनम्	८२५
चण्डभैरवरसः	”
पर्पटीरसप्रयोगविधिः	८२६
पर्पटीरसस्य प्रकारान्तरेण सेवनोपदेशः	”
नेत्ररोगाणां संख्या	”
नेत्ररोग-चिकित्सा	८२७
ताम्रवर्तिः	”
ताम्रद्रुतिः	”
ताम्रद्रुतिः	”
ताम्रद्रुतिः	८२९
गन्धकद्रुतिः	८३०
गरुडाञ्जनम्	८३१
तिमिरहराञ्जनम्	८३२
पटलहराञ्जनम्	”
रक्ताञ्जनम्	८३३
शम्बूकादिवर्तिः	”
नक्तान्ध्ये पञ्चाङ्गगुटिका	”
नवनेत्रदात्रीवर्तिः	८३४
नयनरोगहरा वर्तिः	”
शिग्रुतैलम्	८३५
नागादिवर्तिः	”
वाताभिष्यन्दे इन्द्रादिवर्तिः	”
श्लेष्माभिष्यन्दे शुल्वादिवर्तिः	८३६
त्रिदोषाभिष्यन्दे रसेन्द्रवर्तिः	”

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
पित्ताभिष्यन्दे तीक्ष्णादिवर्तिः	८३७
पित्ताभिष्यन्दे नागादिवर्तिः	”
ताम्रादिवर्तिः	”
पारदादिवर्तिः	८३८
एकत्रिंशाङ्गवर्तिः	”
षडङ्गवर्तिः	८३९
द्वादशाङ्गवर्तिः	”
पटलहरेन्द्ररसः	८४०
स्वर्णादिवर्तिः	”
विशाद्यञ्जनम्	”
पुष्पहराञ्जनम्	८४१
शिग्रुमूलाद्याश्च्योतनम्	”
नेत्रशूलघ्नमाश्च्योतनम्	”
पौनर्नवाञ्जनम्	”
नेत्रजलस्रावहरोयोगः	”
वक्ररोमहराञ्जनञ्च	”
नृकपालाञ्जनम्	८४२
काचान्ध्यहराञ्जनम्	”
रात्र्यन्धहराञ्जनम्	”
अभिष्यन्दहरो योगः	८४३
रात्र्यन्धे व्योषाञ्जनम्	”
रात्र्यन्धे मरिचाञ्जनम्	”
तिमिरहराञ्जनम्	”
चतुर्विंशोऽध्यायः ।	**८४५**
कर्णरोगः	”
कर्णरोगनामानि	”
कर्णरोगचिकित्सा	८४६

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
कर्णरोगहरी वज्रादिवटिका	८४६
कर्णामयघ्नतैलम्	,,
क्रिमिकर्णारितैलम्	८४७
सामान्योपायाः	,,
कर्णशूले लवणार्द्रकप्रयोगः	,,
कर्णशूले तिलपर्णीप्रयोगः	,,
अर्कपत्रप्रयोगः	,,
लशुनरसप्रयोगः	,,
पूयहरो मेघनाद स्वरसः	८४८
बाधिर्यहरं मुषल्यादिचूर्णम्	,,
कर्णमूलस्फोटहरः केतकादिलेपः	,,
कर्णगलादिस्फोटहरः पुत्रजीवलेपः	,,
गोमक्षिकानिःसारणार्थं तगर-चर्वणादिकम्	,,
कर्णपालीवर्धको मुषलीप्रयोगः	८४९
कर्णवर्धकचर्मचेटप्रयोगः	,,
कर्णवृद्धिकरोवराहतैलप्रलेपः	,,
नासारोगाः	८५०
मणिपर्पटीरसः	,,
पूयास्रलक्षणम्	८५१
सामान्योपायः	,,
कुङ्कुमादिनस्यम्	८५२
कामलाहराञ्जनम्	,,
कामलाहरमञ्जनान्तरम्	,,
मुखरोगाः	,,
मुखरोग-चिकित्सा	८५३
ताप्यादिवटी	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
धातुबद्धरसगुटिका	८५३
महासारस्वतीचूर्णम्	८५५
मुखरोगादिगलगण्डमालारोगाणां सामान्योपायाः	,,
गलकीलके आमलकप्रयोगः विषतिन्दुकादि वटी च	,,
गलकीलके सैन्धवप्रयोगः	८५६
गलकीलके भल्लातकप्रयोगः	,,
दन्तदार्ढ्यकरोजिह्वापूतिगन्धहरश्च-जयाप्रयोगः	,,
मुखपाके पर्पटीरसः	,,
मुखशोषे महाराष्ट्री गुटिका	८५७
सामान्योपायाः	,,
मुखवैवर्ण्ये पुनर्नवाद्युद्वर्तनम्	,,
नीलिकायां रजन्यादिलेपः	,,
मुखवैवर्ण्ये वङ्गभस्मप्रयोगः	८५८
मुखवैवर्ण्यादौ मातुलुङ्गादिप्रलेपः	,,
मञ्जिष्ठादिप्रलेपः	,,
मुखदौर्गन्ध्यनाशिनी कुष्ठादिवटी	,,
मुखदौर्गन्ध्ये गृहधूमक्वाथः	८५९
मुखदौर्गन्ध्ये पथ्यादि वटिका	,,
मुखवैरस्ये लाजादिचूर्णम्	,,
उपजिह्वायां निर्गुण्ड्यादियोगः	,,
कृमिदन्ते अभयादिगुटिका	८६०
कृमिदन्ते कासीसादिगुटिका	,,
कृमिदन्ते विशालाधूमः	,,
चलदन्ते जात्यादिदन्तधावनम्	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्कः
चलदन्ते मूलकबीजप्रयोगः	८६१
मुखवैरस्ये आरनालगण्डूषः	,,
सुखदो गण्डूषः	,,
कण्ठशालूकादौ पारदादिप्रलेपः	,,
गलकीलेसैन्धवप्रयोगः	८६२
गलरोगे मण्डूरलेपः	,,
अपचीगण्डमालाचिकित्सा	,,
गण्डमालायां ब्रह्मदण्डीयमूल-प्रयोगः	८६३
गण्डमालायां गन्धकादिप्रयोगः	,,
गण्डमालायां जैपालप्रयोगः	,,
चलदन्ते हेमतारादिगुटिका	८६४
चलदन्ते धातुवद्धरसगुटिकोपदेशः	,,
शिरोरोगाणां नामानि	,,
शिरोरोगचिकित्सा	८६५
शिरोरोगारिरसः	,,
मस्तकरोगाणां सामान्योपायाः	,,
अर्द्धावभेदके गिरिकर्णीप्रयोगः	,,
गुडादिनस्यम्	,,
मरिचप्रयोगः	,,
शिरः शूले कुङ्कुमादिनस्यम्	८६६
अर्धशूले मरिचप्रयोगः	,,
यूकालिक्षायां पारदप्रयोगः	,,
दारुणतैलम्	,,
केशपाते हरिद्रादिलेपः	८६७
दृढकेशकरो जातिपुष्पादिप्रलेपः	,,
केशपाते भृङ्गयादितैलम्	,,
इन्द्रलुप्ते भल्लातादिलेपः	८६७
इन्द्रलुप्ते गुञ्जाप्रयोगः	८६८
सूर्यावर्तादौ अभ्रादिवटिका	,,
पलितादौ कटुतैलनस्यम्	८६९
खालित्ये स्नुह्यादितैलं विषतैलञ्च	,,
व्रणस्यभेदनिर्देशः	८७०
जात्यादिघृतम्	,,
सामान्योपायाः	८७१
व्रणशोधनरोपणार्थंशुल्वादिप्रयोगः	,,
व्रणरोपणार्थं पटोलादिलेप	,,
व्रणरोपणार्थं निम्बपत्रादिप्रयोगः	,,
व्रणरोपणे अपामार्गप्रयोगः	,,
व्रणरोपणे गुडटङ्कणवर्त्तिः	८७२
दूषितव्रणलेखनार्थं पारदादिप्रयोगः	,,
भग्नस्य भेदनिर्देशः	,,
भग्नेपर्पटीरसप्रयोगविधिः	८७३
भग्ने वज्रीलेपः कान्तपाषाणलेपश्च	,,
भगन्दरलक्षणम्	,,
भगन्दरस्य निरुक्तिः	,,
रविताण्डवरसः	८७४
सामान्योपायाः	८७५
कर्तव्यनिर्देशः	,,
लाङ्गल्यादिप्रलेपः	,,
कालाग्निरसः	,,
चक्रिकाबद्धरसप्रयोगोपदेशः	,,
स्फोटने चतुरङ्गलेपः	८७६
स्फोटने हरिद्रादिप्रलेपः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
शोषणे नरास्थितैलप्रयोगः	८७६
शोधनरोपणे ताम्रभस्मप्रयोगः	८७७
रोपणे मार्जारास्थिप्रलेपः	,,
भगन्दरव्रणक्षालने त्रिफलाकषायः	८७७
भूतलोत्थचूर्णप्रयोगः	,,
कुक्कुरास्थिलेपः	,,
ग्रन्थिलक्षणं व्युत्पत्तिश्च	८७८
मेदोग्रन्थौ अरिमेदादिभस्मलेपः	,,
मेदोवृद्धौ गुडूच्यादिः	,,
गण्डमालायामुदयभास्करः	,,
कालस्फोटादौ पुत्रजीवप्रलेपः	८७९
सन्धिग्रन्थौ रक्तस्रावविधिः	,,
कक्षग्रन्थ्यादौ पुत्रजीवप्रयोगः	८८०
कालस्फोटे गुञ्जापत्रादिचूर्णम्	,,
कालस्फोटे विष्णुक्रान्तादिप्रलेपः	,,
ग्रन्थ्यादौ पुनर्नवादिप्रलेपः	,,
अर्बुदभेदः	८८१
अर्बुदहररसः	,,
सामान्योपायाः	,,
गण्डमालापचीलक्षणम्	८८२
गण्डमालायां सुरवारुण्यादियोगः	८८३
गण्डमालायामर्कक्षीरादिलेपः	,,
अपच्यां गिरिकर्णिकाप्रयोगः	८८४
गण्डमालायां छुछून्दरी तैलम्	,,
गण्डमालायां सहदेवीप्रयोगः	,,
अपच्यादौ गुञ्जादिलेपः	,,

पञ्चविंशोऽध्यायः ।

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
क्षुद्ररोगाणां नामानि	८८५
क्षुद्ररोगे पर्पटीप्रयोगविधिः	८९५
व्यङ्गे शशरुधिरप्रयोगः—जातिफलप्रयोगश्च	,,
व्यङ्गे इङ्गुदीमज्जप्रयोगः	,,
कुनखे स्नुहीक्षीरादिप्रलेपः	,,
कुनखे अभयाप्रयोगः	८९६
कुनखे कुष्ठादिप्रलेपप्रयोगः	,,
कुनखे पुत्रजीवप्रयोगः	,,
कक्षाग्रन्थौ शिग्रुप्रयोगः	,,
कक्षाग्रन्थौ विषादिलेपः	,,
स्तनविद्रधौ क्रियाक्रमः	,,
स्तनविद्रधिस्फोटने एकवीरप्रयोगः	८९७
स्तनविद्रधिरोपणे यष्ट्यादिचूर्णम्	,,
स्तनविद्रधिरोपणे दारुवर्त्तिः	,,
लिङ्गरोग-चिकित्सा	**८९८**
बोलप्रयोगः	,,
लिङ्गपाके उडुम्बरादिक्षालनम्	,,
लिङ्गपाके जीरकप्रयोगः	,,
लिङ्गपाके महाशङ्खप्रयोगः	,,
लिङ्गपाके घोण्टादिलेपः	,,
लिङ्गपाके गन्धप्रयोगः	८९९
लिङ्गपाके निम्बादिचूर्णम्	,,
लिङ्गव्रणरोपणे सैन्धवप्रयोगः	,,
लिङ्गव्रणादौ शिग्रुप्रयोगः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
लिङ्गादिग्रन्थौ कुष्ठादिलेपः	८९९
गुह्यादिगतपीटिकायामश्वत्थादि प्रलेपः	९००
लिङ्गादिपिडकायां वाकुचीचित्रक प्रयोगः	,,
लिङ्गादिपिडकायां सर्पाक्षीप्रयोगः	,,
उपदंशहरो धूपः	,,
कण्ड्वादौ काञ्चनीप्रयोगः	९०१
पामायां शाखोटकक्वाथः	९०२
पादकण्डूहरयोगः	,,
पाददाहे तिलादिचूर्णम्	,,
पादकण्डूहरं प्रयोगान्तरम्	,,
पादस्फुटने पथ्यामर्दनम्	,,
कदरे यवचिञ्चादिकषायः	९०३
विपादिकायां गुडादिप्रलेपः	,,
विपादिकायां मदनादिप्रलेपः	,,
विपादिकायां मदनादिप्रलेपः	,,
कण्ड्वादौ रसादिप्रलेपः	,,
स्वरभङ्गे	९०४
धात्रीफलस्वरसप्रयोगः	,,
स्वरभङ्गे देवदार्वादिचूर्णम्	,,
गलदाहे सैन्धवादि चूर्णम्	९०५
गलदाहे करञ्जमज्जापथ्याप्रयोगः	,,
स्तनवर्द्धने स्नेहनस्यम्	,,
स्तनव्रणेकुरूवकतैलम्	९०६
स्तनविद्रधौ शुल्वप्रयोग	,,
स्नायुके कुम्भीप्रयोगः	९०७
भस्मकलक्षणम्	९०७
श्लीपदस्य सम्प्राप्तिलक्षणे	,,
श्लीपदहररसः	,,
श्लीपदहरलेपः	९०८
वल्मीकेपित्तलभस्मप्रयोगः	,,
स्थौल्येविडङ्गादिचूर्णम्	९१०
स्थौल्येत्रिफलादिपत्रादिकषायौ	,,
विपरीतरतिजव्याधिलक्षणम्	,,
विपरीतरतिजव्याधिप्रतीकारः	९११
उपदंशादिप्रतीकारः	,,
सर्वरक्तविकारे उपायः	९१२
अस्थिभग्नेलाक्षादिप्रलेपः	,,
स्नायुकेअस्पर्शारिप्रयोगोपदेशः	,,
योनिव्यापन्निदानम्	,,
योनिव्यापत्सुपिष्टीयोगः	,,
योनिशूलेनिम्बादिगोलकम्	९१३
योनिरोगेसोमराज्यादिप्रलेपः	,,
योनिकृमिशूलेरसोनादिप्रलेपः	,,
मञ्जिष्ठादिघृतम	,,
रजोनाशेत्रियोनिरसप्रयोगविधिः	९४१
पुष्परोधहरयोगत्रयम्	,,
पुष्परोधरक्तगुल्महरयोगद्वयम्	९१५
पुष्परोधे चणकप्रयोगः	,,
पुष्परोधे गुडव्योषादिचूर्णम	,,
गर्भाजनने धुस्तूरप्रयोगः	९१६
गर्भाजनने सैन्धवप्रयोगः	,,
गर्भस्रावणे चूर्णप्रयोगः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
गर्भस्रावणे एरण्डप्रयोगः	११६
गर्भस्रावणे चित्रकप्रयोगः	,,
अतिरक्तस्रावे शरपुङ्खाप्रयोगः	,,
अतिरक्तस्रावे अर्कमूर्तिरसप्रयोगविधिः	,,
योनिशूलहरयोगद्वयम्	११८
रजोदोषे व्योषादितैलम्	,,
पुष्यानुगं चूर्णम्	,,
विविधविषनिर्देशः	११९
विष–चिकित्सा	,,
मेघनादप्रयोगः	,,
सूतशतावरीयोगः	,,
सूतसोमराजीयोगः	१२०
अभ्रकादिप्रलेपः	,,
लूताविषेसूतभस्मप्रयोगः	,,
महासर्पविषे नागदमनप्रयोगः	१२१
पञ्चाङ्गशिरीषप्रयोगः	,,
अश्वगन्धावन्ध्याप्रयोगौ	,,
वृश्चिकविषेव्योषादितैलम्	,,
मृतसञ्जीवनम्	,,
आखुविषेशिरीषप्रयोगः	१२२
सर्पविषे देवदार्वादियोगः	,,
सर्पविषे टङ्कणप्रयोगः	,,
वृश्चिकविषे मनोह्वादिगुलिका	१२३
वृश्चिकविषे पलाशबीजगुलिका	,,
गरविषे कनकादिवटी	,,
सविषान्ने वृक्षाम्रादियोगः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
तार्क्ष्यसूतः	१२४
विषहररसः	,,

षड्विंशोऽध्यायः ।

जरारोग–चिकित्सा	१२५
रसायनगुणाः	,,
जरायानिदानम्	,,
वार्धक्यहररसायनम्	,,
उदयादित्यरसः	१२६
सर्वरोगहररसयानम्	१२७
मासिकरसायनम्	,,
षाण्मासिकरसायनम्	१२८
पाक्षिकरसायनम्	१२९
हेमादिरसायनम्	,,
पिप्पल्यादिरसायनम्	,,
अष्टमासिकरसायनम्	१३०
त्रिवार्षिकरसायनम्	१३१
षष्ठ्यधिकत्रिशतवर्षायुष्कररसायनम्	१३२
सहस्रवर्षायुष्कररसायनम्	,,
त्रिफलारसायनम्	१३३
द्वितीयत्रिफलारसायनम्	,,
तृतीयत्रिफलारसायनम्	१३४
षडङ्गरसायनम्	,,
वार्षिकरसायनम्	,,
कुष्ठादिहररसायनम्	१३५
ज्योतिष्मतीतैलरसायनम्	,,
सर्वरोगान्तकरसायनम्	१३६

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
कान्तरसायनम्	१३६
अन्यत् त्रिफलारसायनम्	१३७
द्वितीयकान्तरसायनम्	१३८
तृतीयकान्तरसायनम्	,,
कान्ताभ्रकरसायनम्	१३९
पाठादिघृतम्	१४०
ताप्यादिवटकः	,,
कमलाविलासरसः	१४१
लक्ष्मीविलासरसः	१४२
सौश्रुतनारिकेलप्रयोगः	१४३
सप्तविंशोऽध्यायः ।	
वाजीकरणम्	१४५
वाजीकरणगुणाः	,,
वाजीकरणस्य निरुक्तिः	,,
शुक्रक्षयस्य निदानम्	,,
वाजीकरणयोगोपदेशे प्रतोज्ञा	,,
वाजीकरणप्रयोगे पूर्वकृत्यम	१४६
कामकलाख्यरसः	,,
कामदेवरसः	१४७
मदनसुन्दररसः	१४८
पूर्णचन्द्ररसः	१४९
मदनमुन्मद्ररसः	,,
कुसुमायुधः	१५१
सूतेन्द्ररसः	१५३
मदनकामदेवरसः	१५४
कामधेनुरसः	१५६
महाभ्रसत्त्वम्	१५८
उमापतिरसः	१५९
महाकनकसुन्दररसः	१६०
अमृतार्णवरसः	१६१
मदनसञ्जीवनरसः	१६४
पुष्पधन्वारसः	१६५
रसेन्द्रचूडामणिः	१६६
पूर्णचन्द्ररसः	१६८
महाकल्कः	,,
मदनमोदकः	१७२
कामेश्वरमोदकः	१७३
वाजीकरणेसामान्योपायाः	१७४
मधुकप्रयोगः	,,
श्वङ्गीप्रयोगः	१७५
स्वयङ्गुप्तादिचूर्णम्	,,
तिलप्रयोगः	,,
सिन्दूररसः	,,
कार्श्यहरयोगः	१७६
कार्श्यहरयोगत्रयम्	,,
लिङ्गलेपः, द्रावणञ्च	१७७
द्रावणे सूतप्रयोगः	,,
सिन्दूरमधुलेपः	,,
स्तम्भने कृकवाकुप्रयोगः	,,
कर्पूरादिप्रलेपः	१७८
पुण्डरीकप्रयोगः	,,
मदनजीवनः	,,
अष्टविंशोऽध्यायः ।	
लोहकल्पः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
रसस्य प्राधान्यकीर्तनम्	९७९
रसभेदाः	,,
पानीयकषायविधिः	,,
स्वर्णरौप्यशोधनम्	,,
ताम्रशोधनम्	,,
वङ्गनागयोः शोधनम्	९८०
कान्तलौहस्य लक्षणम्	,,
कान्तलौहस्य शोधनम्	,,
धातूनां सामान्यमारणम्	९८१
स्वर्णमारणम्	,,
रौप्यताम्रमारणम्	,,
वङ्गसीसकमारणम्	८२९
सीसकस्यमारणान्तरम्	,,
लौहमारणम्	९८३
असम्यङ्मारितलौहस्यलक्षणम्	,,
निरुत्थलौहस्य लक्षणम्	,,
निरुत्थलौहस्य परीक्षा	९८४
अनिरुत्थलौहस्य मारणम्	,,
मृत्युहारी रसः	,,
लोहकल्पः	९८६
लोहमारणप्रकारः	९८७
लोहकल्पः	९८८
लोहकल्पेदन्त्यादिगणः	९९४
ताम्रद्रुतिसंज्ञकोलोहकल्पः	,,
क्षयादौ खण्डखाद्याख्यलोहकल्पः	९९५
धातुभस्मनां पृथक्पृथक् तत्तद्रोगेषु प्रयोगः	९९६
प्रथमद्वितीयलोहकल्पौ	९९६
तृतीयलोहकल्पः	,,
चतुर्थोलोहकल्पः	९९७
पञ्चमो लोहकल्पः	,,
षष्ठलोहकल्पः	,,
शूलेसप्तमलोहकल्पः	९९८
जीर्णज्वरादौ अष्टमोलोहकल्पः	,,
क्षयादौनवमो लोहकल्पः	९९९
विविधरोगे दशमोलोहकल्पः	,,
यक्ष्मादौ एकादशोलोहकल्पः	,,
गरादौ द्वादशत्रयोदशलोहकल्पौ	१०००
अम्लपित्तादौ चतुर्दशोलोहकल्पः	,,
ग्रहण्यादौ पञ्चदशो लोहकल्पः	,,
सर्वरोगेषु षोडशो लोहकल्पः	१००१
कुष्टेसप्तदशो लोहकल्पः	१००२
मेदः प्रभृतिरोगेषु अष्टादशोलोह कल्पः	,,
कुष्ठे एकोनविंशो लौहकल्पः	,,
सर्वरोगेषु विंशतितमो लोहकल्पः	,,
नेत्ररोगे कान्तनागाख्येकविंशलोह कल्पः	,,
रसायने द्वाविंशलोहकल्पः	१००४
अरिष्ठलक्षणे त्रयोविंशलोहकल्पः	,,
जरादौ चतुर्विंशलोहकल्पः	,,
पञ्चविंशादिलोहकल्पचतुष्टयम	,,
रसायने षड्विंशलोहकल्पः	१००५
मृतलोहानां रसत्वकथनम	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
एकोनत्रिंशोऽध्यायः।	
विषकल्पः	१००६
विषोत्पत्तिस्तद्भेदाश्च	,,
स्थावरविषाणां जातिभेदाः	,,
कन्दविषाणां नामानि	१००८
कर्कटादिकन्दविषाणां लक्षणम्	,,
श्वेतादिवर्णभेदेन विषाणां जातिभेदः	,,
वर्णभेदेन विषाणां क्रियाभेदः	१००९
विषामृतयोः तुल्ययोनित्वनिर्देशः	,,
रसायनार्थं विषप्रयोगे विधिः	,,
विषप्रयोगार्हपुरुषकालयोर्निर्देशः	१०१०
विषे निषिद्धद्रव्याणि	,,
अवस्थाविशेषे विषस्यापकारत्वनिर्देशः	,,
विषविद्रावणघृतम्	१०११
श्वित्रारितैलम्	,,
सूर्यप्रभावर्त्तिः	१०१२
विषादिगुटिका	१०१३
जयागुटी	,,
द्वितीया जयागुटी	,,
तृतीया जयागुटी	१०१४
विषस्य मात्रानिर्देशः	,,
प्रयोगकालभेदेन विषस्यक्रियाविशेषः	,,
विषशोधनप्रयोगः	१०१५
नवज्वरे विषकल्पः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
जीर्णज्वरे विषकल्पः	१०१६
जीर्णज्वरादौ विषकल्पः	,,
विषमज्वरे विषकल्पः	,,
रक्तपित्ते विषकल्पः	,,
श्वासकासे विषकल्पः	,,
श्वासहिक्कयोर्विषकल्पः	१०१७
छर्द्यां विषकल्पः	,,
क्षये विषकल्पः	,,
ग्रहण्यां विषकल्पः	,,
मूत्रकृच्छ्रे विषकल्पः	१०१८
उदावर्ताश्मर्योः विषकल्पः	,,
अश्मर्यां विषकल्पः	,,
गुल्मे विषकल्पः	,,
शूले विषकल्पः	,,
गुल्मप्लीह्नोः विषकल्पः	,,
प्लीह्नि विषकल्पः	१०१९
कुष्ठे विषकल्पः	,,
अन्यो विषकल्पः	,,
कुष्ठघ्नो लेपः	,,
विचर्चिकादौ विषकल्पः	,,
विचर्चिकादौ विषकल्पः	१०२०
कुष्ठे विषकल्पः	,,
विषतैलम्	,,
कुष्ठहरतैलम्	१०२१
कुष्ठादौ चन्दनादितैलम्	,,
श्वित्रादौ विषकल्पः	१०२२
अन्योयोगः	,,
वाते विषकल्पः	१०२३

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
अग्निदाहे विषकल्पः	१०२३
वन्ध्यायां विषकल्पः	,,
मूढगर्भे विषकल्पः	१०२४
बुद्धिवर्द्धने विषकल्पः	,,
तिमिरे विषकल्पः	,,
तिमिरे द्वितीयो विषकल्पः	,,
तिमिरे तृतीयो विषकल्पः	,,
काचे विषकल्पः	१०२५
द्वितीयो विषकल्पः	,,
तृतीयो विषकल्पः	,,
शुक्लार्मजिद्विषकल्पः	,,
शुक्लादौ विषकल्पः	,,
पिल्ले विषकल्पः	१०२६
नक्तान्ध्ये विषकल्पः	,,
नक्तान्ध्ये अन्यविषकल्पः	,,
कर्णशूले विषकल्पः	१०२७
शिरःशूले विषकल्पः	,,
शिरःशूले द्वितीयो विषकल्पः	,,
पूतिनस्ये विषकल्पः	,,
मुखरोगे विषकल्पः	,,
मुखरोगेऽन्यो विषकल्पः	,,
पलितादौ विषकल्पः	१०२८
खलतौ विषकल्पः	,,
दग्धाहते विषकल्पः	,,
दुष्टव्रणे विषकल्पः	,,
अपच्यां कृतमालादिघृताख्यो विषकल्पः	१०२९

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
अपचीघ्नतैलाख्य विषकल्पः	१०२९
अपच्यादौ विषकल्पः	,,
दुःसाध्यरोगे विषकल्पः	१०३०
रसायने विषकल्पः	,,
जयागुडिकाख्यो विषकल्पः	१०३१
तत्तद्रोगेषु विषकल्पः	,,
रसायने विषकल्पः	१०३३
वाजीकरणे विषकल्पः	,,
विषहरो योगः	१०३४
आखुविषे विषकल्पः	,,
सर्वविषे विषकल्पः	,,
संज्ञासञ्जनने विषकल्पः	,,
विषदाहे विषकल्पः	१०३५
मात्राऽमात्राभेदेन विषामृतयोर्गुणागुणौ	,,
सहसाविषसेवने अष्टौवेगाः	,,
विषसेवने संशोधनविधिः	,,
विषघ्नगणः	१०३६
गव्यघृतस्य विषघ्नत्वोक्तिः	,,
विषस्य प्रयोगविधिः	,,
विषसेविनः पथ्यापथ्यविधिः	१०३७
प्रयोज्यविषाणि	,,
तीक्ष्णविषातियुक्तविषयोश्चिकित्सा	१०३८
विषेमन्त्रादिक्रियावैफल्ये प्रतीकारः	,,
सर्पदष्टे विषकल्पः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
सर्पविषेमूलविषस्य मात्रा	१०३९	अतिसारे विसूच्यां च	१०५०
कीटविषे वृश्चिकविषे च मूलविषस्य मात्राः	,,	अजीर्णे	१०५१
लूताविषे विषकल्पः	,,	प्रवाहिकायाम्	,,
जयावटिकाख्यो विषकल्पः	,,	मूत्रकृच्छ्रे	,,
विषसेवनस्य फलम्	१०४०	मेहेषु	,,
त्रिंशोऽध्यायः ।		प्लीहादौ	१०५२
रसकल्पः	,,	पक्तिशूले	,,
वडवानलोविडः	,,	आमशूले	,,
रसमारणम्	१०४१	उदरे	,,
रसमारणे प्रकारान्तरम्	,,	कामलायाम्	,,
सप्तप्रकारेण प्रकारान्तरम्	१०४२-१०४३	पाण्ड्वादौ	१०५३
पारदजारणम्	१०४३	शोथे	,,
रसजारणे निषिद्धद्रव्याणि	१०४५	कुष्ठे	,,
क्षयादौ रसकल्पः	,,	कुष्ठे रसकल्पः	१०५४
वज्रपञ्जररसः	१०४६	किलासे रसकल्पः	,,
पञ्चामृतरसः	१०४७	श्वित्रे रसकल्पः	,,
मृतसञ्जीवनी वटी	,,	कृमौ रसकल्पः	१०५५
महानीलतैलम्	१०४८	वातरोगे रसकल्पः	,,
ज्वरे रसकल्पः	१०४९	गृध्रस्यां रसकल्पः	,,
त्रिदोषज्वरे	,,	वातरक्ते रसकल्पः	,,
रक्तपित्ते	,,	स्थौल्ये रसकल्पः	,,
कासे	,,	कार्श्ये रसकल्पः	,,
क्षये	१०५०	अपस्मारादौ रसकल्पः	१०५६
हिक्कायाम्	,,	अपस्मारादौ अन्ययोगः	,,
छर्दिदाहयोः	,,	पक्ष्मशाते रसकल्पः	,,
अर्शसि	,,	नेत्ररोगे रसकल्पः	,,
		तिमिरे	१०५७

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
जाड्ये	,,
व्रणे	,,
ग्रन्थौ मसूरिकायाञ्च	,,
सिध्मादौ	,,
अस्थिस्रावे	१०५८
विषे	,,
विषे प्रयोगान्तरम्	१०५९
सर्पविषे	,,
सर्पविषे पिशाचाद्यञ्जनम्	,,
उन्दुरुविषे	,,
वृश्चिकविषे	१०६०
विषदिग्धव्रणे	,,
रसायने रसकल्पः	,,
अन्योरसकल्पः	,,
पञ्चप्रकारेणकल्पान्तरम्	१०६०–१०६२
वाजीकरणे मदनवर्धनाख्यो रसकल्पः	,,
वाजीकरणे	,,
रसप्रयोगे उपचारविधिः	१०६३
रससेवनेऽपथ्यानि	,,
निषिद्धव्यवहारे दोषः	१०६४

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
निषिद्धद्रव्यव्यवहारजदोषेप्रतीकारः	१०६४
नागवङ्गयुक्तरससेवनेप्रतीकारः	,,
ग्रन्थस्योपसंहारः	१०६५
औषधीनां गुणदोषकरणे कारणम्	,,
औषधसेवनविधिः	१०६६
आचाररसायनम्	,,
आयुर्वेदोपदेशस्यावश्यपालनीयोक्तिः	१०६७
कुवैद्यवर्जनोपदेशः	,,
शास्त्रज्ञवैद्यस्य साफल्योक्तिः	१०६८
चिकित्सायाः सर्वत्रसाफल्यतोक्तिः	,,
चिकित्साकर्मणि प्रमादेदोषाः	,,
चिकित्साकर्तव्यावधिः	१०६९
वैद्यातुरयोरन्योन्यकर्तव्यः	,,
वैद्यस्य सर्वत्रावश्यकता	,,
पुरावृत्तद्वारा वैद्यस्य सर्वत्र सर्वपूज्यत्वप्रतिपादनम्	,,
ग्रन्थकर्तुर्विज्ञप्तिः	१०७१

॥ श्रीः ॥

विमर्शानुक्रमणिका-

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
जारणलक्षणम्	६
ग्रसनप्रकारः	७
मूर्च्छनाप्रकारः	८
बन्धनप्रकारः	,,
भस्मकरणप्रकारः	,,
रसायनलक्षणम्	९
गौतमोक्तअष्टगुण	११
ब्रह्मज्ञानोपाय	१२
सदाचारनिर्देश	,,
दोषगणना	१६
रसायनलक्षणम्	,,
अष्टादशसंस्काराः	,,
नागादिअष्टदोष	१८
पर्पटयादि सप्तकञ्चुकदोष	,,
रसरक्षामन्त्रः	,,
ध्यानप्रकारः	,,
पारदीयविमर्शः	२०
पारदकी उपस्थिति	२१
पारदकोसर्वप्रथमप्राप्ति	२३
पारदनिकालनेयोग्य खनिज	२७
हिङ्गुलः	,,
चर्मारः	२८
हीरकद्युतिः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
रसकर्पूरकीप्राचीननिर्माणविधि	२९
रसकर्पूरकीनव्यनिर्माणविधि	३०
प्राकृतिकपारद	३१
पारदरजतमिश्रक	,,
टेट्राहाईड्राइट	,,
परीक्षा	,,
पारदप्राप्ति के कुछ गौण खनिज	,,
लिविङ्गस्टोनाईट	,,
बार्सेनाईट	३२
ग्वाडलकाजाराइट	,,
टेर्लिङ्ग्वाईट	३३
इगलेस्टोनाईट	,,
क्लेनाइट	,,
मोजेसाइट	,,
मोन्ट्रोयडाईट	,,
रिमेनाइट	,,
ओनोफ्राइट	,,
कोलोरेडोआईट	,,
लेहरबेकाइट	३४
आयोडीराइट	,,
पारदीयखनिजप्राप्तिकेस्थान	३५
बृटिशबोर्नियो	,,
भारतवर्ष	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
अफ्रीका	३५	ट्युनिस	४१
उत्तरीयअमेरिका	,,	नार्थअमेरिका	,,
आस्ट्रेलिया	,,	होण्डुरास	,,
पापुआ	३६	मेक्सको	,,
न्यूजीलेण्ड	,,	यूनाईटेडस्टेट्स	,,
अल्वेनिया	,,	अलस्का	४२
जेकोस्लोविया	,,	एरिजाना	,,
फ्रान्स और कार्सिका	,,	केलिफोर्निया	४३
जर्मनी	,,	कार्नकोष्टी	,,
हङ्गरी	३७	सेण्टाक्लेराकौण्टि	४५
इटली	,,	सोलेनो	४६
स्टील	,,	सोनोमा	४७
लीवरओर	,,	सोक्रेट की खान	,,
कोरेलाइन	,,	ट्रिनिटी	,,
पोर्तुगाल	३८	वेली	,,
रस्सीया	,,	इडाहो	,,
स्केण्डिनेविया	,,	निवाडा	,,
स्पेन	,,	ओरेगन	,,
युगोस्लेविया	३९	लेन	४८
एशियामाइनर	,,	टेक्सास	,,
चीन	,,	उटाह	४९
जापान	४०	वाशिङ्गटन	,,
न्यूकेलिडोनिया	,,	दक्षिण अमेरिका	५०
पर्सिया	,,	चिली	,,
अफ्रिका	,,	कोलम्बिया	,,
एलजीरिया	,,	डचगायना	,,
इटालियनसोमेलिलेण्ड	,,	यूकोडर	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
पेरु	५०	यौगिकगन्धक	१०२
जुनिन	५१	गन्धकनिम्नरूप में मिलता है	१०५
हुवानुको	,,	गन्धक और गन्धकीय खनिज	
वीनेजुए	,,	प्राप्ति के स्थान	,,
पारद के दोष	५२	अफगानिस्तान	,,
पारद के सप्तकञ्चुक	५३	आसाम	,,
पारद के भेद	५५	बलुचिस्तान	,,
शुद्ध पारद के लक्षण	५६	कच्छी	,,
अशुद्ध पारद के लक्षण	५७	लास बेला	१०६
अभ्रकीयविमर्शः	५९	मेकरन तट	,,
उत्पत्ति	,,	सिबि	,,
वैक्रान्तीयविमर्शः	६९	विहार और उड़ीसा	,,
उपलब्धिः	७०	बम्बई	१०७
माक्षिकीयविमर्शः	७४	वर्मा	,,
स्वर्णमाक्षिक	,,	दक्षिण हैदराबाद	,,
रौप्यमाक्षिक	,,	काश्मीर	,,
कांस्यमाक्षिक	,,	गोदावरी	१०८
विमलः	७७	ट्रावनकोर	,,
उपलब्धिः	,,	शिरानी	,,
शिलाजतुविमर्शः	८०	पञ्जाब	,,
चपलविमर्शः	८७	संयुक्तप्रान्त	१०९
उपस्थिति	,,	कुमायूं	,,
गुण	८८	**गैरिकविमर्शः**	११०
विस्मथ का उपयोग	,,	**कासीसविमर्शः**	,,
रसकविमर्शः	८९	**हरतालविमर्शः**	११५
गन्धकीयविमर्शः	१०१	अञ्जनविमर्शः	१२१
उपलब्धि	१०२	सौवीराञ्जन	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
रसाञ्जन	१२१
स्रोतोऽञ्जन	१२२
पुष्पाञ्जन	,,
नीलाञ्जन	,,
कङ्कुष्ठविमर्शः	१२४
गौरीपाषाणविमर्शः	१२७
आर्सेनिक की उपलब्धि	१२८
आर्सेनिक की पहचान	,,
आर्सेनिक के आक्साइड	,,
आर्सेनिक के सल्फाइड	,,
नवसारविमर्शः	१२९
नियामकगण	२३८
नियमनसंस्कारः	,,
कपोतलक्षणम्	२५०
पञ्चक्षार	२५२
अष्टमूत्र	,,
मूषोपयोगिमृत्तिकास्वरूपम्	२७४
वङ्कनाललक्षणम्	,,
अपुनर्भवलक्षणम्	२७५
वारितरस्यलक्षणम्	२७६
रेखापूर्णतायाः स्वरूपम्	,,
गोष्ठस्वरूपम्	२७९
गर्वरपुटलक्षणम्	,,
भाण्डपुटलक्षणम्	,,
लावकपुटविमर्शः	२८०
लावकपुटलक्षणम्	२८१
कृत्रिमपित्तलनिर्माणविधिः	२८२

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
कृत्रिमकांस्यनिर्माणविधिः	२८२
शृङ्गिकविषलक्षणम्	२८५
कालकूटविषपरिचयः	,,
वत्सनाभलक्षणम्	,,
विषवर्गीकरणम्	२८६
उपविषाणि	,,
रक्तवर्गविमर्शः	२८७
पारदग्रहणपरिमाण	२९५
स्वेदनप्रकारः	२९६
मर्दनलक्षणम्	२९७
मूर्च्छन लक्षणम्	,,
मतान्तरेण पारदस्य मूर्च्छनम्	२९८
उत्थापनस्वरूपम्	२९९
बोधनस्य प्रथमप्रकारः	३०४
द्वितीयप्रकारः	,,
तृतीयः प्रकारः	,,
नियामनलक्षणम्	,,
क्षारद्वयं क्षारत्रयञ्च	३०५
दीपनसंस्कारः	,,
रसतरङ्गिण्युक्तप्रकारः	३०६
नियामकगणः	,,
दीपनसंस्कारकरणविधिः	,,
दीपनस्वरूपम्	३०७
दीपनस्य प्रथमप्रकारः	,,
द्वितीयः प्रकारः	,,
तृतीयः प्रकारः	,,
चतुर्थः प्रकारः	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
क्षेत्रीकरणस्वरूपम्	३११
क्षेत्रीकरणप्रक्रिया	,,
खोटबन्धस्य लक्षणम्	३१३
कज्जलीस्वरूपम्	३१४
बाह्यद्रुतिलक्षणम्	३१७
उपद्रवलक्षणम्	,,
अरिष्टलक्षणम्	,,
रसायनलक्षणम्	,,
भूधरयन्त्रस्वरूपम्	३३०
रसायनोचितरसः	३३१
रसभक्षणकालः	,,
मात्राभेदाः	,,
पञ्चकर्मायोग्यव्यक्तिः	,,
हंसोदकः	३३२
सुरा	३३३
आसवः	,,
पित्तज्वरलक्षणम्	३३८
श्लेष्मजज्वरलक्षणम्	,,
द्वन्द्वजसन्निपातजज्वराणां लक्षणम्	३३९
वातपित्तज्वरलक्षणम्	,,
वातश्लेष्मज्वरलक्षणम्	,,
पित्तश्लेष्मज्वरलक्षणम्	,,
सन्निपातज्वरलक्षणम्	,,
जयपालशोधनविधिः	३४२
प्रकारान्तरम्	,,
प्रकारान्तरम्	,,
स्नुहीदुग्धशोधनविधिः	३४३

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
विषतिन्दुकबीजशोधनविधिः	३४३
प्रकारान्तरम्	,,
प्रकारान्तरम्	,,
विषमज्वरलक्षणम्	३४६
चूर्णकुष्माण्डस्वरसयोर्हरताल शोधनविधिः	३४९
चूर्णोदकनिर्माणविधिः	,,
तिलक्षारोदके तालशोधनविधिः	,,
धुस्तूरबीजशोधनविधिः	३५०
प्रकारान्तरम्	३५१
व्योषपरिभाषा	,,
विषनिषेधविमर्शः	३५४
लवणपञ्चकम्	,,
कवचीयन्त्रनिर्माणविधिः	३५५
अग्निजारपरिचयः	३६१
शृङ्गीविषलक्षणम्	३६३
शृङ्गीविषशोधनम्	,,
सूचिकाभरणरसनिर्माणविधिः	,,
कृष्णसर्पविषस्याहरणविधिः	३६४
कृष्णसर्पविषशोधनविधिः	,,
अशुद्धलाङ्गलीसेवनेदोषाः	३६७
लाङ्गलीशोधनविधिः	,,
अभिन्यासज्वरलक्षणम्	,,
ससारादिश्लोकव्याख्या	३६८
कुक्कुटपुटलक्षणम्	३६९
पञ्चपित्तम्	३७३
ज्वरेपथ्यापथ्यव्यवस्था	३८२

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
पथ्यस्य प्रयोजनम्	३८२
सर्वविधज्वरेषु पथ्यानि	”
मध्यमज्वरेहितानि	३८३
पुराणज्वरे हितानि	”
आगन्तुकज्वरे हितानि	”
विषमज्वरे हितानि	३८४
अतिलङ्घनं वर्ज्यम्	”
सम्यग्लङ्घितलक्षणानि	”
उष्णजललक्षणम्	”
रक्तपित्तविमर्शः	३८५
रक्तपित्तव्याख्या	”
रक्तपित्तनिदान और गति	”
द्राक्षादिगणौषधियां	”
लौहादिवर्गः	३८९
रक्तरोधकौषधयः	”
रक्तपित्ते साधारणपथ्यः	३९०
कासनिदानम्	३९१
पैत्तिककासनिदानम्	३९४
क्षयकासनिदानलक्षणादिकम्	”
कफजकासलक्षणम्	३९५
कासघ्नधूमविमर्शः	३९७
धूमसेवनविधिः	”
धुमकालाः	”
धूमपानवर्ज्यावस्था	”
वातकासे पथ्यानि	३९८
कासेसाधारणपथ्यनिर्देशः	”
ऊर्ध्वश्वासलक्षणादिकम्	३९९

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
त्रिकत्रयस्वरूपम्	४०३
श्वासेपथ्यापथ्यम्	४०५
अपथ्यम्	”
अतिव्यायामनिषेधः	४०६
व्यायामानर्हाः	”
व्यायामार्हा	”
व्यायामसमयः	”
बलाबललक्षणम्	”
अधारणीया वेगाः	”
हिक्कास्वरूपं निरुक्तिश्च	४०७
तासां पूर्वरुपम्	”
तासां नामानि	”
धान्याभ्रस्वरूपम्	४०८
विश्वादिश्लोकव्याख्या	४१०
क्षीरपाकविधिः	४११
हिक्कायां पथ्यापथ्यम्	४१२
त्रिकटुस्वरुपम्	४१६
त्रिफलास्वरूपम्	”
आरनालस्वरूपम्	”
दशमूलस्वरूपम्	”
उभयपञ्चमूलम्	”
स्वरभेदे पथ्यापथ्यव्यवस्था	४१७
अथापथ्यम्	”
राजयक्ष्मनिदानम्	४१८
राजयक्ष्मलक्षणम्	”
राजयक्ष्मणि साधारणपथ्यम्	४३४
यक्ष्मीशोधनव्यवस्था	”

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
वमनविधिः	४३५
विरेचनम्	”
अरोचके पथ्यापथ्यव्यवस्था	४३६
अपथ्यानि	”
छर्द्यांपथ्यानि	४३८
अपथ्यानि	”
हृदयरोगलक्षणसम्प्राप्ती	४३९
अध्यशनलक्षणम्	”
हृद्रोगे पथ्यापथ्यम्	४४१
तृष्णारोगेऽपथ्यम्	४४२
पालिकायन्त्रस्वरूपः	४४८
मदात्ययपथ्यापथ्यव्यवस्था	४५०
अम्लवर्गः	”
पित्तार्शसां लक्षणम्	४५१
वातार्शसां लक्षणम्	४५२
श्लेष्मसन्निपातार्शसां लक्षणम्	”
श्लेष्मार्शसस्त्रिदोषजस्य च लक्षणम्	”
सहजार्शसांलक्षणम्	”
अन्धमूषापरिभाषा	४६७
अर्शोरोगे पथ्यापथ्यविवेकः	४७५
अन्नेषु	४७६
मांसेषु	”
शाकेषु	”
अर्शोरोगेऽपथ्यानि	”
स्नेहपाकविधिः	४७८
स्नेहपाकपरीक्षा	”

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
वैद्यनाथवटीनिर्माणम्	४७९
लौहप्रयोगः	”
उदावर्त्तेऽपथ्यानि	”
अतीसारनिदानम्	४८०
नवीन तथा पुराने धान्यों के ग्रहण करने का निर्देश	”
अध्यशनलक्षणम्	”
अतीसारे पथ्यानि	४८८
अतीसारेऽपथ्यानि	”
अतीसारे पानीयम्	४८९
ग्रहणीरोगसम्प्राप्त्यादिवर्णनम्	”
पञ्चकोलस्वरूपः	४९९
रुदन्तीपरिचयः	५०२
क्षारत्रयस्वरूपम्	”
ग्रहण्यां पथ्यापथ्यविमर्शः	५०५
ग्रहण्यामपथ्यानि	”
अग्निमान्द्यादिषु पथ्यापथ्य-व्यवस्था	५२२
अपथ्यानि	”
मूत्रकृच्छ्रविमर्शः	५२३
मूत्रदोषाङ्कुशोरसः	”
अश्मरीनाशकोपायाः	५२४
अश्मरी की उत्पत्ति	५२५
अश्मरी के भेद	”
अश्मरी का पूर्वरूप तथा लक्षण	५२६
मूत्रकृच्छ्र कारणानि	५३१
अश्मरीरोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था	५३४

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
अपथ्यानि	५३४
प्रमेहविमर्शः	,,
स्वास्थ्यलक्षणम्	,,
प्रमेह की उत्पत्ति में कारण	,,
प्रमेह की सम्प्राप्ति	,,
प्रमेहों का पूर्वरूप	,,
प्रमेहों के सामान्य लक्षण तथा भेद	५३५
तन्द्रालक्षणम्	,,
कफप्रमेहाः	५३६
पित्तप्रमेहाः	,,
वातप्रमेहाः	,,
प्रमेहों का समन्वय	,,
वरनागलक्षणम्	५५२
मल्लमूषास्वरूपः	५५६
कवचीयन्त्रलक्षणम्	५६५
प्रमेहे पथ्यापथ्यव्यवस्था	५७१
अपथ्यानि	,,
विद्रधिरोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था	५७८
अपथ्यानि	,,
वर्ध्मवृद्धिरोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था	५८१
पञ्चकोलस्वरूपम्	५८३
गुल्मे पथ्यानि	५९३
क्षारनिर्माणविधिः	५९४
प्लीहविमर्शः	५९६
प्लीहरोगे पथ्यापथ्यनिर्देशः	,,
नागवल्लभरसः	६१६

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
द्वितीयः	६१६
स्थौल्ये पथ्यापथ्यम्	६२३
अम्लपित्तरोगे पथ्यापथ्यविवेकः	६२९
उदरवृद्धि के कारण	६३२
अष्टपुष्पाणि	६४१
उदररोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था	६४३
पाण्डुरोगे पथ्यापथ्यनिर्देशः	६६०
लङ्केश्वररसः	६६९
लूतारोगेतिहासः	६८९
मधुरत्रयम्	६९४
मूर्च्छितपारद का स्वरूप	६९५
त्रैलोक्यविजयरसः	६९६
शुद्धगन्धकप्रयोगविमर्शः	७०७
गन्धकसेवने वर्जनीयानि	,,
वलिवसापरिचयः	७०८
सिद्धस्नेह के लक्षण	७१२
विपादिका	७१८
कुष्ठे पथ्यापथ्यविवेकः	७२०
कृमिरोगेपथ्यापथ्यविवेकः	७२४
तालकेश्वरः	७२९
पञ्चार्कतैलम्	७३१
आमवातेपथ्यापथ्यव्यवस्था	७३७
अपस्मारे पथ्यापथ्यव्यवस्था	७३९
उन्मादरोगेपथ्यापथ्यव्यवस्था	७४१
वरुणादिगणः	७४९
वातरक्तेपथ्यापथ्यव्यवस्था	७७२
लक्ष्मणास्वरूपः	७७५

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
नागोदरलक्षणम्	७७९
उपविष्टकलक्षणम्	७८०
जलकूर्मकलक्षणम्	"
अभ्रकद्रुतिप्रकारवर्णनम्	"
गर्भिण्याः पथ्यापथ्यविवेकः	७९९
बालरोगे पथ्यापथ्यविवेकः	८१८
त्रिलौहस्वरूपम्	८२२
नेत्ररोगविमर्शः	८२७
नेत्ररोगे पथ्यापथ्यानि	८४४
अन्ययोगाः	८४९
कर्णरोगेपथ्यापथ्यविवेकः	८५०
नासारोगेपथ्यापथ्यम्	८५२
मुखरोगेपथ्यापथ्यविवेकः	८६०
तन्तुरोगे वर्जनीयम्	८६४
शिरोरोगे पथ्यापथ्यविवेकः	८६९
भगन्दरे पथ्यापथ्यविवेकः	८७७
अर्बुदरोगे पथ्यापथ्यविवेकः	८८२
अपथ्यानि	"
अजगल्लिकायालक्षणं चिकित्सा च	८८६
यवप्रख्यायालक्षणं चिकित्सा च	"
अन्धालज्या लक्षणं चिकित्सा च	"
विवृताया लक्षणं चिकित्सा च	८८७
कच्छप्यालक्षणं चिकित्सा च	"
वल्मीकस्यलक्षणं चिकित्सा च	"
इन्द्रवृद्धालक्षणम्	"
इन्द्रवृद्धायाश्चिकित्सा	८८८
पनसिकालक्षणम्	"
पनसिकायाश्चिकित्सा	८८८
पाषाणगर्दभलक्षणम्	"
चिकित्सा	"
जालगर्दभलक्षणम्	"
चिकित्सा	"
इरिवेल्लिकालक्षणम्	"
कक्षालक्षणम्	"
चिकित्सा	"
विस्फोटकलक्षणम्	"
अग्निरोहिणीलक्षणम्	"
चिकित्सा	"
चिप्यकुनखयोर्लक्षणं चिकित्सा च	८८९
अनुशयीलक्षणम्	"
चिकित्सा	"
विदारिकाया लक्षणं चिकित्सा च	"
शर्करार्बुदलक्षणम्	"
चिकित्सा	"
पाददारिकाया लक्षणं चिकित्सा च	"
उपोदिकाद्यं तैलम्	८९०
कदरस्य लक्षणं	"
कदरचिकित्सा	"
अलसस्यलक्षणं चिकित्सा च	"
इन्द्रलुप्तस्यलक्षणम्	"
चिकित्सा	८९१
दारुणकस्यलक्षणम्	"
चिकित्सा	"
अरुंषिकाया लक्षणम्	"

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
हरिद्राद्यं तैलम्	८९२
पलितस्य लक्षणम्	,,
चिकित्सा	,,
मसूरिकायालक्षणं चिकित्सा च	,,
यौवनपिडकाया लक्षणम्	,,
पद्मिनीकण्टकलक्षणम्	,,
चिकित्सा	,,
जतुमणिलक्षणम्	,,
चिकित्सा	,,
मशकलक्षणम्	,,
चिकित्सा	,,
तिलकालकलक्षणम्	,,
चिकित्सा	,,
न्यच्छस्य लक्षणम्	,,
व्यङ्गस्यलक्षणम्	,,
तयोश्चिकित्सा	,,
परिवर्तितकालक्षणम्	,,
चिकित्सा	,,
अथवा	,,
अवपाटिकालक्षणम्	८९३
चिकित्सा	,,
निरुद्धप्रकषस्यलक्षणम्	,,
चिकित्सा	,,
सन्निरुद्धगुदलक्षणम्	,,
चिकित्सा	,,
अहिपूतनलक्षणम्	८९४

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
चिकित्सा	८९४
वृषणकच्छूलक्षणम्	,,
चिकित्सा	,,
गुदभ्रंशस्य लक्षणम्	,,
चिकित्सा	,,
मूषकतैलम्	,,
क्षुद्ररोगेषु पथ्यापथ्यविधिः	,,
स्वरभेदे पथ्यापथ्यव्यवस्था	९०५
श्लीपदरोगे पथ्यापथ्यविवेकः	९०८
स्थौल्ये पथ्यापथ्यम्	९१०
त्रिफलारसायनस्य विमर्शः	९३३
कामकलाख्यरसनिर्माणप्रकारान्तरम्	९४७
पूर्णेन्दुरसः	९५०
मण्डकपरिभाषा	९६३
कान्तलौलक्षणम्	९८०
लौहशोधनार्थं क्वाथविधिः	९८१
वज्रभस्मविधिः	९८२
अथवा	,,
नागभस्मविधिः	,,
अथवा	,,
लौहमारणविधिः	९८३
निरुत्थभस्मपरीक्षाप्रकारः	९८४
कुट्टीनिर्माणप्रकारः	९८६
चरकोक्ताचाररसायनम्	१०९६

१ दोलायन्त्रम्—

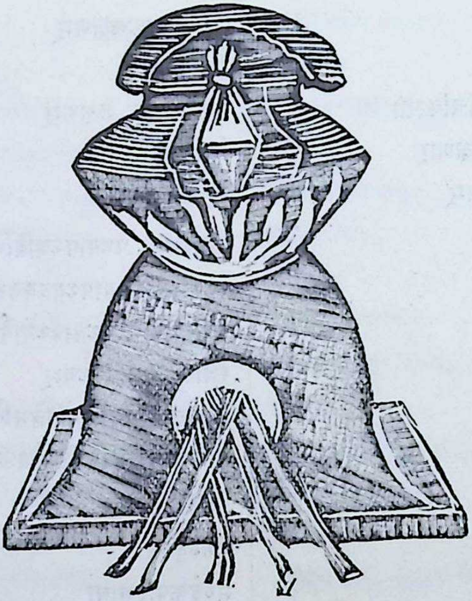

द्रवद्रव्येण भाण्डस्य पूरितार्धोदकस्य च ।
मुखस्योभयतो द्वारद्वयं कृत्वा प्रयत्नतः ॥
तयोस्तुनिक्षिपेद्दण्डं तन्मध्ये रसपोटलीम् ।
बध्वा तु स्वेदयेदेतद्दोलायन्त्रमिति स्मृतम् ॥ १ ॥

इति रसरत्नसमुच्चयः ।

अन्यच्च—विबध्य सौषधं सूतं सभूर्जे त्रिगुणाम्बरे ।
रसपोट्टलिकां काष्ठे दृढं बध्वा गुणेन हि ॥ २ ॥
सन्धानपूर्णकुम्भान्तः प्रलम्बनगतिस्थिताम् ।
अधस्ताद् ज्वालयेदग्निं तत्तदुक्तक्रमेणहि ॥ ३ ॥
दोलायन्त्रमिदं प्रोक्तम्

इति रसेन्द्रचूडामणिः ।

एक मिट्टि की हण्डिका में काञ्जी, निम्बू का रस, क्षारोदक या जयन्ती, निर्गुण्डी आदि स्वेदनार्ह औषधियों का स्वरस या क्वाथ भर कर उस हण्डिका के दोनों किनारों में युक्ति से दो छिद्र बना कर उन छिद्रों में एक काष्ठ की मजबूत पतली लकड़ी डाल दें। फिर इस लकड़ी के बीच में पारद की पोट्टली या अन्य लोह ताम्रादिक या रत्न आदि की पोट्टली बांध कर भाण्डस्थ द्रव में लटका दें। फिर इस हण्डिका को चूल्हे पर चढ़ा कर यथोदित समय तक अग्नि प्रदीप्त कर के पोट्टलीस्थ पदार्थ का स्वेदन करते हैं। इसी को दोलायन्त्र कहते हैं। अर्थात् पारदादिक की पोट्टली काष्ठ के साथ बांधने से दोले (झूले) की तरह द्रव में लटकती है अतः दोला यन्त्र कहा गया है।

२ बालुकायन्त्रं लवणयन्त्रञ्च

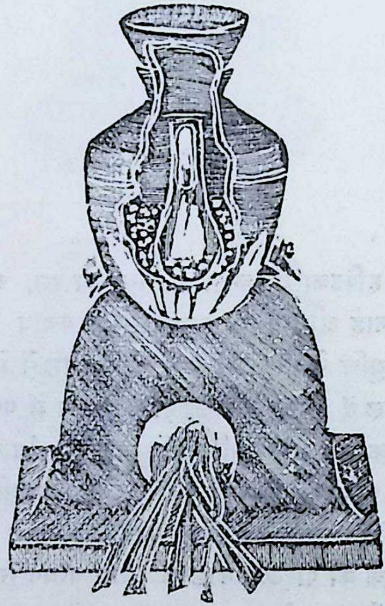

रसगर्भां गूढवक्त्रां मृद्वस्त्राङ्गुलवनावृताम् ।
शोषितां काचकलशीं त्रिषु भागेषु पूरयेत् ॥ १ ॥
भाण्डे वितस्तिगम्भीरे बालुकासु प्रतिष्ठितम् ।
तद्भाण्डं पूरयेत् त्रिभिरन्याभिरवगुण्ठयेत् ॥ २ ॥
भाण्डवक्त्रं मणिकया सन्धिं लिम्पेन्मृदा पचेत् ।
चुल्ल्यां तृणस्य चादाऽऽहान्मणिकापृष्ठवर्त्तिनः ॥ ३ ॥
एतद्धि बालुकायन्त्रं तद्यन्त्रं लवणाश्रयम् ।
पश्चादबालुकापूर्ण-भाण्डे निक्षिप्य यत्नतः ॥ ४ ॥
पच्यते रसगोलाद्यं बालुकायन्त्रमीरितम् ।
एवं लवणनिक्षेपात् प्रोक्तं लवणयन्त्रकम् ॥ ५ ॥

अथवा—

अन्तःकृतरसालेपताम्रपात्रमुखस्य च ।
लिप्त्वा मृल्लवणेनैव सन्धिं भाण्डतलस्य च ॥ १ ॥
तद्भाण्डं पटुनाऽऽपूर्य्य क्षारैर्वा पूर्व्ववत् पचेत् ।
एवं लवणयन्त्रं स्याद् रसकर्म्मणि शस्यते ॥ २ ॥

रसरत्नसमुच्चयः ।

एक आतसी शीशी जिसका नीचे का भाग (पेंदी) चौड़ा हो तथा लम्बी और सङ्कुचित नलिका हो, लेकर उस की नलिका में एक पतली लकड़ी डाल कर शीशी को उलटी करदें । फिर इस लकडी को किसी टेबुल के सहारे दृढ़ बांध दें । फिर हण्डिका में २४ घण्टे तक गली हुई मुल्तानी (चिकनी) मिट्टी का आतसी शीशी के पृष्ठ (पीठ) भाग पर पतला एक लेप कर के उसी मिट्टी के घोल में भींगी हुई वस्त्र की पट्टी का प्रलेप कर के सुखा लेवें । फिर सूख जाने पर दूसरी पट्टी का लेप करदें । इस तरह सात वार लेप कर के सुखा लेवें । फिर उस आतसी शीशी के चार भागों में से तीन भागों को कज्जली से भर दें । फिर एक लोहे या मिट्टी की नांद (टब) को बालुका (रेत) से भर कर उस बालुका के मध्य में आतसी शीशी को गले तक गाड दें । फिर उस नांद के मुख पर शराव ढक कर के सन्धि बन्धन कर दें । फिर इस यन्त्र को भट्टी पर चढ़ा कर अग्नि प्रज्वलित कर दें तथा हण्डिका (यन्त्र) के मुख पर स्थित शराव के अन्दर तृण भर दें । स्थान को बालुका, रेत अथवा क्षार या लवण से भर कर यन्त्र को चूल्हे पर चढ़ा कर पाक करना चाहिए । इस को बालुका यन्त्र या लवण यन्त्र कहते हैं ।

३ भूधरयन्त्रम् ।

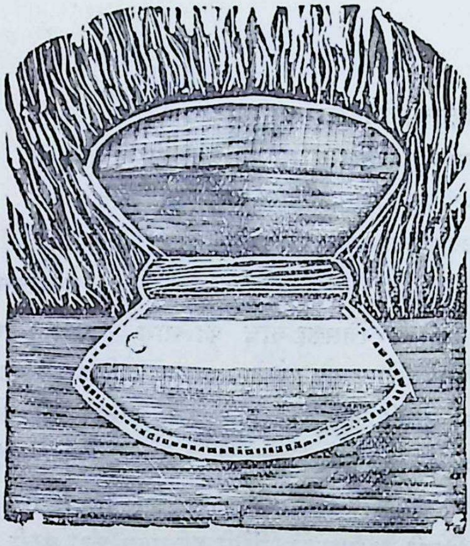

बालुकागूढसर्वाङ्गां गर्ते मूषां रसान्विताम् ।
दीप्तोत्पलैः संवृणुयाद् यन्त्रं तद् भूधराह्वयम् ॥ १ ॥

पृथ्वी में एक हस्त गहरा गढा (गर्त) बना कर उसके अर्धभाग का बालुका से भर दें, फिर उस बालुका पर औषध से पूर्ण मूषा को रख दें तथा मूषा का मुख बन्द कर देना चाहिए। पश्चात् शेष गर्त को रेत से भर कर अर्थात् सारी मूषा को रेत से ढक कर उस पर जंगली उपलों की आंच जला देनी चाहिए। इस को भूधर यन्त्र कहते हैं। यह वर्णन चित्र के अनुसार नहीं है। अत्रि संहिता का वर्णन चित्रानुसार है। यथा—

यन्त्रं डमरुवद्वाथ वाऽधःपातनयन्त्रवत् ।
भूगर्ते तत् समाधाय चोदूर्ध्वमाकीर्यं वह्निना ॥ १ ॥
अधः स्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा सूतकं तत्र पातयेत् ।
एतद् भूधरयन्त्रं स्यात् सूतसंस्कारकर्मणि ॥ २ ॥

इत्यत्रिसंहिता

अर्थात् चपटे आकार की दो हण्डिकाएं लेकर एक हण्डिका के भीतरी प्रदेश में पारद के निम्ब्वादिरस पिष्टकल्क का प्रलेप करके सुखा दें तथा दूसरी हण्डिका में जल भर कर पारद लिप्त हण्डिका को जल पूर्ण हण्डिका के मुख के साथ औंधी कर के मिलाकर दोनों की सन्धियों को बन्द करके डमरु के समानाकार का यन्त्र बनालें। फिर इस यन्त्र को पृथ्वी के अन्दर खोदे हुए गर्त में रखकर सूतलिप्त हण्डिका के पृष्ठ पर अग्नि जला दें। इसको भूधरयन्त्र कहते हैं।

भाव प्रकाश में इसका वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है। यथा—

त्रिफलाशिग्रुशिखिभिर्लवणासुरिसंयुतैः ।
नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेदूदूर्ध्वभाजनम् ॥ १ ॥
ततो दीप्तैरधःपातमुपलैस्तस्य कारयेत् ।
यन्त्रे भूधरसंज्ञे तु ततः सूतोविशुद्धयति ॥ २ ॥

४ तिर्यक्पातनयन्त्रम्—

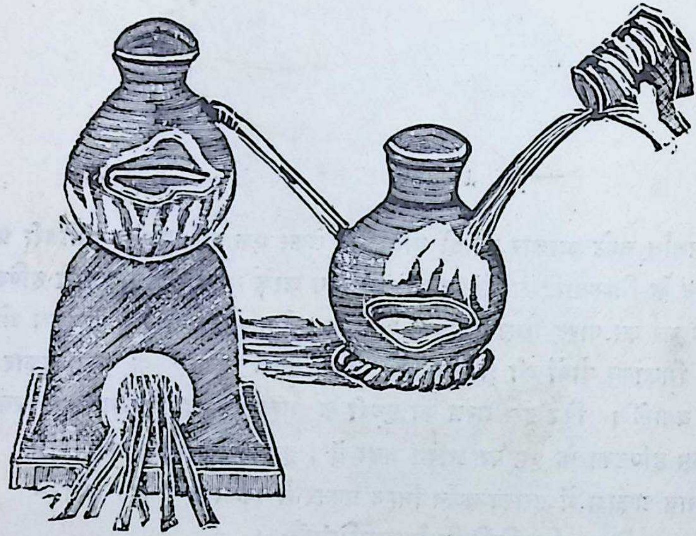

क्षिपेद्रसं घटे दीर्घनताधोनालसंयुते ।
तन्नालं निक्षिपेदन्यघटकुक्ष्यन्तरे खलु ॥
तत्र रुद्ध्वा मृदा सम्यग्वदने घटयोरथ ।
अधस्ताद्रसकुम्भस्य ज्वालयेत्तीव्रपावकम् ॥
इतरस्मिन् घटे तोयं प्रक्षिपेत् स्वादुशीतलम् ।
तिर्यक्पातनमेतद्धि वार्तिकैरभिधीयते ॥

इति रसरत्नसमुच्चयः ।

एक मिट्टी के घट में पारद भर कर घट की ग्रीवा के कुछ नीचे के भाग में एक छिद्र बना कर उस छिद्र में एक लम्बी तथा टेढी नली लगा देनी चाहिए । फिर उस नली के दूसरे भाग को एक दूसरे घट के मध्य भाग में छिद्र बना कर उस में प्रविष्ट कर दें । फिर पारदातिरिक्त घट में शीतल जल भर कर दोनों

के मुख को ढक्कन से तथा नालीप्रवेशजन्य छिद्रों को कपडमिट्टि द्वारा बन्द कर के सुखा कर युक्ति से चूल्हे पर पारद वाले घट को स्थापित कर के अग्नि जला देवें। अग्नि जलते समय चूल्हे के नीचे स्थित घट पर एक लोटे या पात्र के द्वारा शीतल जल डालते रहना चाहिए। इस तरह चूल्हे पर स्थित घट के अन्दर से पारद अग्नि के ताप के कारण उड कर नीचे वाले घट के जल में नलिका मार्ग से हो कर एकत्रित होता रहता है। वार्तिककारों ने इस को तिर्यक्पातन यन्त्र कहा है।

५ ऊर्ध्वाधःपातनयन्त्रवर्णनम् ।

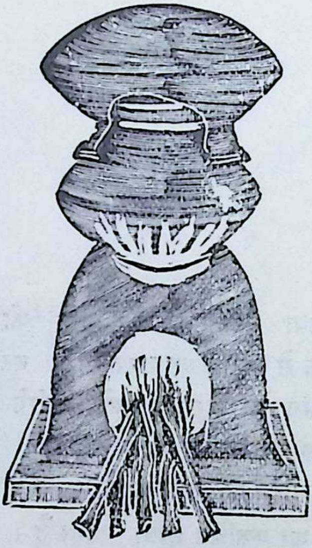

अष्टाङ्गुलपरीणाहमानाहेन दशाङ्गुलम् ।
चतुरङ्गुलकौत्सेधं तोयाधारं गलादधः ॥ १ ॥
अधोभाण्डमुखं तस्य भाण्डस्योपरिवर्तिनः ।
षोडशाङ्गुलविस्तीर्णपृष्ठस्याऽऽस्ये प्रवेशयेत् ॥
पार्श्वयोर्महिषीक्षीरचूर्णमण्डूरफाणितैः ।
लिप्त्वा विशोषयेत् सन्धिं जलाधारे जलं क्षिपेत् ॥ ३ ॥
चुल्ल्यामारोप्येदेतत् पातनायन्त्रमीरितम् ॥ ४ ॥

अष्ट अङ्गुल परिधियुक्त, दश अङ्गुल दीर्घ तथा चारअङ्गुल मोटा एक मिट्टी का भाण्ड लेकर उसमें शीतल जल भरदें । फिर सोलह अङ्गुल चौडे पृष्ठ (पीठ) व.ला एक भाण्ड लेकर उसके भीतरी भाग में औषधपिष्ट पारद कल्क का लेप करके सुखाकर अधोमुख करके जलपूर्ण घट की ग्रीवा के नीचे तक इसके मुखको

प्रविष्ट (धंसा) करके आस पास की सन्धि को भैंस के दुग्ध से पीसे हुए माष चूर्ण, लौहकिट्ट आदि के कल्क से विलिप्त करके सुखाकर चूल्हे पर चढा के अग्नि जलादें। इससे पारद का अधः पातन होता है।

अथवा एक मिट्टी का भाण्ड लेकर औंधामुख करके पृथ्वी पर रखकर उसके पृष्ठ भाग पर आठ अङ्गुल चौड़ा, दश अङ्गुल लम्बा तथा चार अङ्गुल मोटा एक चिकनी मिट्टी अथवा उडदी की पिष्टी का आलवाल (थाला) बनाकर सुखालें। फिर सोलह अङ्गुल चौडे पृष्ठ वाला एक भाण्ड लेकर उसके भीतरी तल में पारद कल्क का लेप करके सुखाकर इसके मुख को पृष्ठ पर आल वाल वाले अधोमुखकृत भाण्ड के मुख से मिलाकर भैंस के दुग्ध, माषचूर्ण और मण्डूर किट्टादिकृत कल्क से सन्धिबन्धन करके सुखाकर चूल्हे पर चढा के अग्नि जला दें। आलवाल के भीतरी गरम हुए जल को थोडी२ देर में निकाल२ कर उसमें शीतल जल बार२ डालते रहना चाहिए। इससे पारद का ऊर्ध्वपातन संस्कार होता है तथा यह अर्थ चित्रानुकूल भी है।

६ अधःपातनयन्त्रवर्णनम्

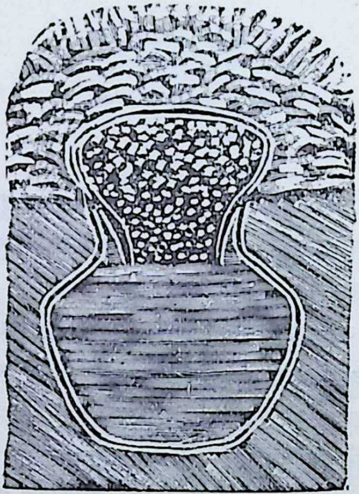

अथोदूर्ध्वभाजने लिप्तस्थापितस्य जले सुधीः ।
दीप्तैर्वनोत्पलैः कुर्यादधःपातं प्रयत्नतः ॥ १ ॥

रसरत्न समुच्चयः ।

एक छोटा भाण्ड लेकर उसके भीतरी तली में पारदकल्क का प्रलेप कर दें तथा पृष्ठ प्रदेश पर माषचुर्णादिक से एक आलवाल (क्यारी=थाला) बनाकर सुखालें। फिर एक चौडे उदर वाले भाण्ड में शीतल जल भरकर औषधलिप्त भाण्ड को अधोमुख करके दोनों के मुखों को मिलाकर सन्धिबन्धन कर दें। फिर यन्त्र को एक गढे में रखकर ऊपरी भाण्ड के आलवाल में जङ्गली उपले भर कर अग्नि जला दें। इससे पारद का अधोघट के शीतल जल में अधःपातन होता है।

रसेन्द्रचूडामणि ग्रन्थ में इसका वर्णन निम्नरूप से है।

यथा—

उपर्यधस्तनस्थाल्यां क्षिपेदन्यामधोमुखीम् ।
स्थालिकां चिपटीभूततलान्तर्लिप्तपारदाम् ॥ १ ॥
क्षिप्त्वा तां पङ्किले गर्ते ज्वालयेन् मूर्ध्नि पावकम् ।
अधःपातनयन्त्रं हि तदेतत् परिकीर्तितम् ॥ २ ॥

७ विद्याधर (ऊर्ध्वपातन) यन्त्र वर्णनम्—

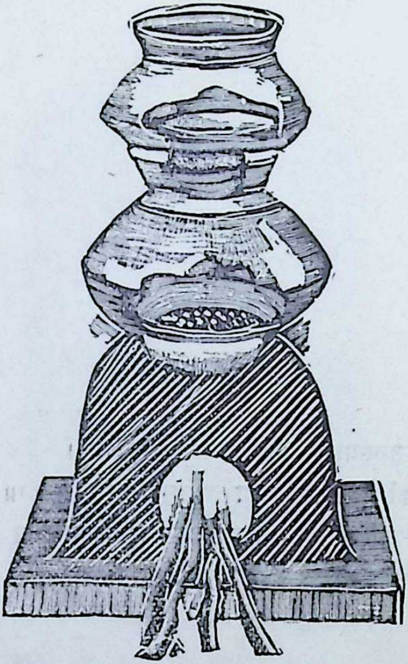

यन्त्रं विद्याधरं ज्ञेयं स्थालीद्वितयसम्पुटात् ।
चुल्लीं चतुर्मुखीं कृत्वा यन्त्रभाण्डं निवेशयेत् ॥ १ ॥
तत्रौषधं विनिक्षिप्य निरुन्ध्याद्भाण्डकाननम् ।
यन्त्रं विद्याधरं नाम तन्त्रज्ञैः परिकीर्तितम् ॥ २ ॥

रसरत्नसमुच्चयः ।

समानाकार दो मिट्टी के भाण्डों को परस्पर मिलाने को विद्याधर यन्त्र कहते हैं ।

विधिः——एक चारमुख वाला चूल्हा बनाकर उसपर औषधादिक से भरा हुआ एक मिटी का भाण्ड रखना चाहिए । फिर इस भाण्ड के मुखपर एक ऊर्ध्वमुख वाला दूसरा भाण्ड रखकर नीचे के भाण्ड के मुख को ऊपरी भाण्ड के तल के

साथ कपडमिट्टी द्वारा बन्दकर देते हैं। फिर सूखने पर अग्नि प्रज्वलित कर देनी चाहिए। इसको रसशास्त्रज्ञों ने विद्याधर यन्त्र कहा है।

भावप्रकाश में इसका वर्णन अत्यन्त स्पष्ट मिलता है। यथा--

अधः स्थाल्यां रसं क्षिप्त्वा निदध्यात्तन्मुखोपरि।
स्थालीमूर्ध्वमुखीं सम्यङ् निरुध्य मृदुमृत्स्नया ॥ १ ॥
ऊर्ध्वस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा चुल्ल्यामारोप्य यत्नतः।
अधस्ताद् ज्वालयेदग्निं यावत् प्रहरपञ्चकम् ॥ २ ॥
स्वाङ्गशीतं ततो यन्त्राद् गृह्णीयाद्रसमुत्तमम्।
विद्याधराभिधं यन्त्रमेतत्तज्ज्ञैरुदाहृतम् ॥ ३ ॥

इति भावप्रकाशः।

स्वेदन (कन्दुक) यन्त्रवर्णनम्

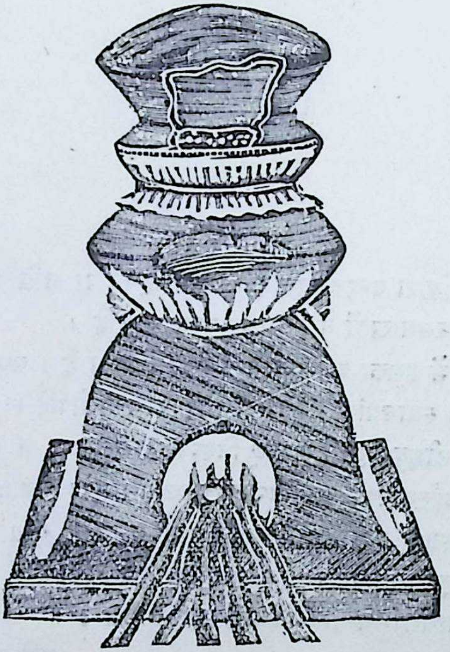

स्थूलस्थाल्यां ज' क्षिप्त्वा वासो बध्वा मुखे दृढम् ।
तत्र स्वेद्यं विनिक्षिप्य तन्मुखं प्रपिधाय च ॥ १ ॥
अधस्ताद् ज्वालयेदग्नि यन्त्रं तत् कन्दुकाभिधम् ।
स्वेदनीयन्त्रमित्यन्ये प्राहुश्चेदं मनीषिणः ॥ २ ॥

एक बडे मिट्टी के भाण्ड में जल, किसी औषधि का स्वरस अथवा क्वाथ भर कर उसके मुख को एक मजबूत वस्त्र से बन्द करके वस्त्र पर स्वेदनीय औषध को रख कर ऊपर से मुख को शराव द्वारा या जैसे चित्र में दिखाया है वैसे हण्डिका द्वारा बन्द करके कपडमिट्टी द्वारा सन्धिबन्धन कर देना चाहिए । फिर यन्त्र को चूल्हे पर चढाकर अग्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए । इस को कन्दुकयन्त्र कहते हैं । रसशास्त्र के अन्य आचार्यों ने इसे स्वेदनीयन्त्र भी कहा है ।

अथवा—यद्वा स्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा तृणं दत्वामुखोपरि ।
स्वेद्यद्रव्यं विनिक्षिप्य पिधानं प्रपिधाय च ॥
अधस्ताद् ज्वालमेदग्निं यन्त्रं तत् कन्दुकं स्मृतम् ॥

एक स्थाली में जल या औषधस्वरस भर कर उसके मुख पर वस्त्र न लगा के तृण (घास) रख कर उन पर स्वेदनीयौषध रख के शराव से बन्द करके कपडमिट्टी द्वारा सन्धिबन्धन कर देते हैं, फिर अग्नि जला कर स्वेदन करते हैं । यह भी कन्दुकयन्त्र कहलाता है । अन्यत्र इसका वर्णन निम्न रूप से मिलता है ।

यथा—

स्थूलस्थाल्यां द्रवं क्षिप्त्वा वासो बध्वामुखे दृढम् ।
तत्र स्वेद्यं विनिक्षिप्य पिधान्या प्रपिधाय च ॥
आधोऽग्निं ज्वालयेत्तत्र तत् स्यात् कन्दुकयन्त्रकम् ।
स्वेदनं यन्त्रमित्येतत् प्राहुरन्ये मनीषिणः ॥

रसेन्द्रचूणामणिः

६ धूपयन्त्रवर्णनम्

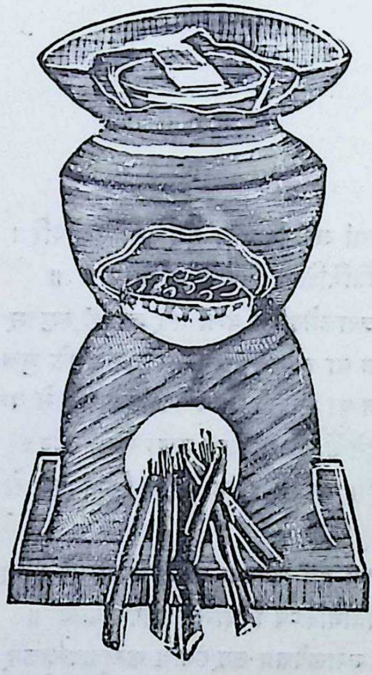

विधायाष्टाङ्गुलं पात्रं लौहमष्टाङ्गुलोच्छ्रयम् ।
कण्ठाधो द्व्यङ्गुले देशे गलाधारे हि तत्र च ॥ १ ॥
तिर्यग्लोहशलाकाश्च तन्वीस्तिर्यग्विनिक्षिपेत् ।
तनूनि स्वर्णपत्राणि तासामुपरि विन्यसेत् ॥ २ ॥
पत्राधो निक्षिपेद्धूमं वक्ष्यमाणमिहैव हि ।
तत्पात्रं न्युब्जपात्रेण च्छादयेदपरेण हि ॥ ३ ॥
मृदा विलिप्य सन्धिञ्च वह्निं प्रज्वालयेदधः ।
तेन पत्राणि कृत्स्नानि हतान्युक्तविधानतः ॥ ४ ॥
रसश्चरति वेगेन द्रुतं गर्भे द्रवन्ति च ।
गन्धालकशिलानां हि कज्जल्या वा मृताहिना ॥

धूपनं स्वर्णपत्राणां प्रथमं परिकीर्त्तितम् ।
तारार्थं तारपत्राणि मृतवङ्गेन धूपयेत् ॥ ६ ॥
धूपयेच्च यथायोग्यैरन्यैरुपरसैरपि ।
धूपयन्त्रमिदं प्रोक्तं जारणाद्रवसाधने ॥ ७ ॥

आठ अङ्गुल चौड़ा और आठ ही अङ्गुल ऊंचा एक लोह का पात्र बनवा कर उसके कण्ठ के नीचे दो अङ्गुल चौड़े स्थान में एक आधार बनवा कर उस में पतली और तिरच्छी लोहे की शलाकाओं को टेढ़ी रख देनी चाहिए । फिर उन शलाकाओं के ऊपर छोटे २ कण्टक वेध्य सोने के पत्र रखकर प्रथम पत्रों के नीचे गन्धक हरताल आदि की कज्जली लौहपात्र में डालकर उस पात्र को एक दूसरे नीचे मुखवाले पात्र से ढक कर कपड़मिटी (या जलमृत्तिका) से सन्धिबन्धन करके चूल्हे पर चढा कर नीचे आग जलाना चाहिए । इस तरह पात्र में रखी हुई कज्जली के धूम से सोने के पत्र काले पड़ जाते हैं तथा मृत भी हो जाते हैं । इस तरह से मृत सुवर्णपत्रों को पारद तुरन्त ही भक्षण कर जाता है और वे भक्षण किये हुए पत्र पारद में शीघ्र ही द्रुत हो जाते है । गन्धक, हरताल, मनःशिला, इनकी कज्जली से अथवा मृतनाग से स्वर्णपत्रों को प्रथम धूपित करना चाहिए । चांदी के पत्रों को धूपित करने के लिये उन पत्रों को मृतवङ्ग से धूपित करना चाहिए । अन्य यथायोग्य उपरसों से भी तारपत्रों को धूपित करते हैं । जिस वस्तु से पत्रों को धूपित करना हो उस वस्तु की कज्जली बनाकर पत्रों के नीचे लोह पात्र में रख देनी चाहिए । इसको धूपयन्त्र कहते हैं । इस यंत्र को जारण करने योग्य द्रव्यों कि सिद्धि करने के लिये प्रयुक्त करते हैं ॥ १-७ ॥

१० तप्तखल्लयन्त्रवर्णनम्

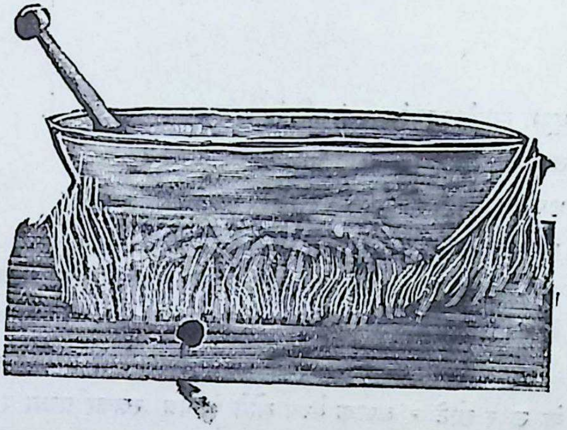

तत्रादौ तस्य प्रमाणकथनम्--

लौहो नवाङ्गुलः खल्लो निम्नत्वे च षडङ्गुलः ।
मर्दकोऽष्टाङ्गुलश्चैव तप्तखल्लाभिधोऽप्ययम् ॥ १ ॥

९ अङ्गुल की लम्बी तथा उतनी ही चौडी और ६ अङ्गुल गहरी लौह की खरल बनवानी चाहिए तथा उसकी घर्षणी (मर्दक) ८ अङ्गुल की लम्बी बनवानी चाहिए । यह तप्त खल्ल का प्रमाण है ॥ १ ॥

तप्तखल्लविधिः--

कृत्वा खल्लाकृतिं चुल्लीमङ्गारैः परिपूरिताम् ।
तस्यां निवेश्य तं खल्लं पार्श्वे भस्त्रिकया धमेत् ॥
तदन्तर्मर्दिता पिष्टिः क्षारैरम्लैश्च संयुता ॥ १ ॥
प्रद्रवत्यतिवेगेन स्वेदिता नात्र संशयः ।
कृतः कान्तायसा सोऽयं भवेत् कोटिगुणो रसः ॥ २ ॥

जितने प्रमाण की लम्बी चौडी खरल बनी हुई हो उसी के प्रमाणानुकूल चूल्हा बनवा कर उस में कोयले आदि भर के उस पर खल्ल को रख दें तथा नीचे अग्नि जला देवें और पार्श्व में धौंकनी लगा कर वह्नि को प्रदीप्त करते रहना चाहिए, पश्चात् उस खरल में औषधियों के साथ घोट कर बनाई हुई

पारद की पिष्टी और क्षार तथा काञ्जी आदि अम्लपदार्थ डाल कर घोटते रहना चाहिए। इस प्रकार स्वेदन करने से पारद की पिष्टी द्रुत हो जाती है। साधारण लौह की अपेक्षा कान्त लौह की तप्तखल्ल में स्वेदित किया हुआ रस (पारद) कोटिगुण अधिक फलप्रद होता है ॥ १-२ ॥

अत्रिसंहितोक्ततप्तखल्लविधिः--

अजाशकृत्तुषाग्निश्च भूगर्ते त्रितयं क्षिपेत्।

तस्योपरि स्थितः खल्लस्तप्तखल्व इति स्मृतः ॥ १ ॥

अर्थात् पृथ्वी के अन्दर गर्त (गढ़ा) खोद कर उस में बकरी की मींगन्यां, धान की भूसी या तुष और अग्नि तीनों डाल कर उन पर औषधपूर्ण खरल को रख कर रसादिक का स्वेदन करें ॥ १ ॥

इत्यत्रिसंहिता।

११ कोष्ठीयन्त्रवर्णनम् ।

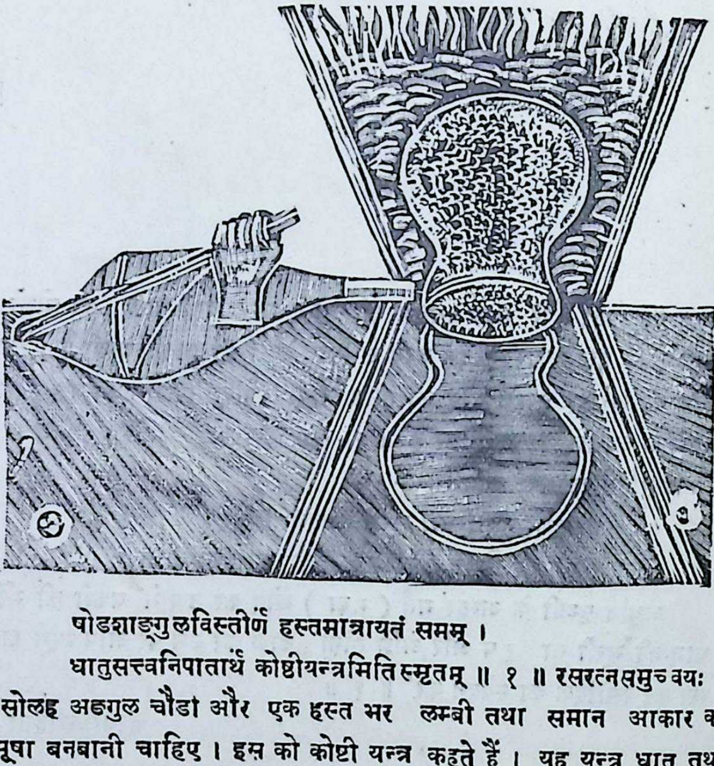

षोडशाङ्गुलविस्तीर्णं हस्तमात्रायतं समम् ।
धातुसत्त्वनिपातार्थं कोष्ठीयन्त्रमिति स्मृतम् ॥ १ ॥ रसरत्नसमुच्चयः ।

सोलह अङ्गुल चौडा और एक हस्त भर लम्बी तथा समान आकार की एक मूषा बनवानी चाहिए । इस को कोष्टी यन्त्र कहते हैं । यह यन्त्र धातु तथा रत्न आदि के सत्त्वों को निकालने के लिए उत्तम है ॥ १ ॥

अत्रिसंहिता में निम्नवर्णन अधिक है यथा—

परिपूर्णं दृढाङ्गारैरधोवातेन कोष्ठके ।
मात्रया ज्वालमार्गेण ज्वालयेच्च हुताशनम् ॥

एक लौह या मिट्टी की कोष्ठिका बनवाकर उसके मध्य में भस्त्रा (धोंकनी) के मुख को प्रविष्ट करने के लिये छिद्र रखना चाहिए जैसा कि चित्र में दर्शाया है। तथा कोष्ठिका के अन्दर औषधपूर्ण मूषा या डमरूयन्त्राकार को मूषा रखकर उसके ऊपर तथा चारों ओर पार्श्व में कोयले आदि भर के वह्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए तथा भस्त्रा के द्वारा अग्नि प्रधमन करते रहना चाहिए ।

॥ श्रीः ॥

रसरत्नसमुच्चयः

रत्नोज्ज्वलाख्यभाषाटीकयाऽलङ्कृतः ।

रसोत्पत्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ।

मङ्गलाचरणम्—

यस्याऽऽनन्दभवेन मङ्गलकलासम्भावितेन स्फुर-
द्धाम्ना सिद्धरसामृतेन करुणावीक्षासुधासिन्धुना ।
भक्तानां प्रभवप्रसंहृतिजरारागादिरोगाः क्षणा-
च्छान्तिं यान्ति जगत्प्रधानभिषजे तस्मै परस्मै नमः ॥ १ ॥

टीकाकारकृतमङ्गलाचरणं व्याख्याप्रयोजनञ्च ।

ध्यात्वा साम्बमहेशपादकमलं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्
नत्वा नीलसरोजश्यामलतनुं श्रीरामचन्द्रं तथा ।
स्मृत्वाऽहं हृदयारविन्दपटले श्रीकृष्णतातं त्वथ
भाषामाकलयामि वाग्भटकृते ग्रन्थे सुरत्नोज्ज्वलाम् ॥ १ ॥
श्रीमेदपाटदेशे हि लब्धजन्मा भिषग्वरः ।
श्रीकृष्णतनुजो वैद्यः ख्यातगुर्जरगौड़जः ॥ २ ॥
अम्बिकादत्तशर्माऽहं वैद्यकोद्धारकाम्यया ।
प्राच्यं श्रमेण पाश्चात्यं चिकित्साशास्त्रसागरम् ॥ ३ ॥
निर्मथ्योभयसिद्धान्तै-र्भूषितां तत्वदर्शिभिः ।
रत्नोज्ज्वलामिमां टीकां करोमि विदुषां मुदे ॥ ४ ॥

जिस परमपूज्य महेश्वर के आनन्द से उत्पन्न और शुभ शीतल कलाओं से सम्भावित, प्रदीप्ततेजयुक्त कृपादृष्टिरूप अमृत के समुद्र के समान गुणकारी, सिद्ध

हुए पारदरूपी सुधा के सेवन से भक्तजनों के जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और रागद्वेष मोहादि अनेक रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ऐसे उस परम प्रसिद्ध संसार के प्रधान चिकित्सक ईश्वर (शङ्कर) को प्रणाम है ॥ १ ॥

अथ ग्रन्थकर्तॄणां नामानि—

आदिमश्चन्द्रसेनश्च लङ्केशश्च विशारदः ।
कपाली मत्तमाण्डव्यौ भास्करः शूरसेनकः ॥ २ ॥
रत्नकोशश्च शंभुश्च सात्विको नरवाहनः ।
इन्द्रदो गोमुखश्चैव कम्बलिर्व्याडिरेव च ॥ ३ ॥
नागार्जुनः सुरानन्दो नागबोधिर्यशोधनः ।
खण्डः कापालिको ब्रह्मा गोविन्दो लम्पको हरिः ॥ ४ ॥
सप्तविंशतिसंख्याका रससिद्धिप्रदायकाः ।
रसाङ्कुशो भैरवश्च नन्दी स्वच्छन्दभैरवः ॥ ५ ॥
मन्थानभैरवश्चैव काकश्चण्डीश्वरस्तथा ।
वासुदेव ऋषिः श्रृङ्गः क्रियातन्त्रसमुच्चयी ॥ ६ ॥
रसेन्द्रतिलको योगी भालुकी मैथिलाह्वयः ।
महादेवो नरेन्द्रश्च वासुदेवो हरीश्वरः ॥ ७ ॥
एतेषां क्रियतेऽन्येषां तन्त्राण्यालोक्य सङ्ग्रहः ।
रसानामथ सिद्धानां चिकित्सार्थोपयोगिनाम् ॥
सूनुना सिंहगुप्तस्य रसरत्नसमुच्चयः ॥ ८ ॥
रसोपरसलोहानि यन्त्रादिकरणानि च ।
शुद्ध्यर्थमपि लोहानां तन्त्रादिकरणानि च ॥
शुद्धिः सत्त्वं द्रुतिर्भस्मकरणं च प्रवक्ष्यते ॥ ९ ॥

आदिम, चन्द्रसेन, लङ्केश, विशारद, कपाली, मत्त, माण्डव्य, भास्कर, शूरसेन, रत्नकोष, शम्भु, सात्विक, नरवाहन, इन्द्रद, गोमुख, कम्बली, व्याडि, नागार्जुन, सुरानन्द, नागबोधि, यशोधन, खण्ड, कपालिक, ब्रह्मा, गोविन्द, लम्पक, और हरि, ये सत्ताईस आचार्य रससिद्धि देने वाले हुए। और भी रसाङ्कुश, भैरव, नन्दी, स्वच्छन्दभैरव, मन्थानभैरव, काकचण्डी, वासुदेव, ऋषि और रसक्रिया तथा

रसतन्त्र का सङ्ग्रह करने वाला शृङ्ग, रसेन्द्रतिलक, योगी, भालुकी, मैथिल, महादेव, नरेन्द्र, वासुदेव, हरीश्वर, इनके और अन्य आचार्यों के रसतन्त्र शास्त्रों को देख कर चिकित्सा में अत्यन्त उपयुक्त सिद्धरसों का इस 'रसरत्नसमुच्चय' नामक ग्रन्थ में सिंहगुप्त का पुत्र मैं वाग्भट स्वयं सङ्ग्रह करता हूं । इस ग्रन्थ में रस और उपरस तथा सप्तलौह या सप्तधातु तथा इनकी शुद्धि के लिये दोला यन्त्रादि उपकरण तन्त्र तथा इनके शोधन, सत्वपातन, द्रुतिकरण और भस्म करने की भिन्न २ विधियों का वर्णन भी किया जायगा ॥ २-९ ॥

अथ हिमालयवर्णनम्—

अस्ति नीहारनिलयो महानुत्तरदिङ्मुखे ।
उत्तुङ्गशृङ्गसङ्घातलङ्घिताभ्रो महीधरः ॥ १० ॥
विश्रामाय वियन्मार्गविलङ्घनघनश्रमः ।
अवतीर्ण इव क्षोण्यां शरदम्बुमुचां गणः ॥ ११ ॥
राशिराशीविषाधीशफणाफलकरोचिषाम् ।
भित्त्वा भुवमिवोत्तीर्णो यो विभाति भृशोन्नतः ॥ १२ ॥
ज्वलदोषधयो यस्य नितम्बमणिभूमयः ।
नक्तमुद्दामतडितामनुकुर्वन्ति वार्मुचाम् ॥ १३ ॥
कटके सञ्चरन्तीनां यस्य किन्नरयोषिताम् ।
पादेषु धातुरागेण लाक्षाकृत्यमनुष्ठितम् ॥ १४ ॥
अवतंसितशीतांशुराच्छादितदिगम्बरः ।
यो गुहाधिगतो लोकैर्गिरीश इति गीयते ॥ १५ ॥

उत्तर दिशा में स्थित, हिम का प्रधान स्थान, ऊंचे २ शिखरों के समूह से मेघों को भी अतिक्रमण करने वाला, दिनरात आकाश मार्ग में चलने से उत्पन्न हुए श्रम के निवारणार्थ भूपृष्ठ पर उतरा हुआ मानों शरद् ऋतु के मेघों के समूह के समान शोभायमान, और पृथ्वी को विदीर्ण करके निकले हुए शेष नाग के सहस्रफणों में स्थित मणियों की किरणों के समूह के सदृश श्वेतकान्ति वाला अत्यन्त उन्नत हिमालयपर्वत शोभायमान हो रहा है, और दिव्य औषधियों वाले जिस हिमालय के मध्य भाग का मणिजड़ित प्रदेश (भूमियां) रात्रि में अत्यन्त चमकती हुई विद्युत् से युक्त मेघों का अनुकरण करते हैं । और जिस हिमालय के

मध्य भाग में भ्रमण करती हुई किन्नर स्त्रियों के चरणों में लगी हुई पद्मरागादि मनःशिला और गैरिक आदि धातुओं की लालिमा ने अलक्तक के पादरञ्जनरूपी कार्य को सम्पादन किया है। और वहां शिवजी का स्थान होने से चन्द्रमा को अपना शिरोभूषण बनाकर, तथा दिशारूपी वस्त्रों को धारण किया हुआ (अर्थात् समग्रदिशाओं में व्याप्त) और नाना कन्दराओं से युक्त (अथवा अपने दौहित्र कार्तिकेय का अधिष्ठान है जिसमें) ऐसा यह हिमालय सर्व पर्वतों का स्वामी जनों से पुकारा जाता है ॥ १०—१५ ॥

अथ महादेवस्थितिवर्णनम्—

निमीलितदृशो नित्यं मुनयो यस्य सानुषु ।
प्रत्यक्षयन्ति गिरिशमवाङ्मनसगोचरम् ॥ १६ ॥
शिलातलप्रतिहतैर्यस्य निर्झरशीकरैः ।
अहन्यपि निरीक्षन्ते यक्षास्ताराङ्कितं नभः ॥ १७ ॥
नीहारपवनोद्रेकनिःसहा यत्र पूरुषाः ।
निजस्त्रीणां निषेवन्ते कुचोष्माणं निरन्तरम् ॥ १८ ॥
सञ्चरन्कटके यस्य निदाघेऽपि दिवाकरः ।
उद्दामहिमरुद्धोष्मा न शीतांशोर्विभिद्यते ॥ १९ ॥
गुहागृहेषु कस्तूरीमृगनाभिसुगन्धिषु ।
गायन्ति यत्र किन्नर्यो गौरीपरिणयोत्सवम् ॥ २० ॥
चकास्ति तत्र जगतामादिदेवो महेश्वरः ।
रसात्मना जगत्त्रातुं जातो यस्मान्महारसः ॥ २१ ॥

जिस हिमगिरि के शिखर प्रदेशों पर स्थित महर्षिगण ध्यान से नेत्रों को बन्द करके वाणी और चित्त से भी अवर्णनीय ऐसे महादेव का नित्य ही ज्ञान चक्षुओं से प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करते हैं। और जिस पर्वत पर रहने वाले यक्षगण दिन में भी शिलापृष्ठ पर ताड़ित हुए झरणों के छोटे २ कणों से आकाश को नक्षत्रों से व्याप्त हुआ देखते हैं। और जहां पर निवास करने वाले पुरुष तुषार के कणों से मिश्रित वायु के वेग को सहन करने में असमर्थ होकर सर्वदा निज स्त्रियों के स्तनों की उष्णता को प्राप्त करते हैं। और जिस हिमालय के शृङ्ग पर ग्रीष्म ऋतु में सञ्चरण करने वाला सूर्य तुषार से उष्णता नष्ट होने के कारण चन्द्रमा से भिन्न-

प्रतीत नहीं होता। और जिस हिमालय की कस्तूरी मृग के नाभिगत कस्तूरी से सुगन्धित कन्दराओं के गृहों में बैठी हुई किन्नरों की स्त्रियां श्रीपार्वती के शुभ विवाहोत्सव के मङ्गल गीत गाती रहतीं हैं ऐसे शुभ कैलास पर्वत पर संसार के प्रथम आराध्य भगवान् महादेव इस रूप से संसार की रक्षा के लिये विराजमान हैं जिन से ही महान् पारद रस की उत्पत्ति हुई है ॥ १६—२१ ॥

अथ रसोत्कर्षवर्णनम्—

शताश्वमेधेन कृतेन पुण्यं गोकोटिभिः स्वर्णसहस्रदानात् ।
नृणां भवेत्सूतकदर्शनेन यत्सर्वतीर्थेषु कृताभिषेकात् ॥ २२ ॥
विधाय रसलिङ्गं यो भक्तियुक्तः समर्चयेत् ।
जगत्त्रितयलिङ्गानां पूजाफलमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥
भक्षणं स्पर्शनं दानं ध्यानं च परिपूजनम् ।
पञ्चधा रसपूजोक्ता महापातकनाशिनी ॥ २४ ॥
हन्ति भक्षणमात्रेण पूर्वजन्माघसम्भवम् ।
रोगसङ्घमशेषाणां नराणां नात्र संशयः ॥ २५ ॥
पूर्वजन्मकृतं पापं सद्यो नश्यति देहिनाम् ।
सुगन्धपिष्टसूतेन यदि शम्भुर्विलेपितः ॥ २६ ॥
अभ्रकं त्रुटिमात्रं यो रसस्य परिजारयेत् ।
शतक्रतुफलं तस्य भवेदित्यब्रवीच्छिवः ॥ २७ ॥
यश्च निन्दति सूतेन्द्रं शम्भोस्तेजः परात्परम् ।
स पतेन्नरके घोरे यावत्कल्पविकल्पनम् ॥ २८ ॥

विधि सहित किए हुए सैकड़ों अश्वमेध यज्ञों से अथवा करोड़ों गौओं के दानसे और हजारों मन सोने के दान करने से तथा काशी प्रयागादि पुण्य स्थानों में स्नान करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है वही फल केवल मनुष्य को पारद के दर्शन से लब्ध होता है। यदि कोई पारद का शिवलिङ्ग निर्माण कर भक्तिपूर्वक अर्चन करता है तो उसको तीनों लोकों में स्थित शिवलिङ्ग पूजन का फल प्राप्त होता है। औषध रूप से पारद का सेवन, तथा स्पर्शन, दान, ध्यान और पूजन करना यह पांच तरह की बड़े २ पापों का नाश करने वाली रसेन्द्र की पूजन शास्त्रों में कही गई है। इसको शास्त्रोक्तविधि सहित औषध रूप में सेवन करने से समस्त

मनुष्यों के पूर्व जन्म के पापों से उत्पन्न होने वाले रोग समूह जड़ से नष्ट हो जाते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। पारे का गन्धक के साथ पेषण करके शिवलिङ्ग पर चन्दन के समान लेपन करने से मनुष्यों के पूर्व देह कृत पाप तुरन्त नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य अभ्रक तथा किञ्चिन्मात्र भी पारद का अच्छी तरह जारण करता है उसको शत अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है, ऐसा शिव जी ने कहा है।

जारणलक्षणं यथा—सूते गन्धादिनिक्षेपात्तत्द्विधिविशेषतः ।
गन्धाद्यं जार्यते यत्तु जारणं कथ्यते बुधैः ॥

जो मनुष्य परमोत्कृष्ट महादेव के तेज स्वरूप पारद की निन्दा करता है वह कल्पान्त तक नरक में पड़ा रहता है ॥ २२—२८ ॥

अथ पारदस्य विशेषतो महत्ता—

रोगिभ्यो यो रसं दद्यं शुद्धिपाकसमन्वितम् ।
तुलादानाश्वमेधानां फलं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥ २९ ॥
सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्र्यगदं जगत् ।
रसध्यानमिदं प्रोक्तं ब्रह्महत्यादिपापनुत् ॥ ३० ॥
अभ्रग्रासो हि सूतस्य नैवेद्यं परिकीर्तितम् ।
रसस्येत्यर्चनं कृत्वा प्राप्नुयात्क्रतुजं फलम् ॥ ३१ ॥
उदरे संस्थिते सूते यस्योत्क्रामति जीवितम् ।
स मुक्तो दुष्कृताद्घोरात्प्रयाति परमं पदम् ॥ ३२ ॥

जो वैद्य सम्पूर्ण शुद्धि करके पारद की भस्म या उसका पाक करके रोगियों को औषध रूप में देता है उसको तुलादान तथा अश्वमेध यज्ञ करने का अनश्वर फल प्राप्त होता है। पारद का भस्मादि रूप में सिद्ध होने पर संसार को दारिद्रय और रोग से मुक्त कर दूंगा इस तरह से किया हुआ पारद का ध्यान ब्रह्महत्यादि अनेक पापों का नाश करता है। पारद में अभ्रक को लीन करने के लिये जो जारण कर्म होता है उस पारद को अभ्रग्रास कहते हैं, इस तरह अभ्रक का ग्रास करना ही पारद का नैवेद्य है पारद की पूजा में भी अभ्रक रक्खा जाता है इस तरह पारद की जो पूजन करता है वह यज्ञजन्य फल को प्राप्त करता है।

ग्रसनप्रकारः—वज्रकण्टकवच्चोग्रं वृद्धमष्टाङ्गुलं मृदा ।

विलिप्य गोकरीषाग्नौ पुटितं तत्र शोषितम् ॥ १ ॥

त्र्यहं वज्रे विनिक्षिप्तो ग्रासार्थी जायते रसः ।

ग्रसते गन्धहेमादिवज्रसत्वादिकं क्षणात् ॥ २ ॥

अभ्रादिग्रसनशक्तिसञ्जननमेव रसस्य पूजनम्—

जिस मनुष्य की औषधरूप में सेवित पारद के उदर में रहने पर अपनी आयु समाप्ति के कारण मृत्यु हो जाती है वह घोर पापों से मुक्त होकर अन्तिम मुक्तिपद को प्राप्त होता है ॥ २९–३२ ॥

अथ मूर्च्छितादिपारदगुणाः—

मूर्छित्वा हरति रुजं बन्धनमनुभूय मुक्तिदो भवति ।
अमरी करोति हि मृतः कोऽन्यः करुणाकरः सूतात् ॥ ३३ ॥
सुरगुरुगोद्विजहिंसापापकलापोद्भवं किलासाध्यम् ।
श्वित्रं तदपि च शमयति यस्तस्मात्कः पवित्रतरः सूतात् ३४
रसबन्ध एव धन्यः प्रारम्भे यस्य सततमितिकरणा ।
सेत्स्यति रसे करिष्ये महीमहं निर्जरामरणाम् ॥ ३५ ॥
सुकृतफलं तावदिदं सुकुले यज्जन्म धीश्च तत्रापि ।
साऽपि च सकलमहीतलतुलनफला भूतलं च सुविधेयम् ॥ ३६ ॥
भूतलविधेयतायाः फलमर्थास्ते च त्रिविधभोगफलाः ।
भोगाश्च सन्ति शरीरे तदनित्यमतो वृथा सकलम् ॥ ३७ ॥
इति धनशरीरभोगान्मत्वाऽनित्यान्सदैव यतनीयम् ।
मुक्तौ सा च ज्ञानात्तच्चाभ्यासात्स च स्थिरे देहे ॥ ३८ ॥
तत्स्थैर्ये न समर्थं रसायनं किमपि मूललोहादि ।
स्वयमस्थिरस्वभावं दाह्यं क्लेद्यं च शोष्यं च ॥ ३९ ॥

विधिसहित मूर्च्छित पारद व्याधि को नष्ट करता है, स्वेदनादि बन्धन साधन प्रक्रियाओं से बद्ध पारद मोक्ष प्रदान करता है, भस्मीभूत पारा मनुष्य को अमर बनाता है अत एव पारद से बढकर और कृपा करने वाला कौन है? देव, गुरु, गौ, और ब्राह्मण इत्यादि प्राणिमात्र की हिंसा से उत्पन्न पापों के समूह से उत्पन्न हुए असाध्य श्वेत कुष्ठ को भी जो निश्चय ही दूर करता है ऐसे पारद से

अधिक पवित्र कौन पदार्थ है ? जिस मनुष्य की इच्छा प्रथम ही रस वन्धन के लिये निरन्तर होती रहती है तथा मैं रस का सम्यक् वन्धन हो जाने पर भूमण्डल के मनुष्यों को अजर एवं अमर कर दूंगा वह धन्य है।

मूर्च्छनाप्रकारः—गन्धकेन रसं प्राज्ञः सुदृढं मर्द्दयेद्भिषक् ।
कज्जलाभो यदा सूतो विहाय घनचापलम् ॥
दृश्यतेऽसौ तदा ज्ञेयो मूर्च्छितो रसकोविदैः ।
असौ रोगचयं हन्यादनुपानस्य योगतः ॥ इति र० सा० सं० ।

बहुविधमूर्च्छनाप्रकारेषु षड्गुणगन्धकजारणप्रक्रिया साधीयसी ।

यथा—रसगुणवलिजारणं विनाऽयं न खलु रूजाहरणक्षमो रसेन्द्रः ।
न जलदकलधौतपाकहीनः स्पृशति रसायनतामिति प्रसिद्धा ॥
इति र० चि० म० ।

बन्धनप्रकारो यथा रसरत्नाकरे—

कटुतुम्ब्युद्भवे कन्दे वन्ध्यायाः क्षीरकन्दके ।
अपक्कैकं समादाय तद्गर्भे पिण्डिका ततः ॥
दशनिष्कं शुद्धसूतं निष्कैकं शुद्धगन्धकम् ।
स्तोकं स्तोकं क्षिपेद्गन्धं पाषाणे तु च कुट्टयेत् ॥
याममात्रे भवेत् पिण्डी रक्तकन्दे विनिःक्षिपेत् ।
अर्धार्द्धं भस्म वैक्रान्तं दत्वा निष्कार्धमानकम् ॥
ततः कन्दस्य मज्जाभिर्मुखं बद्ध्वा मृदा दृढम् ।
लिप्तमङ्गुलमानेन सर्वतः शोष्य गोलकम् ॥
पाचयेत् भूधरे यन्त्रे तदुधृत्य पुनः पचेत् ।
उद्र्ध्वभागमधः कुर्यादित्येवं परिवर्जयेत् ॥
क्रमेण चालयेदूर्ध्वं वह्निर्युग्मोपलैः पचेत् ।
ततो भित्वा तु सङ्ग्राह्यः बद्धःस्याद्दाडिमोपमम् ॥
नाम्ना वैक्रान्तवद्धोऽयं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥

भस्मकरणप्रकारो यथा—

द्विपलं शुद्धसूतस्य सूताधं गन्धकं तथा ।
कन्यानीरेण संमर्द्य दिनमेकं निरन्तरम् ॥

रुद्ध्वा तत् भूधरे यन्त्रे दिनैकं मारयेत् पुटे ॥ इति र० सा० सं०।

पूर्वजन्म कृत अच्छे कर्मों का फल है कि उत्तम वंश में जन्म हो, उसमें भी श्रेष्ठ कुशाग्र तथा आस्तिक्य बुद्धि हो और वह बुद्धि भी सम्पूर्ण भूमण्डल के ज्ञान की तुलना कर सके, फिर उस श्रेष्ठ बुद्धि से पृथ्वी को शक्ति शालिनी बनाने का यत्न करना उससे धनप्राप्ति रूप फल होता है, और धन का फल नाना प्रकार के भोग हैं, और वे भोग शरीर ही में सम्पादित होते हैं (अर्थात् शरीर द्वारा ही भोगे जाते हैं)। किन्तु वह शरीर नाशवान् है इसलिये उपर्युक्त सर्व सामग्री वृथा ही है। इस कारण धन, शरीर, तथा भोगविलासादियों को अनित्य जानकर सदा ही मुक्ति प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिए, और वह मुक्ति सत्य ज्ञान से होती है, वह यथार्थ ज्ञान योगाभ्यास से, और योग का अभ्यास व्याधि रहित स्थिर शरीर द्वारा ही हो सकता है, इस देह की स्थिरता को बनाई रखने में मूल काष्ठ औषधियां तथा सप्तधातु स्वर्ण लौहादि कोई भी रसायन समर्थ नहीं है क्यों कि वे काष्ठादि तथा धातु औषधियां स्वयं अस्थिर प्रकृति वाली होती हैं तथा वन्हि उनका नाश कर देती है, जल से आर्द्र हो जाती हैं, सूर्य अपनी उष्णता से उन्हें जला देता है। किन्तु पारद पर किसी का भी अनिष्ट कारी प्रभाव नहीं पड़ता है अतः सब में यही उत्तम है।

रसायनलक्षणम्— यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्। इति चरकः, ॥३३–३९॥

पारदे सर्वौषधानामन्तर्भावः—

काष्ठौषध्यो नागे नागो वङ्गेऽथ वङ्गमपि शुल्बे।
शुल्बं तारे तारं कनके कनकं च लीयते सूते ॥ ४० ॥
अमृतत्वं हि भजन्ते हरमूर्तौ योगिनो यथा लीनाः।
तद्वत्कवलितगगने रसराजे हेमलोहाद्याः ॥ ४१ ॥

काष्ठादिकमूल औषधियां सीसे में, सीसा वङ्ग में, वङ्ग ताम्र में, ताम्र रजत में तथा रजत (चांदी) सोने में और सुवर्ण पारद में विधियों द्वारा मिल जाता है, जिस तरह योगीजन श्रीशिवजी के रूप में लीन होकर अमृतत्व को प्राप्त करते हैं (अर्थात् वे शिवजी में मिलकर जन्म मृत्यु जराव्याधि, आदि

रोगों से मुक्त हो जाते हैं) इसी तरह अभ्रक को अपने में लीन किया हुआ पारद सम्पूर्ण सुवर्ण लौहादि धातुओं को अपने में समाविष्ट कर लेता है ॥४०-४१॥

अथ रसस्य जीवन्मुक्तिकारणतामाह—

परमात्मनीव सततं भवति लयो यत्र सर्वसत्त्वानाम् ।
एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते ॥ ४२ ॥
स्थिरदेहेऽभ्यासवशात्प्राप्य ज्ञानं गुणाष्टकोपेतम् ।
प्राप्नोति ब्रह्मपदं न पुनर्भववासजन्मदुःखानि ॥ ४३ ॥
एकांशेन जगद्युगपद्वष्टभ्यावस्थितं परं ज्योतिः ।
पादैस्त्रिभिस्तदमृतं सुलभं न विरक्तिमात्रेण ॥ ४४ ॥
न हि देहेन कथञ्चिद्व्याधिजरामरणदुःखविधुरेण ।
क्षणभङ्गुरेण सूक्ष्मं तद्ब्रह्मोपासितुं शक्यम् ॥ ४५ ॥
नामापि देहसिद्धेः को गृह्णीयाद्विना शरीरेण ।
यद्योगगम्यममलं मनसाऽपि न गोचरं तत्त्वम् ॥ ४६ ॥
यज्ञाद्दानात्तपसो वेदाध्ययनाद्दमात्सदाचारात् ।
अत्यन्तभूयसी किल योगवशादात्मसंवित्तिः ॥ ४७ ॥
भ्रयुगमध्यगतं यच्छिखिविद्युत्सूर्यवज्जगद्भासि ।
केषाञ्चित्पुण्यदृशामुन्मीलति चिन्मयं परं ज्योतिः ॥ ४८ ॥
परमानन्दैकरसं परमं ज्योतिःस्वभावमविकल्पम् ।
विगलितसकलक्लेशं ज्ञेयं शान्तं स्वसंवेद्यम् ॥ ४९ ॥
तस्मिन्नाधाय मनः स्फुरदखिलं चिन्मयं जगत्पश्यन् ।
उत्सन्नकर्मबन्धो ब्रह्मत्वमिहैव चाऽऽप्नोति ॥ ५० ॥
रागद्वेषविमुक्ताः सत्याचारा मृषारहिताः ।
सर्वत्र निर्विशेषा भवन्ति चिद्ब्रह्मसंस्पर्शात् ॥ ५१ ॥
तिष्ठन्त्यणिमादियुता विलसद्देहाः सदोदितानन्दाः ।
ब्रह्मस्वभावममृतं सम्प्राप्ताश्चैव कृतकृत्याः ॥ ५२ ॥
आयतनं विद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम् ।
श्रेयः परं किमन्यच्छरीरमजरामरं विहायैकम् ॥ ५३ ॥

प्रत्यक्षेण प्रमाणेन यो न जानाति सूतकम् ।
अदृष्टविग्रहं देवं कथं ज्ञास्यति चिन्मयम् ॥ ५४ ॥
यज्जरया जर्जरितं कासश्वासादिदुःखविवशं च ।
याग्यं तन्न समाधौ प्रतिहितबुद्धीन्द्रियप्रसरम् ॥ ५५ ॥
बालः षोडशवर्षो विषयरसास्वादलम्पटः परतः ।
यातविवेको वृद्धो मर्त्यः कथमाप्नुयान्मुक्तिम् ॥ ५६ ॥
अस्मिन्नेव शरीरे येषां परमात्मनो न संवेदः ।
देहत्यागादूर्ध्वं तेषां तद्ब्रह्म दूरतरम् ॥ ५७ ॥
ब्रह्मादयो यतन्ते तस्मिन्दिव्यां तनुं समाश्रित्य ।
जीवन्मुक्ताश्चान्ये कल्पान्तस्थायिनो मुनयः ॥ ५८ ॥
तस्माज्जीवन्मुक्तिं समीहमानेन योगिना प्रथमम् ।
दिव्या तनुर्विधेया हरगौरीसृष्टिसंयोगात् ॥ ५९ ॥

जिस तरह संसार के सर्व प्राणी परब्रह्म परमात्मा में लीन हो जाते हैं उसी तरह रसों में राजा (श्रेष्ठ) पारद में सम्पूर्ण रस, उपरस लौहादि द्रव्य समाविष्ट हो जाते हैं, इस तरह का यह पारद शरीर को अजर और अमर बना देता है (अर्थात् परब्रह्म की उपासना से जो अजर और अमर फल प्राप्त होता है वही फल इससे है अतः पारद भी ब्रह्मस्वरूप ही है)

पारद के सेवन करने से स्थिर देह प्राप्त होने पर अभ्यास करने से गौतम महर्षि प्रतिपादित अष्टविध गुणों से युक्त यथार्थ ज्ञान को मनुष्य प्राप्त करके ब्रह्म पदको प्राप्त करता है फिर वह पुनरुत्पत्ति और वासना जनित दुःखों को प्राप्त नहीं होता है, इस तरह पारद मोक्ष देने वाला है ।

गौतमोक्त अष्टगुण, सर्वभूतदया, क्षान्तिः, अनसूया, शौच, अनायास, मङ्गलवचन, अकार्पण्य, अस्पृहा, ये हैं । तीन पादों (सत्व, रज, और तम) से युक्त अर्थात् त्रिविक्रमस्वरूप परमोत्कृष्ट ज्योतिःस्वरूप पदार्थ अपने सर्वभूतस्वरूप एक अंश (पाद) से जगत् को धारण करके स्थित है वह अमृत स्वरूप पर ब्रह्म केवल वैराग्य मात्र से प्राप्त नहीं होता है ।

'पादोऽस्य सर्वभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि' इति श्रुतिः ।

'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्' इति गीता ॥

व्याधि, जरा, मरण आदि अनेक कष्टों से आक्रान्त तथा क्षण में नाश होने वाले इस देह से किसी तरह से भी वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रसिद्ध ब्रह्म कभी भी ध्यान गम्य नहीं हो सकता है। इसी को प्रकारान्तर से कहते हैं—जो निर्मल है और मन का भी विषय न होने वाला है किन्तु योग से प्राप्त होने वाला है ऐसे तत्त्वस्वरूप ब्रह्म को देहसिद्धि के विना इस क्षणविध्वंसी स्थूल शरीर से कौन ऐसा व्यक्ति है जो प्राप्त कर सके ?

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह,

ब्रह्मज्ञानोपाय निम्न हैं—यागानुष्ठानों से, अन्न वस्त्रादि के दान से, तपश्चर्या से, वेदपाठ से, दम से, सत्पुरुषों के समान सदाचरण करने से, और योग से, अत्यन्त प्रचुर तथा सर्वोत्तम ब्रह्मज्ञानरूप आत्मसिद्धि प्राप्त होती है।

'निग्रहो बाह्यवृत्तीनां दम इत्यभिधीयते'

सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥
तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्य्यक्रमागतः। वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥
साधवः क्षीणदोषाश्च सच्छब्दः साधुवाचकः। तेषामाचरणं यत्तु सदाचारः स उच्यते॥

दोनों भ्रूकुटियों के बीच में स्थित जो अग्नि, विद्युत् और सूर्य के समान जगत् को प्रकाशित करने वाला उत्कृष्ट ज्योतिः स्वरूप परब्रह्म है वह ज्ञान चक्षुयुक्त किसी २ मनुष्य को प्रकाशित होता है।

केवल नित्यानन्दस्वरूप, सर्वदा एकरस, और अनादि, तर्क वितर्कादि कल्पों से रहित स्वभाव वाला, समग्र क्लेशों से रहित, शान्तस्वरूप, सब के जानने योग्य तथा आत्मा ही में मनन होने वाला, ज्योतिः स्वरूप ब्रह्म है, ऐसे ब्रह्म में मन को निविष्ट कर, निखिल जगत् को उस ब्रह्म से व्याप्त और प्रकाश युक्त देखता हुआ शुभाशुभ कर्मों से युक्त होकर मनुष्य इसी संसार में ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है। उस ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष स्वजनानुराग और परजनद्वेष से रहित, शुद्ध आचार-युक्त मिथ्याभाषणादि रहित और सब में समदर्शी होते हैं और अमृत स्वरूप ब्रह्मस्वभाव को प्राप्त पुरुष अणिमादि अष्टसिद्धियों से युक्त देदीप्यमान देहवाले, और सर्वदा आनन्द ही में मग्न रहने वाले तथा अपने को कृतकृत्य जान कर रहते हैं।

जो तत्व को साक्षात्कार कराने वाली श्रुतिस्मृत्यादि विद्याओं का आधार है

और धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष का मूल है ऐसे एक जीवन मरण से रहित शरीर के सिवाय अन्य कौनसा उत्तम श्रेय है ?।

जो पुरुष देहस्थिर करने वाले प्रत्यक्ष प्रमाणों से भी पारद को यथार्थ नहीं समझता है वह स्थूल चक्षु से अज्ञेय तथा ज्ञानस्वरूप (चिन्मय) शरीर से रहित ब्रह्मदेव को कैसे सत्य जान सकेगा ? जो शरीर बुढापे से जर्जरित हो गया है और कास, श्वास आदि दुःखों से व्याप्त है और सत्यासत्यनिर्णायक बुद्धि तथा स्वविषय प्रत्यक्ष करने वाली इन्द्रियों से कमजोर है ऐसा यह शरीर परमात्मा का एकाग्रचित्त से ध्यान करने में अयोग्य है।

सोलह वर्ष की अवस्था पर्यन्त मनुष्य बालक रूप में रहता है बाद में युवावस्था प्राप्त होने पर स्रक् चन्दन वनितारूप विषयरसों में लिप्त हो जाता है, फिर ७० वर्ष के बाद ज्ञान प्राप्त होने पर वृद्ध हो जाता है इस लिये मर्त्यजन कैसे मुक्ति लाभ करें ?। जिन मनुष्यों को इसी शरीर में परब्रह्मका यथार्थ ज्ञान न हो तो फिर इस देह त्याग के पश्चात् वे ब्रह्म ज्ञान से अत्यन्त दूर रह जाते हैं। ब्रह्मादिक देवता उस ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये दिव्यशरीर धारण करके तथा अनेक कल्पों तक स्थित रहने वाले जीवन्मुक्त होकर मुनि लोग भी उसके लिये प्रयत्न करते रहते हैं। इसलिये जीवन्मुक्ति की अभिलाषा रखने वाले योगी को चाहिये कि वह सर्वप्रथम महादेव और पार्वती से जन्य पारद और गन्धक के संयोग से निर्मित औषधि से दिव्य शरीर प्राप्त करने की कोशिश करें।

पारदं शिववीर्य्यञ्च दुर्गा वीजञ्च गन्धकम् ॥ ४२–५९ ॥

अथ रसोत्पत्तिवर्णनम्—

शैलेऽस्मिञ्शिवयोः प्रीत्या परस्परजिगीषया।
सम्प्रवृत्ते च सम्भोगे त्रिलोकक्षोभकारिणि ॥ ६० ॥
विनिवारयितुं वह्निः संभोगं प्रेषितः सुरैः।
काङ्क्षमाणैस्तयोः पुत्रं तारकासुरनामकम् ॥ ६१ ॥
कपोतरूपिणं प्राप्तं हिमवत्कन्दरेऽनलम्।
अपत्रिभावसंक्षुब्धं स्मरलीलाविलोकिनम् ॥ ६२ ॥
तं दृष्ट्वा लज्जितः शंभुर्विरतः सुरतात्तदा।
प्रच्युतश्चरमो धातुर्गृहीतः शूलपाणिना ॥ ६३ ॥

प्रक्षिप्तो वदने वह्नेर्गङ्गायामपि सोऽपतत् ।
वहिः क्षिप्तस्तया सोऽपि परिदन्दह्यमानया ॥ ६४ ॥
सञ्जातास्तन्मलाधानाद्धातवः सिद्धिहेतवः ।
यावदग्निमुखाद्रेतो न्यपतद्गूरिसारतः ॥ ६५ ॥
शतयोजननिम्नांस्तान्कृत्वा कूपांस्तु पञ्च च ।
तदाप्रभृति कूपस्थं तद्रेतः पञ्चधाऽभवत् ॥ ६६ ॥

हिमालय पर्वत पर महादेव और पार्वती दोनों में प्रेम पूर्वक परस्पर जय की इच्छा से लोकत्रय को क्षुब्ध करने वाला सम्भोग कर्म प्रारम्भ हुआ, उस सम्भोग को वन्द कराने की इच्छा वाले और शिव तथा पार्वती की देह से उत्पन्न पुत्र की चाहना वाले देवताओं ने अग्नि को भेजा। कवूतर के रूप को धारण किये हुए, हिमालय की गुफा में आये हुये और कामक्रीडा को देखने वाले देव भाव से संक्षुब्ध हुए अनल (अग्नि) देव को देख कर लज्जा के कारण शिव जी सम्भोग से विरत हुए, उस समय महादेव जी के शरीर से अन्तिम धातु (शुक्र) का पात हुआ, उस धातु को शिवजी ने अग्नि के मुख में डाल दिया, वाद में वह धातु वन्हि के मुख से गङ्गा में गिर पड़ा, उस तेज को न सहन करने वाली गङ्गा ने भी उसे वाहर फेंक दिया, उस वीर्य्य के किट्ट भाग से सिद्धिप्रदान करने वाले अनेक रसादिक धातु उत्पन्न हुए। जिस समय अग्नि के मुख से गुरुभारयुक्त शिवजी के धातु का बहिः पतन हुआ, उस वक्त वह धातु सौ योजन गहरे पांच कुए बना कर पञ्चविध हो गया ॥ ६०—६६ ॥

अथ रसानां भेदः—

रसो रसेन्द्रः सूतश्च पारदो मिश्रकस्तथा ।
इति पञ्चविधो जातः क्षेत्रभेदेन शंभुजः ॥ ६७ ॥
रसो रक्तो विनिर्मुक्तः सर्वदोषै रसायनः ।
सञ्जातास्त्रिदशास्तेन नीरुजा निर्जरामराः ॥ ६८ ॥
रसेन्द्रो दोषनिर्मुक्तः श्यावो रूक्षोऽति चञ्चलः ।
रसायिनोऽभवंस्तेन नागा मृत्युजरोज्झिताः ॥ ६९ ॥
देवैर्नागैश्च तौ कूपौ पूरितौ मृद्भिरश्मभिः ।
तदाप्रभृति लाकानां तौ जातावतिदुर्लभौ ॥ ७० ॥

ईषत्पीतश्च रूक्षाङ्गो दोषयुक्तश्च सूतकः ।
दशाष्टसंस्कृतैः सिद्धो देहं लोहं करोति सः ॥ ७१ ॥
अथान्यकूपजः सोऽपि चञ्चलः श्वेतवर्णवान् ।
पारदो विविधैर्योगैः सर्वरोगहरः स हि ॥ ७२ ॥
मयूरचन्द्रिकाच्छायः स रसो मिश्रको मतः ।
सोऽप्यष्टादशसंस्कारयुक्तश्चातीव सिद्धिदः ॥ ७३ ॥
त्रयः सूतादयः सूताः सर्वसिद्धिकरा अपि ।
निजकर्मविनिर्माणैः शक्तिमन्तोऽतिमात्रया ॥ ७४ ॥
एतां रससमुत्पत्तिं यो जानाति स धार्मिकः ।
आयुरारोग्यसन्तानं रससिद्धिं च विन्दति ॥ ७५ ॥

शिवजी से उत्पन्न धातु क्षेत्र भेद से रस, रसेन्द्र, सूत, पारद, और मिश्रक इस तरह पांच तरह का कहलाया । रस नामक पारद सवदोषों से रहित तथा रक्त वर्ण का होता है उसके सेवन से देवता लोग अजर और अमर होगये । रसेन्द्र नामक पारद दोषों से रहित कपिशवर्ण (श्यामवर्ण) लिये हुए तथा स्पर्श में रूक्ष और देखने में अत्यन्त निर्मल और रसायन गुण देने वाला होता है । उसके सेवन से नाग जाति मृत्यु तथा बुढापे से मुक्त होगई । इसके वाद नाग और इन्द्रादिक अजर अमर हुए देवताओं ने उन दोनों कुओं कों 'जिनमें रस और रसेन्द्र भरा था, मिट्टी और पत्थरों से बन्द कर दिया, उसी समय से वे दोनों कुए या पारद प्राणियों के लिये दुष्प्राप्य होगये ।

देखने में कुछ पीला, स्पर्श में रूक्ष और सप्तकञ्चुक तथा नागादि दोषों से युक्त सूत नाम का पारद होता है तथा अठारह संस्कारों से सिद्ध होने पर वह मनुष्य को लोह के समान मजबूत बना देता है, और अन्य कुओं से उत्पन्न रस चञ्चल और श्वेत वर्ण का होता है उसे पारद कहते हैं, वह विविध औषधियों के संयोग से, या अष्टादश संस्कार करने पर, सम्पूर्ण रोग दूर करता है । मोर के पुच्छस्थ विविध वर्ण की चन्द्राकृति की छाया वाला मिश्रक नाम का रस (पारद) होता है, वह भी अठारह संस्कारों से सिद्ध होने पर अत्यन्त सिद्धि प्रदान करता है । सूत, पारद और मिश्रक ये तीनों सूत (रस)

सम्पूर्ण सिद्धियों के देने वाले हैं तथापि उनका यदि अष्टादश स्वेदनादि संस्कार हो जाय तो उस कर्म के प्रभाव से वे अत्यन्त शक्ति देने वाले हो जाते हैं।

जो इस तरह रस की उत्पत्ति को जानता है, वह धर्मात्मा कहलाता है, और वही आयु और आरोग्य की परम्परा को प्राप्त करता है तथा रस शोधनादिकर्म में सफल भी होता है।

दोषगणना—नागो वङ्गो मलो वन्हि श्चाञ्चल्यञ्च विषं गिरिः।
असह्याग्निर्महादोषा निसर्गाः पारदे स्थिताः ॥ र० सा० सं०।

रसायनलक्षणन्तु—

यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्।
स्वस्थस्योजस्करं यत्तु तद्वृष्यं तद्रसायनम् ॥ 'इति चरकः।
देहस्येन्द्रियदन्तानां दृढीकरणमेव च।
वलीपलितखालित्यवर्जनेऽपि च या क्रिया॥
पूर्ववैद्यप्रणीतं हि तद्रसायनमुच्यते। इति वैद्यक संग्रहः।

अष्टादश संस्काराः—

"स्वेदन-मर्दन-मूर्च्छनोत्थापन-पातन-बोधन नियमन-दीपनानुवासन-गगनादि-ग्रास-प्रमाणचारण-गर्भद्रुति-बाह्यद्रुतियोग-जारण-रञ्जनसारण-क्रामणवेध-भक्षणानीति"।
रसेन्द्रचिन्तामणिः।

सूत और पारद शब्द व्यक्ति तथा जाति उभयवाचक हैं। जैसे तृण शब्द तृणविशेष और सर्वतृणनिष्ठ तृणजाति का वाचक होता है॥ ६७–७५॥

अथ रसादीनां निरुक्तिः—

रसनात्सर्वधातूनां रस इत्यभिधीयते।
जरारुङ्मृत्युनाशाय रस्यते वा रसो मतः॥ ७६॥
रसोपरसराजत्वाद्रसेन्द्र इति कीर्तितः।
देहलोहमयीं सिद्धिं सूते सूतस्ततः स्मृतः॥ ७७॥
रोगपङ्काब्धिमग्नानां पारदानाच्च पारदः।
सर्वधातुगतं तेजोमिश्रितं यत्र तिष्ठति॥
तस्मात् स मिश्रकः प्रोक्तो नानारूपफलप्रदः॥ ७८॥

एवंभूतस्य सूतस्य मर्त्यमृत्युगदच्छिदः ॥
प्रभावान्मानुषा जाता देवतुल्यबलायुषः ॥ ७६ ॥

सुवर्ण रजत आदि धातुओं को द्रवरूप में परिणत करने से अथवा सब धातुओं में उत्कर्ष वीर्याधान करने से पारद रस शब्द से कहा जाता है, अथवा जरा, व्याधि और मृत्यु के नाश करने में समर्थ होने से भी इसको रस कहते हैं। अभ्रक आदि आठ महारस—और गन्धकादि उपरसो में श्रेष्ठ होने से रसेन्द्र कहलाता है। शरीर को लोहे के तुल्य दृढ सिद्धि देने से अर्थात् मज़बूत करने से सूत कहा जाता है। व्याधि रूपी कीचड़ के समुद्र में डूबे हुए मनुष्यों को उससे पार करने के कारण पारद कहा जाता हैं। जिसमें सब धातुओं का तेज मिश्र होकर रहता है इसलिये उसे मिश्रक भी कहते हैं। वह नाना प्रकार के रोगों को नाश करने का फल करता है। अर्थात् मिश्रक नामक पारद में सब धातुओं के गुण पाये जाते हैं। इस प्रकार से मनुष्यों की मृत्युरूप व्याधि या मृत्यु और ज्वरादि रोगों को दूर करने वाले सूत के प्रभाव से मनुष्य देवताओं के समान बल और आयु से युक्त होने लगे।

संसारस्य परं पारं दत्तेऽसौ पारदः स्मृत ॥ ७६-७९ ॥

अथ रससंस्कारकारणम्—

तान्दृष्ट्वाऽभ्यर्थितो रुद्रः शक्रेण तदनन्तरम्।
दोषैश्च कञ्चुकाभिश्च रसराजो नियोजितः॥
तदाप्रभृति सूतोऽसौ नैव सिध्यत्यसंस्कृतः ॥ ८० ॥
जलगो जलरूपेण त्वरितो हंसगो भवेत्।
मलगो मलरूपेण सधूमो धूमगो भवेत् ॥ ८१ ॥
अन्या जीवगतिर्दैवी जीवोऽण्डादिव निष्क्रमेत्।
स तांश्च जीवयेज्जीवान् तेन जीवो रसः स्मृतः ॥ ८२ ॥
चतस्रो गतयो दृश्या अदृष्या पञ्चमी गतिः।
मन्त्रध्यानादिना तस्य रुध्यते पञ्चमी गतिः ॥ ८३ ॥
इति भिन्नगतित्वाच्च सूतराजस्य दुर्लभः।
संस्कारस्तस्य भिषजा निपुणेन तु रक्षयेत् ॥ ८४ ॥

इस तरह मनुष्यों को अजर अमर होते देख इन्द्र के प्रार्थना करने पर महादेव-
जी ने उस पारद में

नागादि अष्ट दोष और पर्पट्यादि सप्तककञ्चुक दोष

नागो वङ्गो मलो वह्निश्चाञ्चल्यश्च विषं गिरिः ।
असह्याग्नि महादोषा निसर्गाः पारदे स्थिताः ॥ र० सा० सं०
भेदी द्रावी मलकरी ध्वांक्षी पर्पटीका च सा ।
अन्धकारी पाटनिका कञ्चुकाः सप्त कीर्तिताः ॥ र० त०

मिला दिये। उस समय से आज तक यह सूत विना संस्कारों के सिद्धि देने वाला नहीं होता है। जल के समान द्रव रूप होने से जल के साथ गमन शील है। चाञ्चल्य होने से हंस के समान गमन शील है। मल रूप होने से मलादि दोषों के साथ मिल जाता है। अग्नि आदि से तप्त करने पर धूम के समान उड़न शील हो जाता है। इन चार प्रकार की गतियों के सिवाय पांचवीं भी अदृश्यरूप रस की गति है। उस गति के कारण देहरूप कोष से (अण्डात्) आत्मा की तरह निकल जाता है। अर्थात् जिस तरह से मृत्यु के समय आत्मा की गति का ज्ञान किसो को भी नहीं होता है इसी तरह रस की पांचवीं गति अदृश्य है। वह रस जीवों (प्राणियों) को प्राण दान करने से जीव कहलाता है।

पारद की उपर्युक्त जलग, हंसग, धूमग, मलग, रूप चारों गतियों का प्रत्यक्ष दर्शन होता है किन्तु पांचवीं गति अदृश्य है। परन्तु वह पांचवीं गति रस-रक्षामन्त्र और रसध्यान से रोकी जाती है। उक्त प्रकार से भिन्न २ गति होने के कारण पारद का संस्कार करना कठिन है। इस लिये निपुण वैद्य का कर्तव्य है कि वह उन संस्कारों की रक्षा करे ॥ ८०—८४ ॥

रसरक्षामन्त्रः—ओं अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो घोराघोरतरेभ्यश्च ।
सर्व्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररुपिभ्यः ॥ र० सा० सं०

ध्यानप्रकारः—हृद्व्योमकर्णिकाऽन्तःस्थं रसेन्द्रं परमेश्वरि ? ।
स्मरन्विमुच्यते पापैः सद्यो जन्मान्तरार्जितैः ॥ र० चि० म०

अथ रसस्य स्थानान्तरगतिवर्णनम्—

प्रथमे रजसि स्नातां हयारूढां स्वलंकृताम् ।
वीक्षमाणां वधूं दृष्ट्वा जिघृक्षुः कूपगो रसः ॥ ८५ ॥
उद्गच्छति जवात्सोऽपि तं दृष्ट्वा याति वेगतः ।
अनुगच्छति तां सूतः सीमानं योजनोन्मितम् ॥ ८६ ॥

प्रत्यायाति ततः कूपं वेगतः शिवसम्भवः ।
मार्गनिर्मितगर्तेषु स्थितं गृह्णन्ति पारदम् ॥ ८७ ॥

इसी समय प्रथम बार मासिकधर्म स्नान की हुई और अनेक प्रकार से उत्तम आभूषणों से शोभायमान तथा अश्व पर बैठी हुई और पारे के कुएँ में झांकती हुई तरुणी को देखकर उसे पकड़ने की इच्छा से वेग करके पारद कुएँ के बाहिर निकला । वह तरुणी भी उस पारे को देखकर वेग से भागने लगी । इसी तरह पारद भी चार कोस (योजन) पर्यन्त उसके पीछे पीछे चलता रहा, परन्तु उस स्त्री के भाग जाने पर बड़े वेग से फिर अपने आधार भूत कुएँ में आने लगा । उस समय कुछ पारा मार्ग में बने हुए गढहों में ठहर गया । उसी पारे को वे लोग गढहों से ग्रहण करते हैं ॥ ८५—८७ ॥

अथ हिङ्गुलोत्पत्तिवर्णनम्—

पतितो दरदे देशे गौरवाद्वह्निवक्त्रतः ।
स रसो भूतले लीनस्तत्तद्देशनिवासिनः ॥
तां मृदं पातनायन्त्रे क्षिप्त्वा सूतं हरन्ति च ॥ ८८ ॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये
रसोत्पत्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अत्यन्त गुरुता (भारीपन) होने के कारण जो पारद अग्नि के मुख से निकल कर दरद नाम वाले देश में गिरा, तभी से वह रस वहां की पृथ्वी में लीन हो गया । उस देश के लोग दरद नाम की मिट्टी को विद्याधर नामक उर्ध्व पातन यन्त्र में रख कर उससे पारा निकालते हैं ॥ ८८ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां
रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्यभाषाटीकायां
रसोत्पत्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ।

पारदीयविमर्शः—

हमारे प्राचीन आचार्यों ने जिस विषय के ऊपर गवेषणा करके जा कुछ सूत्र रूप में लिख दिया वह अक्षरशः सत्य है। उनके ज्ञान को आजकल के नवयुग के प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिक अथक परिश्रम करने पर भी अभीतक नहीं प्राप्त कर सके हैं। बहुत से सत्यप्रिय वैज्ञानिकों ने हमारे आचार्यों के सूत्राशयों को प्रत्यक्षादिकप्रमाणों से स्वयं प्रत्यक्ष करके सिद्ध करलेने पर अन्तः करण से उनकी चरण चञ्चरीकता को स्वीकार की है तथा उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा भी की है। इसके कई एक उदाहरण हैं। हमारे ऋषि महर्षि आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक इन तीनों प्रकार के ज्ञान के यथार्थ विज्ञानी थे। इस विषय में प्रायः वर्तमान समय के सब देशके विद्वानों का एक मत है किन्तु उन प्राचीन महर्षियों की शिष्य परम्परा के भी पश्चात् उप शिष्य परम्परा ने उन के सूत्रों का इस प्रकार की अलङ्कारिकसंस्कृत भाषा में वर्णन किया कि जिसके फलस्वरूपमें आधुनिक संस्कृत साहित्य के विद्वानों ने उन सूत्रस्थ द्रव्यों की विज्ञानता को खोकर केवल आप्तोक्त ही मानकर शनैः शनैः अपने शेष विज्ञान सूर्य को भी अपने आप अज्ञानाम्बर से ढक दिया। उधर आजकल के पाश्चात्य विद्वानों ने हमारे ही महर्षियों के सूत्रों के तत्व को भलीभांति समझ कर उसी के आधार पर प्रत्येक पदार्थ का अन्वेषण करना प्रारम्भ कर दिया जिसका फल यह निकला कि गुरुओं

> एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
> स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ इति मनु० अ० २

को शिष्य बनाकर पाश्चात्य विद्वानों ने अपने मस्तक को ऊंचा उठा लिया। इतना होने पर भी आजकल हम लोग अपने महर्षियों के इन

> विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।
> अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम्॥
> स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्।
> विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥ (इति मनु० अ० २)

श्लोकप्रतिपादित वचनों का सर्वथा अनादर करके खोये हुए अपने ही विज्ञान भास्कर के उदय के लिये इतस्ततः मनसा, वाचा, कर्मणा इन में से किसी एक भी उद्योग को नहीं कर रहे हैं। अस्तु "सब दिन रहत न एक समान, इस लोकोक्ति के अनुसार अब दैव ही गाढ निद्रा में सोये हुए हम लोगों के ऊपर से अज्ञान रूपी चादर को खींच रहा है। इससे आशा है कि वह दिन अब शीघ्र ही आयगा जब कि हमारे विशाल भारत में विज्ञान दिवाकर प्रतिदिन उदित हुआ करेगा। हमारा वैद्यक व्यवसाय सम्पूर्ण जगत् की रक्षा के लिये ही है जैसे कि कहा है—नात्मार्थं नापिकामार्थमथ भूतदयाम्प्रति।

अत एव हमें सर्व प्रथम अपने ज्ञान को सर्वसमुन्नत बनाना ही चाहिए। तथा रसचिकित्सा में कौन पदार्थ कैसा है, कहां प्राप्त होता है, किस रूप में प्राप्त होता है, आदि अनेक ज्ञान की पूर्णावश्यकता है। इस लिये इस रसग्रन्थ में प्रत्येक पदार्थ की समाप्ति के पश्चात् उसका पूर्ण परिचय कराना मेरा परम कर्तव्य है।

पारद=मर्करी। Mercury.—इस धरातल (संसार) में जितने भी खनिज द्रव्य हैं वे सब पृथ्वी के भीतर अर्थात् भूगर्भ में उत्पन्न होते हैं। उन में पारद ही एक ऐसा खनिज है जो साधारण तापक्रम (Normal Temperature) पर द्रवरुप में प्राप्त होता है। पारद का स्वरुप पिघली हुई चांदी के समान होता है इसी कारण रसकामधेनु में इसका गलद्रूप्यनिभम् (अर्थात् द्रुतचांदी के सदृश) कहा है। तथा सम्भव है कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी इसको क्विक्-सिल्वर (quick silver) इसी हेतु से कहा है। पारद का सङ्केत (सिम्बोल Symbol) Hg. है तथा इसका परमाणुभार(१) (एटोमिक वेट Atomic weight.) २०० है तथा इसको तत्व(२) (एलीमेण्ट Element) माना है। इसका आपेक्षिक घनत्व(३) (Relative Density)१३०६९ है।

यह ३९° से० पर जमता है अर्थात् इसका हिमाङ्क(४) Freezing Point ३९° से० है तथा ३५९° से० पर उबलता है अर्थात् इसका क्वथनाङ्क(५) (Boiling Point) ३५९° से० है।

पारद की उपस्थिति—

पारद कभी कभी मुक्तावस्था में या स्वतन्त्र रुप से प्रकृति में अत्यल्प मात्रा में

---

(१) किसी तत्व के परमाणुभार को एकाङ्क (unit) मान कर उसकी तुलना से दूसरे तत्वों के परमाणुभार के जो अङ्क प्राप्त होते हैं उन्हें 'परमाणुभार' (Atomic weight) कहते हैं। प्रा० र०

(२) जिन्हें रासायनिक दृष्टि से दो वा दो से अधिक पदार्थों में विच्छिन्न (पृथक्) नहीं कर सकते हैं ऐसे पदार्थों को 'तत्व' (Elements) कहते हैं। प्रा० र०

(३) जब एक पदार्थ के घनत्व की किसी दूसरे पदार्थ के घनत्व से तुलना की जाती है तब इसे आपेक्षिकघनत्व (Relative Density) कहते हैं तथा किसी पदार्थ के इकाई आयतन (Unit Volume) में कितनी मात्रा (Mass) विद्यमान है इसी को घनत्व (Density) कहते हैं। प्रा० र०

(४) जिस तापक्रम पर द्रव पदार्थ घन बनते हैं उसे 'हिमाङ्क' (Freezing Point) कहते हैं।

(५) जिस तापक्रम पर द्रव उबलने लगता है वह तापक्रम उस द्रव का 'क्वथनाङ्क' (Boiling Point) कहाता है। प्रा० र०

पाया जाता है। यह प्राचीन काल से हिङ्गुल (सिनबार Hgs) ही से अधिकतर निकाला जाता है। इसके अन्य रस ग्रन्थों में तथा इसी ग्रन्थ (रसरत्नसमुच्चय) में अनेक प्रमाण हैं यथा—

दरदं (हिङ्गुलं) पातने यन्त्रे पातयेत् सलिलाशये ।
सत्वं सूतकसङ्काशं जायते नात्र संशयः ॥ (रसार्णव)
तं सूतं योजयेद्योगे सप्तकञ्चुकवर्जितम् ।
ज्वरादिहरणे सर्वरसेषु विनियोजयेत् ॥ (रसदर्पण)
पतितो दरदे देशे गौरवाद्वह्निवक्त्रतः ।
स रसो भूतले लीनस्तत्तद्देशनिवासिनः ।
तां मृदं पातनायन्त्रे क्षिप्त्वा सूतं हरन्ति च ॥ (रसरत्नसमुच्चय)
ऊर्ध्वपातनयन्त्रेण हिङ्गुलादुत्थितो रसः ।
हिङ्गुलोत्थः स्मृतश्चैव हिङ्गुलाकृष्ट उच्यते ॥ (र० त०)
अथवा हिङ्गुलात् सूतं ग्राहयेत् तन्निगद्यते ।
जम्बीरनिम्बुनीरेण मर्दितो हिङ्गुलो दिनम् ॥
ऊर्ध्वपातनयन्त्रेण ग्राह्यः स्यान्निर्मलो रसः ।
कञ्चुकै र्नागवङ्गाद्यै निर्मुक्तो रसकर्म्मणि
विना कर्माष्टकेनैव सूतोऽयं सर्वकर्मकृत ॥ (र० सा० सं०)

इन सब अवतरणों को पढ़ने से यह सिद्ध होता है कि पुराण काल ही से हिङ्गुल से विशेष रूप से पारद निकाला जाता है।

भारत से इतर देशों मे भी हिङ्गुल ही से पारद निकाला जाता है। थियोफ्रास्टस (Theo Phrastus) नाम के विद्वान ने ईसा के पूर्व की ३०० शताब्दि के लगभग लिखा है कि ताम्रचूर्ण और हिङ्गुल को सिरके के साथ पीस कर उसे उड़ाकर पारद पृथक् करते थे। इसी प्रकार डायस्कोरीडीज (Dioscorides) नामक विद्वान् ने भी लौह चूर्ण के साथ हिङ्गुल मिलाकर उड़ाके पारद निकाला था। यही विधि ऊंचे दर्जे के हिङ्गुल से पारद निकालने के लिये कहीं २ अब तक भी काम में लाई जाती है।

सोना चांदी बनाने वाले कीमियागर लोगों ने पारद पर अनेक प्रकार के परीक्षण किये तथा उन्हीं के अनुभव से पारद-मिश्रक (Amalgams) का ज्ञान व्यवहार में सर्व प्रथम प्रचलित हुआ। इसके पूर्व कालमें कुछ लोगोंकी धारण थी कि लोहे अथवा पारद जैसी तीन धातुएं स्वर्ण या चांदी के रूप में परिणत हो सकती है। लोग ऐसा समझते थे की पारस मणि की सहायता से यह कार्य हो सकता है।

"पारस परसि कुधातु सुहाई"

इसलिये इस पारस मणि के अन्वेषण करने के लिये कितने ही पुरुषों ने अपना समग्र जीवन दे दिया किन्तु वे उसको प्राप्त नहीं कर सके। धीरे धीरे इस निरर्थक खोज की ओर से लोगों ने मन का हटाकर ऐसी क्रियाओं के अन्वेषण में लगे जो लोहे वा पारे को चांदी या स्वर्ण में परिणत कर दे। कुछ लोग यह समझते थे कि मिश्र देश वालों को इस क्रिया का ज्ञान था जिससे वे हीन धातुओं को स्वर्ण सदृश सुन्दर धातुओं में परिणत कर देते थे। पाश्चात्य देशों में सबसे प्रथम सन् १५६६ ई० में पेरू (Peru) देश के हुवान्कावेलिका (Huancavelica) नामक स्थान में हिङ्गुल का अस्तित्व विदित हुआ और सन् १६३३ ई० में लोपेज़—सावेद्रा-वार्बा Lopez Saavedra Barba नामक व्यक्ति ने पारद निकालने के लिये अल्युडेल (Aludel गडकलों वाली) नामक भट्टी तैयार की। इसी भट्टी को १६४६ ई० में बुस्टामेण्ट (Bustamente) नाम के किसी रसायन शास्त्रवेत्ता ने स्पेन (Spain) देशीय पारदीयखनिज प्राप्ति के प्रसिद्ध अल्माडन (Almaden) स्थान की खानों में प्रचलित की पारद निकालने के लिये यह भट्टी दो शताब्दियों से भी अधिक समय तक उक्त दोनों देशों में प्रयुक्त होती रही। किन्तु अब नवीन उत्तम भट्टियों के बन जाने से इसका व्यवहार बन्द हो गया है।

खनिज से पारद निकालने की विधि अत्यन्त सरल है। खनिज को खुले स्थन में फूंकते हैं जिससे हिङ्गुल का गन्धक सल्फर डाइआक्साइड (Sulphur Dioxide) में बदल जात है और पारद मुक्त हो जाता है। कभी २ हिङ्गुल को चूने के साथ मिलाकर बन्द रिटोर्ट में स्रवित करते हैं जिससे केलसियम सल्फाइड और सल्फेड बनता है तथा पारद मुक्त हो जाता है। विधिपूर्वक निकाले हुए पारद के अन्दर बहुत सी अशुद्धियां रह जाती हैं। तथा इस पारद के साथ बहुत से यन्त्रवाहित (Mechanically carried) अपद्रव्य मिले रहते हैं। इन में से कुछ तो केमोयास चमड़े के द्वारा छानने से दूर हो जाते हैं और कुछ यशद (zinc) वङ्ग (tin) सीस (Lead) सदृश पदार्थ मिले रहते हैं जो कि पारद का ऊर्द्ध्वादिक पातन करने से दूर हो जाते हैं। अशुद्ध पारद को तनु नाइट्रिक अम्ल (Dilut Nitric Acid) में घुलाने से अन्य धातुएं उसमें घुल जाती हैं तथा शुद्ध पारद को निकाल कर जलसे धो के कपडे से छान लेना चाहिए।

पारद की सर्व प्रथम प्राप्ति—

भूगर्भविज्ञों के मतानुसार संसार में पारद आर्कियन से क्राटनंरी आयु प्रदर्शित करने वाले शिलाव्यूहों में पाया गया है। यह आयु एक करोड़ पचहत्तर लाख वर्ष के लगभग मानी जाती है तथा पारद अनेक प्रकार के रङ्गरूप वाले विभिन्न जातीय जलज और आग्नेय पाषाणखण्डों में व्याप्त मिलता है। उदाहरण के लिये रेणु-

शिला (Sand stone), मृत्तिकापाषाण (Shales), सुधापाषाण (lime stone,) स्फटिकशिला (quartzite) आदि जलज और ज्वालामुखी की लावा आदि आग्नेय पाषाणों के नाम लिखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त उक्त उभय गुणधर्मरहित रूपान्तरितपाषाणखण्डों (Schists) में भो यह पाया जाता है, किन्तु अधिकतर आग्नेय पाषाणखण्डों के ही समीप मिलता है।

पारदीय खनिजों के जमाव को देखने से यह भी विदित होता है कि भूगर्भ में जब आग्नेय पाषाण क्रमशः शीतल होते हुए अपनी द्रवावस्था से घनावस्था में परिणत होने लगे उस समय उड़नशील खनिज जो कि उनके भीतरी भाग में विद्यमान थे वे वाष्परूप में उड़कर ऊपर के समीपवर्ती पाषाण खण्डों की दरारों में जमा हो गये। उनमें पारदीय खनिज भी अन्यतम है। सम्भवतः इसी कारण उष्ण जल के स्रोतों के समीप में पारद आजकल भी पाया जाता है।

अमेरिका के प्रसिद्धभूगर्भविज्ञ रेन्सम (Ransome) और स्पर (Spurr) नाम के विद्वानों का विचार है कि पारद सदा ज्वालामुखी आग्नेय पाषाणों के सिलसिले में ही पाया जाता है, क्योंकि इस का अस्तित्व अधिकांश में अर्वाचीन ज्वालामुखी पाषाणों में ही पाया गया है। किन्तु इस सिद्धान्त को स्थिर करने में अपवाद यह है कि स्पेन देश की बड़ी खानें जो अल्माडन नामक स्थान में विद्यमान हैं वे भूगर्भकाल के निर्णयानुसार अत्यन्त प्राचीन हैं और उनमें पारद १३०० फीट की गहराई पर पाया जाता है। इसी प्रकार अमेरिका प्रदेश की केलिफोर्निया (California), न्यू इड्रिआ (New Idria) और न्यू अल्माडन (New Almaden) की खानें हैं जिनका सम्बन्ध ज्वालामुखी के उद्गम से नहीं है। इन खानों में २२०० फीट की गहराई पर पारद मिलता है।

इस प्रकार अनेक मतभेद रहते हुए भी इस बात पर सब भूगर्भ विज्ञों का एकमत है कि पारद भूगर्भ के अन्तराल से उष्ण जल के साथ ही बाहर पृथ्वी पर प्रगट हुआ है और इसीलिये यह अपने खनिजों के साथ भूभाग के ऊपरी तल में ही अधिकतर जमा हुआ मिलता है। जिस उष्ण जल के साथ पारद निकलता है वह जल चाहे वर्षा द्वारा पृथ्वी के अन्तराल के उष्णभाग में जाकर पुनः उष्णस्रोत के रूप में बाहर निकला हो, चाहे पातालिक आग्नेय पाषाणों से निकलकर बाहर आया हो किन्तु यह अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि पारद उष्ण जल के साथ ही क्षारीय घोलों में घुला हुआ पृथ्वी की ऊपरी दरारों में या खुले भूभाग में आकर प्राकृतिक पारद और पारदीय खनिज हिङ्गुल आदि के रूप में जमा हुआ है।

इसी (रसरत्नसमुच्चय) ग्रन्थ में पारद के उत्पत्ति के विषय में निम्न विचार प्रगट किये गये हैं।

शैलेऽस्मिञ्छिवयोः प्रीत्या परस्परजिगीषया।
सम्प्रवृत्ते च सम्भोगे त्रिलोकक्षोभकारिणि॥
विनिवारयितुं वह्निः सम्भोगं प्रेषितः सुरैः।
कपोतरूपिणं प्राप्तं हिमवत्कन्दरेऽनलम्॥
अपक्षिभावसंक्षुब्धं स्मरलीलाविलोकिनम्।
तं दृष्ट्वा लज्जितः शम्भुर्विरतः सुरतात्तदा॥
प्रच्युतश्चरमो धातुर्गृहीतः शूलपाणिना।
प्रक्षिप्तो वदने वह्नेर्गङ्गायामपि सोऽपतत्॥
वह्निः क्षिप्तस्तया सोऽपि परिदंदह्यमानया।
सञ्जातास्तन्मलाधानाद्धातवः सिद्धिदायकाः॥
यावदग्निमुखाद्रेतो न्यपतद्भुवि सर्वतः।
शतयोजननिम्नास्ते जाताः कूपास्तु पञ्च च।
तदाप्रभृति कूपस्थं तद्रेतः पञ्चधाऽभवत्॥

(रसरत्नसमुच्चय पूर्वखण्ड प्र० अध्याय)

इन पारदोत्पत्ति विषयक श्लोकों की प्राचीनानुमत शब्दानुकूल व्याख्या (स्पष्ट भावार्थ) मैंने प्रकरण में लिख दी है। किन्तु प्राचीनपारदोत्पत्ति की तुलना यदि आधुनिक विज्ञान के अनुसार करनी हो ता निम्न रूप से करनी चाहिए।

इस अवतरण का तात्विक भावार्थ यह विदित होता है कि हिमालय में जब जड़ और चैतन्य शक्ति के अन्दर संघर्षण होता है तब पृथ्वी के अन्तराल में आग्नेय पदार्थ ज्वालामुखी के रुपमें प्रगट होने लगते हैं। उस समय त्रैलोक्य में क्षोभ उत्पन्न करने वाला भूकम्प पैदा होता है। संसार के हिम प्रदेशों में ही प्रायः ज्वालामुखी प्रगट होते हैं। अर्थात् "शैलेऽस्मिन्" आदि प्रथम श्लोक में इसी अभिप्राय का रूपक है। जहां भूकम्प के उपरान्त ज्वालामुखी का उद्गम होता है वहां पर पृथ्वी शतधा विदीर्ण हो जाती है जिसमें से प्रथम धूम्र वर्ण की गैस निकलती है। यह वृत्तान्त प्रायः (कपोतरूपिणं प्राप्तं हिमवत् कन्दरे स्थितम्) इस रूपकालङ्कार से दिखाया है। धुएं के निकलने के पश्चात् अग्नि की ज्वाला निकलने लगती है यह (अपक्षिभावसंक्षुब्धम्) आदि दूसरे श्लोक का तात्पर्य हो सकता है। जब ज्वालामुखी का उद्गम हो जाता है तब भूकम्प होना बन्द हा जाता है इस प्रकार का अभिप्राय "तं दृष्ट्वा लज्जितः शम्भु विरतः सुरतात्तदा" इस पद्य के साथ मिल सकता है।

जब ज्वाला मुखी के आग्नेय पाषाण क्रमशः शीतल होने लगते हैं तब उसके अन्तराल के उड़नशील खनिज उष्ण जल के साथ मिल कर वाष्परूप में ऊपर आकर शीत होने पर जम जाते हैं। इसी बात के द्योतक अन्य दो श्लोक हैं। जो

खनिज इस प्रकार निकल कर जमा होते हैं उनके जमने का क्रम डा०सी० जी केलिस प्रोफेसर इम्पिरियल कालेज लण्डन के मतानुसार यह है—सब के नोचे पातालिक आग्नेय पाषाण ग्रेनाइट (Granite) और उसके ऊपरो भाग में एक ओर जलज, पारद, तुरमलीन, पुखराज, वंग और टगस्टन रहते हैं तथा दूसरी ओर भारी धातु जैसे ताम्र, नाग, यशद, सुवर्ण, रजत, और रौप्यमाक्षिक आदि रहते हैं। इसका नक़शा वे इस प्रकार बनाते हैं।

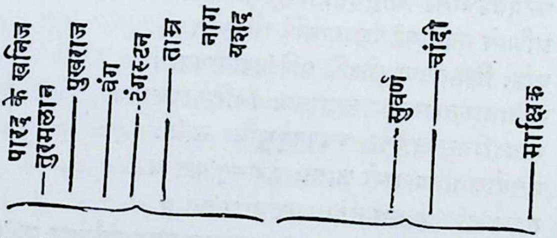

जो लोग ऐसी खानों को खनते हैं वे प्रायः एक के बाद दूसरे खनिज को निकाल कर लाभ उठाते हैं; सम्भवतः इसी का मूल ग्रन्थ के पाठ में (सञ्जातास्तन्मलाधाना-द्धातवः सिद्धिदायकाः) इस प्रकारका वर्णन है। यह भी निश्चित है कि जहां पर पारद की खाने हैं वहां पर किसी किसी स्थान पर नल के आकार के कूप भी मितते हैं। यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका में भी पारद के खनिजों में जलाकार कूप मिलते हैं जिनकी समानता "शतयोजननिम्नास्ते (विस्तीर्णाः) जाता कूपास्तु पञ्च च" इस प्राचीनोक्ति में अक्षरशः सत्य मिलती जुलती है। उन देशों में पारद के कूप २४५० फीट तक गहरे हैं। नीचे के अङ्ग्रेजो अवतरण से ज्ञात होता है कि भूगर्भ के अन्दर सौ मील की खुदाई पारद निकालने की हुई है। प्राचीन पारदोत्पत्ति के अन्दर पांच कूपों का उल्लेख है परन्तु वहां पर इस समय अठारह कूप (Shafts) हैं जिनसे पारद निकाला जाता है। यह सम्भव है कि उस समय में पाञ्च कूपों का ही पता लगा हो।

ITALY

"In the Montebuono mine, according to R. Rosenlecher Miocene sands overlie and conceal Nummulitic Limestone. At a depth of 100 ft. a great vertical crevice about 6 ft. wide was struck, filled with Miocene sands and clays, impregnated with cinnabar in an extremely fine state of division. In the immediately neighbouring

rock are several funnel-shaped cavities, also filled with metallife-rous sands and clays, the proportion of cinnabar increasing with the depth. These funnel-shaped cavities appear to bear some analogy to the vertical pipes or holes (Trajas) in gypsum at the mercury mines of Huitzuco Guerrero, Mexico. Broadly speaking, the whole deposit forms a large funnel, position of which is marked on the surface by distinct depression."

UNITED STATES.

"Santa Clara County—The new Almaden group of mines was discovered in Santa Clara County by two Mexicans in 1824, but the ore was not recognized as cinnabar until 1845. The large output of mercury from the mine has already been mentioned. *Altogether 18 shafts have been sunk*, and there are nearly 100 *miles of underground workings*, a large proportion of which have of course, caved in. The greatest depth in 1917 was 2,450 ft. below the top of mine Hill (1. 600 ft. altitude) so it is the deepest and most extensive mercury mine in the world."

Monographs on Mineral Resources, Imperial Institute London Mercury Ores. By Edward Halse A. R. S. M. page 45 & 75.

इन अवतरणों का प्राचीन मत के साथ मिलान करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीनों का ज्ञान भी ठीक आज कल के ज्ञान के अनुसार पूर्ण वैज्ञानिक ढङ्ग ही का था। किन्तु वह अलङ्कारिक तथा तान्त्रिक भाषा में होने के कारण विना प्रत्यक्ष किये ठीक समझ में नहीं आ सकता है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि वैद्यवर्ग इस पारद के वैज्ञानिक वर्णन को पढ़ कर इस

"एतां रससमुत्पत्तिं यो जानाति स धार्मिकः"

आचार्योक्ति का अवश्य ही पालन करेंगे।

अब नीचे जिन जिन खनिजों से पारद निकाला जाता है उन उन खनिजों का परि-गणन किया जाता है।

पारद निकालने योग्य खनिज।

(१) हिङ्गुल, हंसपाद (सिनावार Cinnabar Hgs) इसके भेद उत्पत्ति तथा निर्माण और प्राप्ति का विस्तृत वर्णन आगे यथा प्रसङ्ग किया जायगा।

(२) चर्मारः Metacinnabar (Hgs)

यह कृष्णवर्ण का खनिज है। इसका रासायनिक सङ्गठन रक्त हिङ्गुल (जपाकुसुमसङ्काश=Bright Red Sulphide) का ही सा है। यह मृत्तिका रूप में और रवों के रूप में पाया जाता है। यह मृत्तिका रूप म अधिक पाया जाता है। रवों के रूप में इसकी कठोरता ३ है तथा विशिष्ट गुरुत्व (Specific gravity. ७०८१ होता है। इसको चीनी मिट्टी की कसौटी पर रगड़ने से काली लकीर खिचती है। देखने में यह धातु की सी द्युतिवाला होता है। मृत्तिकाकृति में विशिष्ट गुरुत्व कुछ कम होता है इसी को रस कामधेनु नामक रसग्रन्थ में "चर्मारः कृष्णरूपः स्यात्" इस रूप में वर्णित किया गया है।

३ हीरकद्युति=केलोमल (Calomel Hg 2 Cl 2)

यह हीरे के समान द्युति (कान्ति) वाला ('हीरकद्युति सङ्काशम्, रस कामधेनु) रवेदार पारद का खनिज है। इसे मरक्युरस क्लोराइड या केलोमल कहते हैं।

प्राप्ति—यहप्राकृतिक दशा में स्पेन देश के इड्रिया (Idria) अल्माडन (Almaden) नामक स्थान में स्वल्प मात्रा में पाया जाता है। यह रवों (कण Crystals) के रूप में ही प्रायः मिलता है। इसके रवे बहुत ही जटिल सङ्गठन के होते हैं। इसका रङ्ग श्वेत या पाण्डु होता है। चीनी मिट्टी की कसौटी पर रगड़ने से अल्पपीताभ-श्वेत लकीर खिचती है। इसके रवे की चमक हीरे की सी होती है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ६०५ होता है। भारतीय रसशास्त्रियों को इस पारदीय खनिज का पूर्ण ज्ञान था। रस कामधेनु ग्रन्थ में इसका जो वर्णन लिखा है वह बहुत ही सुन्दर तथा यथार्थ है। उसमें संक्षेप से इसके विषय की प्रायः सभी बातें आगई हैं।

"हीरकद्युतिसङ्काशं प्रमाणाद्धीरकात् क्वचित्" (रसकामधेनु पृ० ९७३)

इस खनिज का निम्न अङ्ग्रेजी वर्णन प्राचीन मत के साथ बहुत कुछ मिलता जुलता है।

Calomel (Hg 2 Cl 2)

This is Mercurous chloride and is found at Idria and at Almaden as one of the minor mercury minerals. It occurs in crystal so often highly complex of the tetragonal system.

Lustre adamantine (हीरकद्युतिसङ्काशम्) Fracture conchoidal (प्रमाणाद्धीरकात्क्वचित्) Colour white, or yellowish grey: Streak Pale, yellowish-White, hardness 1 to 2 specific gravity 6·5Loc. Cit. Page.

इस अवतरण के शब्द जब रस कामधेनु के अवतरण के साथ मिलाये जाते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन रस शास्त्रियों ने भली प्रकार खान पर बठ कर नमुना

सामने रखकर खोज के साथ सारा वृत्त गागर में सागर की तरह भर दिया है। क्वचित् शब्द का प्रयोग अल्पमात्रा में मिलने के लिये और हीरकद्युति लस्टर एण्ड मॅन्टाइन तथा प्रमाणाद्धीरकात् यह वाक्य फ्रेक्चर कोन्कोइडल के लिये ऐसा जंचता है कि मानो पर्य्याय शब्द लिख दिये हैं। ऐसा वर्णन पढ़कर किस वैद्य को अभिमान न होगा कि हमारा शास्त्र वैसा ही वैज्ञानिक है जैसा आजकल के नवशिक्षित लोग वैज्ञानिक होने का दावा करते हैं। इस खनिज के कम मिलने से और इसकी उपयोगिता औषधि रूपमें अधिक देखकर सर्व प्रथम भारतीय रस शास्त्रियों ने रस कर्पूर के नाम से इसका रासायनिक विधि से निर्माण कर लिया। इसके बड़े कारखाने आज भी सूरत (गुजरात) में विद्यमान हैं। जहां पर प्रति वर्ष दो ढ़ाई सौ मन माल तैयार होकर सारे देश में विक्रयार्थ जाता है। इसका भाव १२) से २४) प्रति सेर के लग भग रहता है। इसका भाव सदा पारद के भाव पर निर्भर रहता है। मद्रास, और हैदराबाद दक्षिण में भी इसके बनाने के कारखाने हैं। वहां प्रायः सभी लोग शीत के दिनों में इसका सेवन करते हैं। ये लोग सूरत का बना हुआ रस कपूर लेकर फिर से आतिशी शीशी में भर कर बालुकायन्त्र से अग्नि देकर उसे उड़ाकर पपड़ी की शकल में तैय्यार करते हैं और उसे शुद्ध समझते हैं। इन कारखानों में रस कपूर और हिङ्गुल बनाने वाले खास खास आदमी रहते हैं। उनका यह खानदानी रोजगार समझा जाता है। वे लोग बारी बारी से इसे बनाकर वेचते हैं। एक एक भट्ठी में दो दो ढाई ढाई मन का घान उतारते हैं। ये घान पिंडाकार बारीक चमकीले रवों के सम्मिलित कणों का समुदाय होता है। हाथ सें दबाने पर इनका चूर्ण बारीक बारीक कणों में विभक्त हो जाता है।

रस कर्पूर की प्राचीन निर्माण विधि।

शुद्धसूतसमं कुर्यात् प्रत्येकं गैरिकं सुधिः।
इष्टिकां खटिकां तद्वत्स्फटिकां सिन्धुजन्म च॥
वल्मीकं क्षारलवणं भाण्डरञ्जकमृत्तिकाम्।
सर्वाण्येतानि सञ्चूर्ण्य वाससा चापि शोधयेत्॥
एभिश्चूर्णैर्युतं सूतं यावद्यामं विमर्दयेत्।
तच्चूर्णसहितं सूतं स्थालीमध्ये परिक्षिपेत्॥
तस्याः स्थाल्या मुखे स्थालीमपरां धारयेत्समाम्।
सद्दस्तकुट्टितमृदा मुद्रयेदनयोर्मुखम्॥
संशोष्य मुद्रयेत् भूयो भूयः संशोष्य मुद्रयेत्।
सम्यक् विशोष्य मुद्रां तां स्थालीं चुल्यां विधारयेत्॥
अग्निं निरन्तरं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम्।
अङ्गारोपरि तद्यन्त्रं रक्षेद्यत्नादहर्निशम्॥

शनैरुद्घाटयेद्यन्त्रमूर्द्ध्वस्थालीगतं रसम् ।
कर्पूरवत्सुविमलं गृह्णीयाद् गुणवत्तरम् ॥ (इति भावप्रकाश)

भावार्थ—शुद्ध पारद' गैरिक, ईंट का चूर्ण, खरिया मिट्टी, फिटकरी, सेंधा नमक, हिरमिजी (एक प्रकार की लाल मिट्टी जो मिट्टी के बर्तन रँगने में व्यवहृत होती है सब द्रव्य समान लेकर पारद के अतिरिक्त अन्य सब द्रव्यों का पीस कर कपड़छान करके पारद के साथ मिलाकर एक प्रहर (३ घन्टे) तक घोटें । तथा घोटे हुए द्रव्यों को एक मजबूत हाण्डी में रखें और उस पर ठीक जमने वाली दूसरी हाण्डी मुंह की ओर से ढक दें । बाद में कपड़ा और मिट्टी कूटकर मिलाकर जल में घोल के उससे उक्त दोनों हंडियों के मुख बन्द करके बाद में सुखावें । सूखने पर फिर कपरौटी कर दें । सन्धि इस प्रकार बन्द करें कि जिससे पारद बाष्पी भवन के समय निकल न सके । सन्धि लेप के भली प्रकार सूखने पर निरन्तर चार दिन तथा चार रात तक बबूल की लकड़ी की आंच दें । स्वाङ्ग शीतल होने पर सावधानी से सन्धि खोलकर ऊपर की हंडी में कर्पूर के जैसे लगे हुए द्रव्य को धीरे से निकाल लें । यह फिरङ्ग (सिफलिस) उपदंश आदि के लिये उत्तम योग है ।

रस कर्पूर की नव्य निर्माणविधि—

आधुनिक विधि में केवल पारद और खाने का साधारण नमक यथावश्यक मात्रा में लेकर और उड़ाकर रसकर्पूर बनाते हैं । आंच देने की प्राचीन विधि ही कुछ परिवर्तन के साथ व्यवहृत की जाती है । इसमें पारद १०० भाग के साथ नमक की गेस क्लोरिन १८ भाग मिली रहती है । इसको पाश्चात्य चिकित्सक औषधि में केलोमल के नाम से व्यवहार करते हैं इसे सब—क्लोराइड आफ मर्करी भी कहते हैं । इसका प्राचीन नाम रसकर्पूर था किन्तु आज कल 'पर—क्लोराइड् आफ़ मर्करी के लिये यह नाम व्यवहृत होता है, जिसमें पारद के साथ क्लोरिन की मात्रा ३५॥ होती है और इसका व्यवहार भी उपदंश, फिरङ्ग आदि में बहुतायत से होता है । यह बहुत उपयोगी औषध है । मेरे विचार में दोनों की निर्माणविधि साधारण दृष्टि से समान होने के कारण रसकर्पूर संज्ञा दोनों में व्यवहृत होती है; किन्तु यह भूल है । दोनों रासायनिक दृष्टि से भिन्न भिन्न गुण धर्म वाले द्रव्य हैं और एक दूसरे के स्थान पर कभी किसी का व्यवहार नहीं करना चाहिये । इनका नाम भी स्पष्ट रीति से अलग अलग कर देने आवश्यक हैं । आधुनिक रसकर्पूर 'पर क्लोराइट आफ़ मर्करी' या, कोरोसिव सब्लीमेण्ट, के लिये रसकर्पूर और केलोमल (सब क्लोराइड् आफ़मर्करी) के लिये सुधानिधिरस या रसपुष्प नाम व्यवहार में लाने चाहिये, जिससे दोनों द्रव्यों का भ्रम दूर हो जावे और औषधि के व्यवहार में हानि न उठानी पड़े । इन नामों का उपयोग "रसतरङ्गिणी" कार ने किया है ।

रसपुष्पं रसकुसुमं कुसुमं रसपूर्वकम् ।
मतं निरूच्यते कैश्चित्सुधानिधिरसाख्यया ॥

विशेष के लिये पृष्ठ नं ३९ से ४८ तक रसतरङ्गिणी पढें ।

(४) पारद का चौथा खनिज प्राकृतिक पारद (Native Mercury.) है ।

यह बहुत अल्पमात्रा में प्राप्त होता है । कभी कभी इसके कण खनिज हिङ्गुल के साथ बिखरे हुए पाये जाते हैं । यह पारद प्राप्ति का गौण खनिज समझा जाता है तथा इटली और स्पेन की खानों में यह मिलता है ।

(५) पारद रजत मिश्रक (Silver Amalgam.)

यह पारद का खनिज प्रकृति में पारद और रजत के भिन्न भिन्न परिणाम में बना पाया जाता है । यह अधिकतर चीली (Chile) देश की खानों में पाया जाता है । इन खानों के अतिरिक्त जर्मनी स्पेन और यूनाईटेड स्टेट्स की खानों में भी पाया जाता है । यह पर्पटी जैसा है ।

(६) टेट्राहीड्राइट या मर्क्युरियल फेहलोर (Tetrahedrite or Mercurial Fahlore.)

इस खनिज में से भी व्यापार के योग्य पारद निकल सकता है किन्तु यह वास्तव में ताम्र का ही खनिज है और बहुत अल्प मात्रा में पाया जाता है । जर्मनी के बोसनिया (Bosnia) और पेलेटिनेट (Palatinate) नामक स्थानों में ही विशेषतः मिलता है ।

परीक्षा

ऊपर लिखे हुए किसी भी खनिज को पारद के लिये परीक्षा कर सकते हैं । एक काच की परीक्षा नलिका (Tastube) में उक्त पारदीय खनिजों में से कोई भी (जिसकी परीक्षा करनी हो) पारद खनिज का चूर्ण तथा चूना या खाने का सोडा भर कर स्पिरिट लेम्प पर तपाने से नलिका के शीतल प्रदेश में पारद के कण जमे हुए नज़र आवेंगे । यदि पारद का खनिज पारद और गन्धक का यौगिक (हिङ्गुल) हुवा तो नलिका के शीतल प्रदेश में लाल हिङ्गुल और पारद दोनों दिखाई देंगे तथा जलते हुए गन्धक की तीव्र गन्ध भी प्रतीत होगी ।

पारद प्राप्ति के कुछ गौण खनिज

उक्त खनिजों के अतिरिक्त अल्पमात्रा में प्राप्त होने वाले कुछ पारदीय खनिज ऐसे भी हैं जो किसी स्थान विशेष में ही प्राप्त होते हैं और उन से भी पारद निकाला जा सकता है ।

उनके निम्न नाम हैं ।

(१) लिविङ्गस्टोनाइट (Livingstonite $2 Sb_2 S_3 \; Hg S$)

यह हिङ्गुल और एण्टोमनी का फोलाद सा कृष्ण-वर्ण यौगिक है इसमें धातुकी सी द्युति होती है। घिसने पर लाल लकीर खिचती है। यह रवेदार वल्मीक शिखराकार पिंड सा होता है। ।कठोरता २, विशिष्ट गुरुत्व ५. ८१ होता है। मेक्सिको देश का पारद निकालने का यह मुख्य खनिज है। वहां पर चिरकाल तक इसकी खान का कार्य होता रहा है।

यह गन्धक और गोदन्ती के साथ भी पाया जाता है। इसका वर्णन रसरत्नसमुच्चय, में लिखे "स्रोतोञ्जन" के साथ बहुत मिलता है—

यथा—वल्मीकशिखराकारं भङ्गे नीलोत्पलद्युति।
घृष्टं तु गैरिकच्छायं स्रोतोजं लक्षयेद् ध्रुवम्॥ (र० र० स० प्र० अ०)

अर्थात् दीमक की बामी जैसा शिखराकार (कोलुमनरमेस्सिव फार्म columnar Massive Form.) तथा तोड़ने पर नील कमल के समान वर्ण का दिखाई दे तथा कसौटी पर घिसने से गैरिक की सी लाल लकीर पड़े वह अवश्य स्रोतोञ्जन है। साफ फौलाद का रङ्ग नील कमल के पत्ते के वर्ण के समान होता है। इस यौगिक में सुरमा है इस लिये इसको स्रोतोञ्जन मानना ठीक है।

(२) बारनाइट (Barcenite)

यह बहुत जटिल मात्रा में पाया जाने वाला खनिज है। इसका प्रादुर्भाव उपर्युक्त लिबिंगस्टोनाइट से ही होता है। केवल मेक्सिको देश के हिजुको (Huitzuco) नामक स्थान पर ही प्राप्त होता है। सन् १८७८ ई० में जे० डबल्यु० मेलेट (J. W. Mallet) ने मेरियानो बार्सीना (Meriano Baercena) के नाम पर ही इस खनिज का नामकरण किया है। मेक्सिकल भूगर्भ—विज्ञों का मत है कि यह खनिज हिंगुल और एन्टिमनिऑक्साइड (Antimony oxide $Sb_2 °_3$) का यौगिक है। यह मृत्तिका के ढेले के आकार का कृष्ण वर्ण होता है। कसौटी पर घिसने से राख (Ash grey) और कुछ हरापन लिये हुए रंग की लकीर खिचती है। कठोरत ६. ९, विशिष्ट गुरुत्व ९. ३४३.

(३) ग्वाडालकाज़ाराइट (Guadal cazarite)

यह खनिज प्रायः कृष्ण हिंगुल की ही जाति का है। इस में थोड़ा सा यशद (२ से ४%) और अत्यल्प मात्रा में सेलेनियम् (Selenium १%) मिला रहता है। (यह धातु गन्धक का सा होता है और आज कल वायरलेस टेलिग्राफी में फोटो भेजने के कार्य में उपयोगी है) इसके सहयोगी खनिज रक्त हिंगुल, बेराइटस (Barytes) और स्फटिक (quartz) हैं। यह मेक्सिको प्रान्त के ग्वाडलकाजार (Guadalcazar) स्थान में प्राप्त होने के कारण इस का नाम ग्राम नाम पर ही अन्य खनिजों से पृथक् समझने के लिये रख दिया गया है।

अब पारद के वे खनिज लिखे जाते हैं जो अत्यल्प मात्रा में पाये जाते हैं किन्तु ब्रिवस्टर कौन्टी (Brewster county), टेक्सास (Texas) में इतनी मात्रा में मिलते हैं कि जिनसे खान का व्यवसाय किया जा सकता है—

(१) टॅर्लिङ्ग्वाइट (Terlinguaite Hg 2 clo)

यह खनिज पारद, क्लोरिन और ओक्सिजन का यौगिक (Oxychloride of Mercury) है। यह गन्धक के से पीले रवों में पाया जाता है । वायु में रखने से इसका रङ्ग पीले से गहरा जैतून जैसा हरा (Olive Green) हो जाता है । इसकी कठोरता २ से ३ तक तथा विशिष्ट गुरुत्व ८·७२५. है ।

(२) इगलेस्टोनाइट (Eglestonite Hg 4 Cl 2 0)

यह छोटे २ भूरे पीले रङ्ग के रवों में पाया जाता है। इसके कणों में रोजन (सूखा गन्धा विरोजा) की सी द्युति नजर आती है। यह धूप में रखने से शीघ्र काला पड़ जाता है। इसकी कठोरता २ से ३ तक तथा विशिष्ट गुरुत्व ८·३२७. ।

(३) क्लेनाइट (Kleinite Mercury Ammoniumchloride.)

यह पारद और नौसादर का प्राकृतिक यौगिक है। इसके रवे गन्धक जैसे पीले होते हैं और उनमें विकृत स्थानों पर नारंगी के वर्ण के दाग होते हैं। इसकी कठोरता ३ से ४ तक तथा विशिष्ट गुरुत्व ७·९८. है। यह भी टॅर्लिङ्ग्वाइट के साथ ही पाया जाता है।

(४) मोजेसाइट (Mosesite)

यह खनिज भी प्राकृतिक पारद और नौसादर का यौगिक है। एवं टॅर्लिङ्ग्वाइट के साथ ही पाया जाता है।

(५) मान्ट्रोयडाइट (Montroydite)

यह नारङ्गी के से लाल रवों में पाया जाता है जिनमें कांच की सी चमक रहती है। इसकी कठोरता २ से भी कम है। यह खनिज उपर्युक्त चारों खनिजों के साथ पाया जाता है। उक्त पांचों खनिज रस शास्त्रोक्त "सुपीतः शुकतुण्डकः" इस जाति के पारदीय खनिजों के साथ समता रखते हैं। ये गन्धक से पीले और नारंगी से लाल वर्ण के होते हैं। सभी ये खनिज पारद प्राप्ति के साधन हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी पारदीय खनिज हैं जो बहुत ही अत्यल्पाल्प मात्रा में पाये जाते हैं। उनके नाम ये हैं-

(१) टिमेनाइट (Tiemanite Hg Se.)

यह सिलेनियं और पारद का खनिज है।

(२) ओनोफ्राइट (onofrite HgS, Se.)

यह गन्धक, सिलेनियं और पारद का यौगिक है।

(३) कोलोरेडोआइट (Coloradoite Hg Te.)

यह टेलुरियं नामक खनिज और पारद का यौगिक है।

(४) लेहर बेकाइट (Lehrbachite a Selenide of Lead and mercury)
यह सेलेनाइड, सीसा (नाग Lead) और पारद का यौगिक है।

(५) आयोड़ीराइट (Iodyrite)
यह अत्यल्प मात्रा में चीली (Chile) नामक स्थान पर आयोडाइड, रजत, और पारद का यौगिक पाया जाता है। आयुर्वेद के रस-शास्त्रों में हिंगुल के शीर्षक में जो वर्णन मिलता है वह समस्त पारद के खनिजों के विषय में समझना चाहिये। पारद के मुख्य खनिज तो स्पष्ट रूप से लिख दिये हैं और गौण खनिज उन्हीं के अन्तर्गत करने का प्रयत्न किया गया है। आज कल भी प्रधान खनिजों से ही पारद निकालने का व्यवसाय चलता है। शेष खनिज किसी देशविशेष के स्थानविशेष में मिलते हैं। उनका उपयोग पारद निकालने के लिये कभी २ किया जाता रहा है।

इसका वर्णन रस शास्त्रियों ने एक श्लोक के अर्धभाग में कर दिया है।

"पिण्डरूपमिदं साक्षात् दृश्यते दृष्टि सौख्यदम्" (रसकामधेनु पृ० २७३)

इन सब अवतरणों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राप्य रसग्रन्थों में हिंगुल के वर्णन में जितना भी साहित्य मिलता है वह सब ठीक है, केवल ग्रन्थ संग्रहात्मक होने के कारण सिलसिले वार खनिजों का स्वरूप समझना कठिन हो गया है। तथापि जितनी सामग्री उपलब्ध है उससे यह निर्णय सहज में निकाला जा सकता है कि प्राचीन भारतीय रस—शास्त्रियों को पारद प्राप्ति के प्रायः सारे खनिज विदित थे।

उन्होंने उनका इतना ही वर्णन किया है कि जितना औषधि निर्माता के ज्ञान के लिये आवश्यक है। आधुनिक काल में भी औषधियों के गुणधर्म बतलाने वाली पुस्तकों (मेटेरिया मेडिका आदि) में औषधि निर्माणोपयोगी खनिजों का वर्णन संक्षेप में दिया गया है। परन्तु खनिज सम्बन्धी वैज्ञानिक ग्रन्थो में बहुत विस्तार के साथ सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन पाया जाता है। सम्भवतः इसी प्रकार यहाँ के खनिज शास्त्रों में भी विशद वर्णन रहा हो पर दैव दुर्विपाक से आज कल उपलब्ध नहीं है।

रस शास्त्रियों ने औषधोपयोगी खनिजों का संक्षेप में परिचय देकर उनके शोधन मारण और औषधि गुण धर्म पर विशेष प्रकाश डालने का प्रयास किया है। वैद्यों का यह अभिमान ठीक हो सकता है कि गत भारतीय संस्कृति के समय में जब देश की उन्नत दशा रही हो, सर्वत्र ज्ञान प्रसार करने का कार्य यहाँ के विद्वान् करते रहे हों, पर आज कल की पारतन्त्र्य दशा में उक्त अभिमान छोड़कर रसशास्त्रोक्त खनिजों का वर्तमान कालिक उपलब्ध ज्ञान प्राप्त करना वैद्य मात्र के लिये परमावश्यक है। क्योंकि जो औषधि के द्रव्य बाज़ार में आ रहें हैं वे प्रायः कृत्रिम और अशुद्ध मिलते है। पन्सारी उनमें अनेक बाह्य अशुद्धियां मिलाकर बेचते हैं। ऐसी दशा में पूर्णतया

द्रव्य ज्ञान के बिना शुद्ध औषधि बनाना अत्यन्त कठिन हो गया है; जिसका फल यह हो रहा है कि शास्त्रोक्त गुण, प्रभाव औषधियों में नहीं देखे जाते हैं। इसी कठि- नाई को दूर करने के लिये पारद के समस्त प्राप्य खनिजों का वर्णन कर दिया गया है।

पारदीय खनिज प्राप्ति के स्थान

बृटिश बोर्नियो (British Borneo)

इसप्रान्त में रक्तहिङ्गुल (हंसपाद), प्राकृतिक पारद और रसपुष्प (केलोमल Calomel) अल्प मात्रा में पाया जाता है।

भारतवर्ष (इण्डिया India)

यहां अब तक कोई निश्चित स्थान पारद या उसके खनिजों की प्राप्ति का विदित नहीं हुआ है। अभी हाल ही में चित्राल (पंजाब) की नदी की रेत में हिङ्गुल के अस्तित्व का पता लगा है। यह स्थान सावधानी पूर्वक सुरक्षित कर दिया गया है (मानोग्राफ ऑनमर्क्युरी ओर्स पृष्ठ २२)

इसके अतिरिक्त अदन (Aden), अफ़गानिस्तान (Afghanistan), अण्डमन आइलेण्ड (Andaman Islands) बर्मा (Burma), तिब्बत (Tibet) आदि पार्श्ववर्ती देशों में भी हिङ्गुल के मिलने की सन्दिग्ध सूचनाएँ समय समय पर प्रका- शित हुई हैं।

(बिबलोग्राफी भाग २ पृष्ठ ३६३)

अफ्रीका (Africa)

न्यासालेन्ड (Nyasaland) नामक स्थान में पारद का होना बताया गया है। किन्तु उसकी ब्योरेवार रिपोर्ट अभीतक प्रकाशित नहीं हुई है।

यूनियन आफ् साउथ अफ्रिका (Union of South Africa) ट्रान्सवाल ज़िले में स्फटिक के साथ मिला हुआ हिंगुल पाया जाता है। एवं इसी देश के अन्य स्थानों में गेलेना (Galena) or Lead Sulphide—लेड सल्फाइड) यशद (Zinc), स्फटिक, रेणुशिला आदि के साथ में मिलता है। एक स्थान पर प्राकृतिक पारद सुवर्ण के साथ भी पाया जाता है।

उत्तरीय अमेरिका (North America)

केनाडा (Canada) के सब प्रान्तो में भिन्न भिन्न जातीय खनिज पाषाण और उष्ण स्रोतों में प्राकृतिक पारद और हिंगुल पाया जाता है।

आस्ट्रेलिया (Australia)

इस देश में हिंगुल और प्राकृतिक पारद अनेक स्थानों में पाया जाता है। सन् १८९२ तक केवल क्वीन्सलेन्ड (Queensland) से १३७०० पाउण्ड (१ पाउण्ड आध सेर के बराबर होता है) पारद निकाला गया है। यहां ज्वालामुखी पाषाणों में भी

अधिकतर पारदीय खनिज मिलते हैं। पारद के खनिज निकालने के लिये यहां अनेक कूप खने गये हैं, जिनकी गहराई ८० से २४० फीट तक है।

पापुआ (Papua)

इस देश में भी पारद के खनिज पाए जाते हैं। किन्तु अभी तक पारद निकालने का काम प्रारम्भ नहीं हुआ है इसलिये यहां के खनिजों का व्यवहारिक मूल्य का पता नहीं लग सकता है।

न्यूज़ीलेण्ड (New Zealand)

इस देश में सोना, चांदी, माक्षिक आदि खनिजों के साथ अनेक स्थानों में पारदीय खनिज पाये जाते हैं। सन् १९१७ से १९२० ई० तक ९०० फ्लास्क पारद पुही पुही (Puhi Puhi) नामक स्थान से निकाला गया था। इस देश के एक स्थान पर उष्ण-स्रोत में हिंगुल प्राकृतिक गन्धक के साथ अन्य खनिजों के सहयोग में पाया जाता है।

अल्वेनिया (Albania)

यह विदित हुआ है कि इस देश में भी पारद के खनिज हिंगुल और प्राकृतिक पारद पाये जाते हैं। किन्तु ब्योरा अभी तक मालूम नहीं हो सका है।

जोकोस्लोवेकिया (Czechoslovakia)

इसके दो तीन प्रान्तों में हिङ्गुल, पारद-मिश्रक (Amalgam) माक्षिक, स्फटिक आदि के साथ पाया जाता है। खड़िया के रूपान्तरित स्लेट और लावा के तर (Sheet) के बीच में हिंगुल, गेलेना और यशद भी पाये जाते हैं।

फ्रान्स और कार्सिका (France and corsica)

इस देश के अनेक प्रान्तों में हिङ्गुल और प्राकृतिक पारद चूने (calcite) की भूमि में माक्षिक, स्फटिक, यशद, खर्पर (Calarmine), गेलेना (Galena) पारदीय मिश्रक (Amalgam), एन्टिमनि, गन्धक, आर्सेनिक, प्लेटिनम् (Platinum) आदि के साथ पाया जाता है। इस में प्लेटिनम् का अल्पांश ही मिलता है।

जर्मनी (Germany)

जर्मनी में पारद के खनिज अधिक नहीं प्राप्त होते हैं। जितने भी अब तक प्राप्त हुए थे वे सब काम में आगये हैं। तथापि किसी किसी स्थान विशेष पर अनेक अन्य खनिजों के साथ धागे की शकल के तार से हिङ्गुल के रेशे पाये जाते हैं। एक स्थान पर फोसिल मच्छियों में भी हिङ्गुल जमा हुआ पाया गया है।

इस के अतिरिक्त प्राकृतिक पारद, रजत मिश्रक (silver Amalgam), केलोमल (रसपुष्प), मेटे सिन्नाबार (कृष्ण हिङ्गुल), मर्क्युरियल फेहलोर (Mercurial Fehlore ताम्र मिश्रक) भ. पाये जाते हैं। इन के साथ साथ माक्षिक, रक्त और पीत गरिक, साइडराइट (Siderite), सुरमा (Gelena), टेट्रा हीड-

राइट (Tetrahedrite) सुवर्ण-रौप्यमाक्षिक, स्फटिक, एन्टिमनि, अयस्कान्ति (Pyrolusite), सिलो मेलेन, (Psilomelane) आदि खनिज भी मिलते हैं। एक स्थान पर २७०० फुट और दूसरे स्थान पर १२०० फुट की बिस्तृत भूमि पर फैले हुए पारदीय खनिज पाये गये हैं। राइनलेन्ड (Rhinland) के ज़िले में १० फ्लास्क पारद प्रतिवर्ष यशद खनिज के साथ निकलता है।

हङ्गरी (Hungary)

महायुद्ध के पूर्व हङ्गरी में वार्षिक १० टन पारद निकलता था। अब उस के प्रान्त बदल गये हैं। हङ्गरी में एन्टिमनि के साथ पारदीय खनिज पाये जाते थे, जहां तक विदित हुआ है आज कल इस देश में पारद निकलने का व्यवसाय नहीं होता है।

इटली (Italy)

इटली में सर्वत्र पारदीय खनिज प्राप्त होते हैं। वहां पर कई एक पुरानी बड़ी बड़ी खानें हैं। पारदीय खानों का प्रबन्ध राजकीय तरफ से किया जाता है। इटली में पारद के मुख्य चार खनिज पाये जाते हैं।

१—स्टील और दैत्येन्द्ररक्त (Steel orestahlerz)।

इस में ७५ फीस दी पारद मिलता है। २—लीवर और (Liverore-Leberz) यकृदाकार हिङ्गुल या दरदः। यह मृत्तिका जाति का हिङ्गुल है। इस पर स्टेह लर्ज (Stehlerz) का कन्चुक (Kernels) चढे रहते हैं।

३—कोरे लाइन (Coralline = corallenerz)

प्रवालाभ हिङ्गुल (श्वेतरेखः प्रवालाभः) ४—ब्रिक (Brickore) और गिरि सिन्दूर या रक्त हिङ्गुल (जपाकुसुमसङ्काशः हंसपादो महोत्तमः) यह पारदीय खनिजों के किनारे पाया जाता है। सम्भवतः इसी प्रकार के खनिजों को देखकर ऊपर के वाक्य प्राचीनों ने लिखे हैं। इटली के इड्रिया (Idria) नामक स्थान में सब से पुरानी पारद की बड़ी खाने हैं। इन खानों में एक स्थल पर फन्नेल (Funnel) की शकल के पाइप (नल या छिद्र) हैं। सम्भव है एसे ही कूपाकार छिद्र देख कर इस ग्रन्थ (रसरत्न समुच्चय) में 'जाताः कूपाश्च पञ्च च' वाक्य किसी महर्षि ने लिख दिये हों। इस विषय में मानो ग्राफ़ आफ़ मर्करी के पृष्ठ ४५ का निम्न लिखित अवतरण ध्यान में रखने योग्य है—

In the Immediately neighbouring rock are several funnel-shaped cavities also filled with metallif erous sands and Clays. The proportion of cinnabar mereasing with the depth.

These funnel-shaped cavities appear to bear some analogy to the vertical pipes or holes (Trajas) in Gypsum-at the mercury mines of Huitzuco,-Gnerrero, Mexico. Broadly Speaking, the hole deposit forms a large funnel the position of which is marked on the surface By a distinct depression.

पोर्तुगाल (Portugal)

कुछ वर्षों से इस देश में भी पारद की निकासी होने लगी है ।

रूमानिया (Rumania)

इस प्रदेश के जलाटना (Zalatna) नामक स्थान के पारदीय खनिजों से पारद निकालने का व्यवसाय किया जाता था । किन्तु व्यवसाय लाभ प्रद न होने के कारण प्रायः बन्दसा हो गया है ।

रस्सिया (Russia)

योरोप और एशिया के अन्दर युक्रेन (Ukraine) सहित इस देश में सन् १८९७ में ६१६ मेट्रिक टन पारद निकला था । सन् १९१० में तीन चार सौ मेट्रिक टन के लग भग पारद की निकासी हुई और उसके एक ही वर्ष के बाद सन् १९११ में केवल २५ मेट्रिक टन की उपज रह गई । अब बहुत अल्पमात्रा में इस देश में पारद का रोजगार होता है । सारे एशिया में हिङ्गुल, प्राकृतिक पारद आदि पारदीय खनिज प्राप्त होते हैं । माक्षिक, एन्टिमनी, गन्धक, गेलेना, स्फटिक, चूना आदि खनिजों के साथ साथ व पत्थर के कोयले के साथ भी हिङ्गुल मिला पाया जाता है ।

स्केण्डिनेविया (Scandinavia)

यहां पर प्राकृतिक रजत के साथ पारद पाया जाता है । स्वेडन के साला (Sala) नामक स्थान पर पारदीय रजत—मिश्रक (Silver Amalgam), प्राकृतिक पारद और किसी किसी स्थान पर अल्प मात्रा में हिङ्गुल भी पाया जाता है ।

स्पेन (Spain)

इस समय संसार में स्पेन देशीय अल्माडन (Almadan) नामक स्थान की पारदीय खनिजों की खानें सर्व प्रधान हैं । संसार की पारद की माँग एक तिहाई इसी की खानों से पूरी होती है । इस स्थान की खानों में विशेषता यह है कि गहराई के साथ साथ ऊँचे दर्जे के उत्तम पारदीय खनिज निकलते जाते हैं । इस समय तक १३०० फुट की गहराई की खानें खुद चुकी हैं । इस देश में शताब्दियों से पारद निकालने का व्यवसाय हो रहा है । यहां का मुख्य खनिज पारद निकालने योग्य रक्त हिङ्गुल (cinnabar) ही अधिकता से मिलता है । यह हिङ्गुल बहुत तेज लाल रङ्ग का

होता है (Cinnabar of Bright Red colour) यहाँ से सम्भवतः रसशास्त्रियों का "जपाकुसुम सङ्काशो हंसपादो महोत्तमः" इस प्रकार का हिङ्गुल आता रहा है। यहां शुद्ध रवेदार हिङ्गुल अल्पमात्रा में पाया जाता है। जितना भी मिलता है वह स्फटिक, माक्षिक और बराइट के रवोंके साथ में मिलता है। ढेले की शकल का हिङ्गुल जिसमें ७५ से ८५ फीसदी पारद रहता है बहुतायत से पाया जाता है। इसके सहयोग में अन्य खनिज बहुत कम मिले पाये जाते हैं। प्राकृतिक—पारद, केलोमल, बहुत कम मात्रा में मिलता है। स्पेन के एक प्रान्त में रक्त और कृष्ण हिङ्गुल, हरिताल, मनः शिला, आर्सेनिक (Arsenic), सुधा पाषाण (Lime Stone), रेणु पाषाण (Sand stone) आदि के साथ में पाया जाता है।

अल्माडन की खानों में सन् १५६४ ई० से १९१९ ई० तक नीचे लिखे सारणी के अनुसार पारद की निकासी हुई है।

समय	मेट्रिक टन्स	वार्षिक निकासी
१५६४–१७००	१७८६३	१०३
१७००–१८००	४२१४९	४२१
१८००–१८७५	६०१६	८०२
१८७६–१९१९	४३००० (अनुमान)	१००० (अनुमान)

युगोस्लेविया (Yugoslavia)

इस स्टेट में बोसनिया (Bosnia), सर्विया (Servia), स्लोवेनिया कार्निएला (Slovania-Carniala) प्रान्तों में मुख्यतः पारद के खनिज पाये जाते हैं।

एशिया माइनर (Asiaminor)

इस देश में ३००० वर्षों से पारद निकालन का व्यवसाय हो रहा है। सन् १९०६ और १९०७ में वार्षिक ३००० फ्लास्क पारद कोनिया और केरो बुरम माइनस् (खान) (Konia And Karo Burum Mines) में निकला था। इसी प्रकार एनाटोलिया (Anotolia) में ४००० से ५००० फ्लास्क प्रतिवर्ष निकलता रहा है। सन् १९०९ में तुर्क स्थानीय (Turkish) पारद की निकासी १४२ टन्स (३७८६ फ्लास्क) हुई थी। महायुद्ध के समय एसियाटिक तुर्की की पारदीय खानें जर्मनी के अधिकार में आगई थीं।

चाइना या चीन (China)

चीन के अनेक स्थानों में पारदीय खनिजों के मिलने की सूचनायें समय समय पर प्रकाशित होती रही हैं। इस समय केवल युआनशानचङ्ग (yuanshanchang) नामक स्थान की खाने ही प्रसिद्ध हैं। यहां पर दो प्रकार का हिङ्गुल पाया जाता है। एक का रङ्ग तेज लाल (Bright Red) और दूसरे का गहरा लाल (Dark Opequered) होता है। यहां बहुत ही प्राचीन प्रणाली से हिङ्गुल एकत्रित किया

जाता है। एवं इसे इंगुर (Vermillion) के रूप में ही तैय्यार करते हैं, जिसका स्थानीय व्यापारी रङ्गसाजी में उपयोग करते हैं। प्राचीन काल में इसी प्रकार के हिङ्गुल के व्यापार के कारण भारतीय रस शास्त्रियों ने 'चीन पिष्टं' और चूर्णपारदः पर्य्याय शब्द रखकर हिङ्गुल के चीन सम्बन्धी व्यापार को चिरस्मरणीय बना दिया है। चीन में सन् १९०९ ई० के पूर्व अनेक वर्ष तक प्रति वर्ष ६४० फ्लास्क पारद निकलता रहा है। सन् १९१८ ई० में ६४६८०० पाउन्ड पारद चीन से निकला था।

जापान (Japan)

वर्तमान समय में जापान में केवल एक स्थान की खानें पारद निकालने के लिये खनी जा रही हैं। यहां पर हिङ्गुल चूने के पाषाण (Calcite) और रेणु शिला के साथ पाया जाता है।

न्यूकेलेडोनिया (New Caledonia)

न्यूकेलेडोनिया के बोरेल (Bourail), केनाला (Canala), कोनो आना (Konaona) और पिवाका (Piwaka) नामक स्थान पर पौने-दो से सवा-दो फीसदी पारद निकालने वाले खनिज प्राप्त होते हैं, किन्तु आजकल यहां पर पारद की निकासी का कारोबार बन्द है।

फारस (Persia) पर्सिया

प्राचीन समय से ही फारस में पारदीय खनिजों का होना विदित था। तख्तई-सुलेमान (Tākht-i-Suleiman) नाम के प्रदेश के ज़िलों में हिङ्गुल, प्राकृतिक पारद, पत्र हरिताल, और मनः शिला मिलते हैं। हरिताल और मनः शिला पर्सियन कुर्दिस्तान (Persian Kurdistan) नामक स्थान पर भी पाये जाते हैं।

अफ्रिका (Africa)

अफ्रिका के एलजीरिया (Algeria) नामक स्थान से कुछ समय पूर्व थोड़ा पारद विदेशों में भेजा गया था। इस देश में यशद रजत युक्त स्रोतोञ्जन (Argenti Ferous), खर्पर (Calamine) नीलाञ्जन (Antimony) आदि के साथ में हिङ्गुल पाया जाता है।

एलजीरिया (Algeria) के अतिरिक्त बीर-बेनी-सोलाह (Bir-Beni-sulah) नामक स्थान में जो कोलो (Collo) से ६ माईल की दूरी पर है गेलेना के साथ में हिङ्गुल मिलता है। और भी अफ्रिका के अनेक प्रदेश हैं जिन में गेलेना या यशद के साथ हिङ्गुल पाया जाता है। कहीं कहीं स्वतन्त्र रूप से भी हिङ्गुल मिलता है।

इटालियन सोमेलिलेण्ड (Italian Somaliland)

इस देश के उत्तरी भाग में हिङ्गुल होने की सूचना प्रकाशित हुई है।

ट्यूनिस (Tunis)

एलजीरिया के समान यहां भी अनेक प्रकार के खनिजों के साथ हिङ्गुल का जमाव मिलता है।

अपर सेनेगल और नीगर (Upper Senegal and Neger)

इस देश के बम्बोक (Bambouk) प्रान्त में पारदीय खनिज मिलते हैं।

नार्थ अमेरिका (North America)

उत्तर अमेरिका के पारदीय खनिज अलस्का (Alaska) से सेन्ट्रल अमेरिका (Central America) तक कार्डिलेरनरीजियन (Cardilleranregion) में प्राप्त होते हैं।

होन्डुरास (Honduras)

होन्डुरास के प्रजासत्तात्मक राज्य में पारदीय खनिजों का होना चिरकाल से विदित है। सन् १९०९ ई० में १३८ फ्लास्क पारद की निकासी हुई है। स्पेनिश लागों के राज्यकाल में उत्तम हिङ्गुल का जमाव कोमायागुआ (comayuga) विभाग में रहा किन्तु फिर उसका उपयोगन हीं किया गया।

मेक्सिको (Mexico)

मेक्सिको में सर्वत्र पारदीय खनिजों का जमाव पाया जाता है किन्तु मुख्यतः सान लुइस पोटासी (San Louis Potasi) और ग्वरेरो (Guerrero) राज्य में पाये जाते हैं।

यहां के सब पारदीय खनिज ज्वालामुखी के उद्गम स्थानीय उष्ण स्रोतों की रासायनिक क्रिया से उत्पन्न हुए विदित होते हैं। इस देश में रक्तहिङ्गुल, कृष्णहिङ्गुल और रसपुष्प (केलोमल) व प्राकृतिक पारद बहुतायत से पाये जाते हैं।

यूनाइटेड स्टेट्स (United States)

प्रायः सारे युनाईटेड स्टेट्स आफ् अमेरिका में पारदीय खनिज पाये जाते हैं। संसार में स्पेन के उपरान्त केलिफो-निया का नम्बर दूसरा है। इस देश में रक्तहिङ्गुल, कृष्णहिगुल, रसपुष्प (कोलोमल) और प्राकृतिक पारद प्रायः सहयोग में मिलते हैं। पारदीय अन्य खनिज भी साधारणतया इस देश में यत्र तत्र मिल जाते हैं। अमेरिका के संयुक्त राज्यके पारदीय खनिज हलकी जाति के हैं। इनमें पारद :५% फीसदी निकलता है। सन् १९१८ के उपरान्त पारद का मूल्य गिर जाने से और खान के व्यवसाय का व्यय बढ़ जाने से यहां के पारद की निकासी पर बुरा प्रभाव पड़ा है। जिससे सन् १९२१ में ६३३९ फ्लास्क ही पारद निकाला गया। यह मात्रा सन् १९२० की अपेक्षा अधिक है और सन् १९१२ से १९१९ तक की अपेक्षा चतुर्थांश के लगभग है और जो सन् १८५० से अब तक की निकासी को देखने से सब से अल्प मात्रा मानी

जाती है। इस निकासी में भी टेक्सास से ३१ फ्लास्क, केलिफोर्निया से ३०९१, नवाडा से १०० और इहाडो से १ फ्लास्क पारद निकला है। सन् १९१७ से अलस्का और एरिजोना से पारद बिलकुल नहीं निकाला गया। इसी प्रकार इहाडो से सन् १९१९ और १९२० में औरेगन से १९२१ में एक दम पारद की निकासी नहीं हुई।

अलस्का (Alaska)

इस प्रदेश में जार्ज टाउन (GeorgeTown) के १९ मील ऊपर नदी के उत्तरी किनारे पर १९०६ में हिङ्गुल के अस्तित्व का पता लगा है और वहां पारद निकालने का कार्य प्रारम्भ किया गया।

यहां पर स्टिबनाइट (Stibnite), स्फटिक (quarty), साइडराइट (Siderite) आदि खनिज के सहयोग में हिङ्गुल पाया जाता है। स्टिबनाइट (एन्टिमनि सल्फाइड) और हिङ्गुल मालूम होता है कि साथ ही साथ भूगर्भ से निकल कर जमा हुए हैं; क्योंकि ये एक दूसरे पर जमे हुए पाये जाते हैं। कहीं पर स्टिबनाइट पर हिंगुल जमा हुआ मिलता है तो कहीं पर स्टिबनाइट हिङ्गुल पर। जहां पर ये खनिज प्राप्त होते हैं वह स्थान दुर्गम होने के कारण पारद निकालने का कार्य बन्द सा रहा तथापि सन् १९१९ में वहां पर नवीन पद्धति से कार्य प्रारम्भ किया गया और जो माल निकला वह वहां के ही व्यवसाइयों के हाथ वेच दिया गया। इसी नदी के बहाव की तरफ १०० मील नीचे की ओर एक स्थान पर हिंगुल पाया गया है। किन्तु वहां पर भी पारद निकासी का कार्य अब तक प्रारम्भ नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त भी अन्य कई स्थानों में हिंगुल पाया जाता है और सैकड़ों पाउण्ड निकाला जा सकता है। नोमे सीवार्ड पेनिन्सुला (Nome seward peninsule) से लगभग ६० मील की दूरी पर 'फलेसर माइनिङ्ग डेनियल क्रीक' नामक स्थान है वहाँ पर एकत्रित संगृहीत रूप से अच्छी मात्रा में हिंगुल मिलता है। इसी ज़िले में एक स्थान और है जिसे फलेसर्स आफ ऐरन क्रीक' कहते हैं वहां पर हिंगुल का जमाव अधिक मात्रा में है।

एरिज़ोना (Arizona)

इस प्रदेश में ६ मील तक लम्बे और ११ मील तक के चौड़े फैलाव में पारदीय खनिज पाये जाते हैं। जिस भाग में हिंगुल मिलता है वह ३०० से ५०० फीट की दूरी पर क्षेत्र रूप से विभक है। पारद निकालने का सारा कार्य खनिज की अधिकता को देख कर बीच के भाग में प्रारम्भ हुआ है। यहां पर हिंगुल पृथ्वी की शिरा और छोटे ३ गर्त व खण्डहरों में पाया जाता है। कभी कभी रौप्यमाक्षिक, सुवर्णमाक्षिक, गरिक आदि के साथ में भी हिंगुल मिल जाता है। एक स्थान पर ३ मील चौड़ा हिंगुल प्राप्ति का क्षेत्र है, जहां पर कृष्ण और रक्त दोनों प्रकार का हिंगुल, स्फटिक,

सुधापाषाण, गैरिक आदि की भूमि में पाया जाता है। सन् १९१७ में ४० फ्लास्क पारद इस प्रदेश से निकला था।

केलिफोर्निया (California)

सन् १८५० से १९२१ तक केलिफोर्निया पारद निकालने का प्रधान देश रहा है। यहां से २२६११८१ फ्लास्क या ७६२९३ मेट्रिक टन्स पारद वार्षिक निकलता है यह मात्रा प्रसिद्ध स्पेनदेशीय अल्माडन की खानों की निकासा से ५० वर्ष की पारद की पैदाइश के बराबर है। किसी कारण वश केलिफोर्निया की अपेक्षा टेक्सास की पारद की निकासी सन् १९२१ में अधिक रही है। लगभग ८०% फीसदी अमेरिका के संयुक्त राज्य की पैदाइश १० खानों से हुई है। इन खानों में मुख्य न्यूएल्माडन की खान है जहां से सन् १८५० से १९१७ ई० तक १०२११८३ फ्लास्क पारद निकला है। इस से दूसरे नम्बर पर न्यू इड्रिया की खाने हैं, जहां से सन् १८५८ से १९१७ तक ३०६४७५ फ्लास्क पारद की निकासी हुई है। तीसरा नम्बर ओटहिल का है यहां से सन् १८७६ से १९१७ ई० तक १५२०६६ फ्लास्क पारद की निकासी हुई है। केलिफोर्निया का पारदीय खनिज प्राप्ति का स्थान ४०० मील लम्बा और ७५ मील चौड़ा है और यहां पर प्राचीन व अर्वाचीन ज्वालामुखो के उद्गम चिह्न अनेक पाये जाते हैं। सन् १९१९ ई० में पारदीय खानों के मुख्य जिले सानबेनीटो, न्यू इड्रिआ, माइन्स (San Benito, New Idria Mines), सान्टा क्लेरा (Santa clara), सोनोमा (Sonoma), सान लुइस ओबिस्पो (San Luis obispa), नापा।(Napa) और लेक (Lake) गिने जाते हैं।

कार्न कौन्टी (Karn county)

कार्न कोन्टीं नाम के प्रान्त में पारदीय खनिज प्राप्ति का जो स्थान है वह केलिफोनिया के ज्ञात पारदीय खनिज प्राप्ति स्थान से भिन्न है। यहां का कारखाना हाल ही के शोध का फल है। यहां की गहराई केवल ३० फीट ही भूगर्भ में है। यहां से पारद की निकासी हुई है, किन्तु उसका व्योरा उपलब्ध नहीं है। ग्रेट वे स्टर्न नामक खान से सन् ३८१२ से १९०९ तक ९८३१६ फ्लास्क पारद निकाला गया। बाद को यह खान बन्द कर दी गई है। प्रसिद्ध सल्फर-बेङ्क नामक गन्धक की खान से जहां पहिले केवल गन्धक की ही निकासी होती थी ७२४०० फ्लास्क पारद निकाला गया है। यहां के स्रोत के जल से जो गैसें निकली हैं वे कार्बोनिक एसिड, सल्फ्युरेटेड हाइड्रोजन, सल्फर डाई ओक्साइड और मार्श गैस हैं। इन जलों में कार्बोनेट्स, बोरेटस, सोडियम् क्लोराइड (नमक), पोटासियम् क्लोराइड, अमोनियम् क्लोराइड (नोसादर), व अलकलाइन सलफाइड घुले पाये जाते हैं। हिङ्गुल विकृत बेसाल्ट नामक ज्वालामुखी पाषाण खण्डों के तले पाया जाता है जो किसी

स्थान पर दानेदार और किसी स्थान पर मृत्तिकाकृति का हिङ्गुल जमा मिलता है। यहां के हिङ्गुल के सहयोग में गन्धक, ओपल, स्फटिक और रौप्यमाक्षिक पाये जाते हैं। वेकर (Backer) का कथन है कि सल्फर बैंक के अन्तराल को खान केलिफोर्निया के प्रधान पारदीय खानों के मुकाबले की है।

१९१७ में सल्फर-बैंक नामक खानों का माल ८००,००० टन बाष्प यन्त्रों से पीसा गया था और सब से अधिक पारद इस देश से सन् १९१८ में निकाला गया, किन्तु सन् १९१९ में फिर पारद की निकासी नाम शेष रह गई। लेक ज़िले में पारद निकालने के स्थान सेन्ट जोन्स (St Johns) और हेलन (Helen) हैं। नापा ज़िले में सन् १८६३ से १९१९ तक ३३८९९१ फ्लास्क पारद की निकासी हुई। इस के अतिरिक्त कोरोना ((Corona), नाक्से विल (Knox ville), मनहाटन (Manhattan) नामक खानों में भी रक्त हिङ्गुल, कृष्ण हिङ्गुल, रौप्यमाक्षिक, गन्धक, स्टिबनाइट के साथ पाया जाता है, किन्तु सन् १९२० से इन खानों का व्यवसाय बन्द है। ओट हिल (oat Hill) की खान में रेणुशिला के अन्दर जमा हुआ हिङ्गुल पाया जाता है। सन् १८७६ से १९१७ तक १६२९६६ फ्लास्क पारद की निकासी हुई है। सानबेनिटो (San Benito) ज़िले में ३३४२९९ फ्लास्क पारद सन् १८६९ से १९१९ तक निकाला गया। अमेरिका के संयुक्त राज के पारद निकासी का यह ज़िला सब से अधिक उपजाऊ समझा जाता है। न्यू इड्रिया की खान से इस स्टेट के सब पारद निकासी की अपेक्षा आधा पारद निकाला गया है। न्यू इड्रिया की खान में अधिकतर कृष्ण हिगुल पाया जाता है। यहां पारद प्राप्ति का स्थान २॥ मील के फैलाव में है। १९-२० मील भूगर्भ के अन्तराल में खुदाई का काम हो रहा है। सान, लुइस, ओबिस्पो जिलों (San Luis obispo country) में वहां के आदिमनिवासी (Indians) शताब्दियों से हिङ्गुल को रङ्ग के काम में उपयोग करते हैं। व्यापारियों ने सब से प्रथम सन् १८६२ में इस स्थान के खान की रक्षा की और सन् १८७६ से १९१८ तक ४९६०० फ्लास्क पारद निकला।

क्लो (Klau) नामक खान से १४२१३ फ्लास्क पारद निकाल कर सन् १९१६ में काम बन्द कर दिया गया था और फिर सन् १९१९ में प्रारम्भ हुआ। यहाँ पर हिङ्गुल स्फटिक और रौप्य माक्षिक के सह योग में पाया जाता है।

ओसीनिक (Oceanic) नामक खान से १९१७ के अन्त तक २३९९१ फ्लास्क पारद निकाला गया था। इस ज़िले में केवल इसी खान से सन् १९१८ में १४६० फ्लास्क पारद की निकासी हुई। यहां की भूमि में हिङ्गुल एकसा सर्वत्र पाया जाता है। यहां सन् १९१९ में पारद का एक ओर खनिज ९९० फुट की गहराई पर पाया गया है।

सेन्टाक्लेरा कौन्टि (Santa clara county)

इस प्रान्त में न्यू एल्माडन की खानों का पता सन् १८२४ में लग गया था, किन्तु सन् १८४६ तक यहां के पारदीय खनिज हिङ्गुल की पहिचान न हो सकी। यहां की खानों से पारद की बडो मात्रा निकलने का उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। इस समय तक १८ कूप (Shapcha) खोदे गये हैं। यहां के भूगर्भवर्ती कन्दराओं की लम्बाई १०० मील के लगभग है। इन कन्दराओं में से अनेक कन्दराएँ अपने आप बैठ भी गई हैं। सन् १९१७ में सब से अधिक गहराई २४६० फुट मानहिल नामक पहाड़ी की चोंटी जो १६०० फुट ऊँची है के नोचे थी। इस लिये संसार में यह सब से बड़ी और गहरी खान गिनी जाती है। ८०० फुट गहराई के नीचे का भाग कुछ वर्ष हुए बन्द कर दिया गया है। स्पेन की अल्माडन खानों के हिङ्गुल की अपेक्षा यहां का माल अत्यन्त निम्न-श्रेणी का है, जिसमें केवल १॥ से १ फीसदी तक पारद पाया जाता है। इस खान का वर्णन पढ़कर यह सहज में ही समझ में आजाता है। कि इस ग्रन्थ (रस रत्न समुच्चय) में जो "शतयोजननिम्नास्ते जाताः कूपास्तु पञ्च च" लिखा है, वह कहां तक सत्यता युक्त है। संसार में अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। उस समय पारद निकालने के केवल पांच ही कूप खुदे मिले होंगे। आज यहां पर अठारह कूप खुदे पाये जाते हैं। शतयोजन निम्न मानना इस दशा में ठीक हो सकता है कि पृथ्वी के उप-रितल से जो पारद निकालने के लिये भूगर्भ में खुदाई की गई वहु खुदाई नापकर जोड़ने से शतयोजन अर्थात् ४९०० मील के लगभग गहराई समझी जावे। आजकल भी इसी प्रकार की मापने की प्रथा प्रचलित है। योजन शब्द से चार कोस साधार-णतया माने जाते हैं, किन्तु इसका भी शास्त्रीय विचार करने से पता लगता है कि एक योजन ४ मील नौ सौ साठ गज का होता है। मेदिनीकारने "योजनं परमात्मनि चतुष्कोश्यां च योगे च" लिखा है, जिससे चार कोस स्पष्टतया माना है। इसी प्रकार तारानाथ ने "स्याद्योजनं क्रोशचतुष्टयेन" लिखा है। लीलावती में भी विशेष गणना करके चार कोस ही का योजन माना है। किन्तु उस गणना से ३२००० हाथ का योजन होता है। हाथ के नाप के लिए मान शास्त्र में १२ अंगुल का हाथ माना है। लीलावती और मान शास्त्र की संज्ञाओं में कुछ भेद है।

"द्वादशाङ्गुलिकाहस्त तद्द्वयन्तु शयः स्मृतः।
तच्चतुष्कं धनुः प्रोक्तं क्रोशो धनुःसहस्रिकः॥
तच्चतुष्कं योजनं स्यात् ...."

(मानशास्त्र)

इस हिसाब से १६००० हाथ का १ योजन होता है।

"हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीहदण्डः क्रोशः सहस्रद्वितयेन तेषाम् ।
स्याद्योजनं क्रोशचतुष्टयेन"

इस हिसाब से ३२००० हाथ का एक योजन होता है। इन हिसाबों का आज कल के हिसाब से मुकाबला करें तो ८००० गज का १ योजन होता है। एक मील १७६० गज का होता है।

इन अवतरणों को देखने से साधारणतया यह विदित होता है कि निम्न का अर्थ वही करना चाहिए जो ऊपर किया गया है, अर्थात् निम्न का अर्थ एकदम गहरा नहीं किन्तु भूगर्भ में जो अनेक गुफाएं पारद निकालने के लिये खोदी जाती हैं उनका नाप करके एकत्रित लिखी गई है। एक स्थान पर कूप की गहराई २४५० फुट तक हुई है। यह गहराई यदि एक योजन तक चली जावे तो वहां पर मनुष्य का जीवन सम्भव नहीं है। मेरे विचार में आजकल की प्रथा के अनुसार गणना और नाप का व्यवहार पूर्व काल में भी था और उसका उपयोग इसी तरह समझने के लिये इस समय भी करना चाहिए। ऐसा करने से व्यवहार में सरलता हो जाती है तथा असम्भवता का दोष दूर हो जाता हैं। इस भाव को स्पष्ट समझने के लिये आजकल पारद की खान के विषय में जो प्रत्यक्ष है वह नीचे लिखे अवतरण को विचारने से ठीक समझ में आसकता है।

Santa Clara County—

The new Almadan groups of mines was discovered in Santa Clara County by two Mexicans in 1824, but the ore was not recognized as a Cinnabar until 1845. The large output of mercury from this mine has already been mentioned, altogether 18 shafts have been sunk, and there are nearly 100 miles of underground workings a large proportion of which have of course caved in the greatest depth in 1917 was 2450 ft. below the top of Mine Hill (1600 ft. Altitude). So it is the deepest and most extensive mercury mine in the world. *Monographs on mercury are Page 757*

सोलेनो (Solano) नामक ज़िले में सन् १८७३ से १९१८ तक १७११६ फ्लास्क पारद की निकासी हुई। यहां की खान का नाम सेन्ट जौन्स (St. Johns) है। इस खान का पता सन् १८५२ में लगा और सन् १८७३ में यहां से पारद निकालने का व्यवसाय प्रारम्भ हुआ। तब से सन् १९१७ तक १६४५५ फ्लास्क पारद निकाला गया था। यहां पर हिंगुल रौप्यमाक्षिक या विमल (Marcasite) के साथ पाया जाता है। हिंगुल के समीप जाड़ों में गाढ़ा गाढ़ा खनिज तैल भी जमा मिलता है। यह खान ६५० फुट गहरी है।

सोनोमा (Sonoma) जिलेमें १८७३ से १९१९ ई० तक ६९०६३ फ्लास्क पारद निकाला गया । जिस में ग्रेट ईस्टर्न और माउन्ट जेक्सन नामक खानों से १८७५ से १९१७ तक ४२०९२ फ्लास्क पारद की निकासी हुई । यहां पर भी हिंगुल रौप्य माक्षिक के साथ में पाया जाता है । इसी जिले में रेटल स्नेक (Rattle snake) खान में प्राकृतिक पारद (Native Mercury) काली मिट्टी की शकल में जमा हुआ मिलता है । इसके साथ स्नेहयुक्तशिलाजतु (oily Bitumen) भी मिला पाया जाता है ।

सोक्रेट की खान (Socrate's Mine) में भी प्राकृतिक पारद पाया जाता है । नीचे की गहराई में हिंगुल भी मिलता है । सन् १९१८ में यहां से कुछ पारद की निकासी की गई किन्तु १९१९ में काम बन्द रहा ।

ट्रिनिटि (Trinity) ज़िले में १८७५ से १९१७ तक ३११६६ फ्लास्क पारद उत्पन्न हुआ इसमें से केस्टेला (Castella) के पास की अल्टूना (Altoona) खान से २९००० फ्लास्क पारद निकला, शेष अन्यत्र से निकला । यहां पर जो हिंगुल मिलता है उसका क्षेत्रफल ४०० फुट लम्बा और ४ से २० फुट चौड़ा है । येलो (Vellow) जिले में रीड (Reed) नामक खान में कृष्ण हिंगुल ही मुख्य खनिज रौप्यमाक्षिक के साथ पाया जाता है । यहां की खान ३०० फुट गहरी है ।

इडाहो (Idaho)

वेली (Velly) ज़िले में १ मील लम्बी चौड़ी भूमि में हिंगुल रौप्यमाक्षिक के साथ मिला पाया जाता है । यहां की फन नामक खान से १९१७ में ५ फ्लास्क और १९१८ में २२ फ्लास्क पारद की निकासी हुई ।

निवाडा (Nevada)

इस स्टेट में बहुत सी जगह फैला हुआ हिंगुल पाया जाता है । पिलोर नामक पहाड़ के उत्तर पूरब दो मील की दूरी पर और मीना स्थान से दक्षिण पूरब आठ मील की दूरी पर एक पहाड़ है उसमें हिंगुल अधिकता से मिलता है । इस लिए उसका नाम हिंगुल पर्वत (Cinnabar Mountain) रख दिया गया है । क्या हमारे देश में आसाम की हिंगुलाज देवी का इसी कारण से तो नाम नहीं स्थिर हुआ है ?, प्रति वर्ष हजारों यात्री वहां पर दर्शन करने जाते हैं । सन् १९१० से १९१९ तक निवादा से १३७४६ फ्लास्क पारद निकाला गया है किन्तु १९१९ से यहां का कार्य शिथिल हो गया है और १९२० में ७९ फ्लास्क ही पारद निकाला गया । सन् १९२१ में १०० फ्लास्क पारद की निकासी हुई ।

ओरेगन (Oregon)

इस राज्य में हिंगुल सर्वत्र पाया जाता है किन्तु पारद के निकालने की खानें

थोड़ी सी हैं। जेक्सन ज़िले में गोल्डहिल (सुमेरु) के उत्तर १२ मील दूरी पर हिंगुल अधिक मात्रा में पाया जाता है। यहां १०० से ३०० फुट चौड़ा क्षेत्र है जहां पर ग्रेनाइट रेणु पाषाण का संयोगिक जमाव है। यहां के खनिज में हिंगुल प्राकृतिक पारद, रौप्यमाक्षिक, सुवर्ण, यशद और कृष्ण हिगुल सा एक भारी खनिज पाया जाता है। सर्वत्र उत्तम श्रेणी का खनिज मण्डूर की शकल का १ से २० इञ्च मोटा और वृक्ष की आकृति में पाया जाता है। यहां पारद निकालने का व्यवसाय क्रमशः उन्नति कर रहा है। यहां भी खान २७५ फुट गहरी और ६० फुट लम्बी इस समय है। यहां से १५०० टन खनिज से ४२३७५ पाउण्ड पारद निकाला गया।

लेन (Lane)

इस ज़िले में हिंगुल और प्राकृतिक पारद साथ साथ पाये जाते हैं। रौप्यमाक्षिक और विमल भी हिंगुल के सहयोगी खनिज हैं। यहां का मुख्य खन्दाक (Stapa) १९० फुट लम्बा और १५ फुट चौडा है जिसकी गहराई लगभग ४०० फुट के नीचे चली गई है। इसके अन्दर का खानज १५०००० टन कूता गया था। यहां की खान पारद निकालने की मुख्य खान समझी जाती थी किन्तु १९१९ में बन्द कर दी गई। सन् १९१६ से ११२० तक १८५२ फ्लास्क पारद की निकासी औरगन राज्य से हुई।

टेक्सास (Texas)

इस राज्य की सारी पारद की निकासी ब्रिवस्टर जिले (Brewster County) से हुई। इस स्थान की खोज १८९४ में हुई और १८९९ से १९१९ तक ८९६७० फ्लास्क पारद निकाला गया। यहां का पारद प्राप्ति का क्षेत्र १९ मील लम्बा और दो मील चौड़ा है। यहां की सबसे अधिक गहराई १९०६ में ३०० फुट थी किन्तु चर्न. ड्रिल (Churn drill) से ४४७ फुट की गहराई पर भी हिंगुल के सब चिह्न प्राप्त हुए। यहां पर पारद के अनेक खनिज पाये जाते हैं। किसी किसी कन्दरा में ओक्सीक्लोराइड, टर्लिङ्ग वाइट, ईग्लस्टोनाइट, मेट्रोडाइट, प्राकृतिक पारद और अल्प मात्रा में केलोमल (रसपुष्प) हिंगुल के साथ २ पाये जाते हैं। टेक्सास के टर्लिङ्गुओ (Terlingua) ज़िले में केलिफोर्निया की अपेक्षा अधिक उत्तम श्रेणी में हिंगुल प्राप्त होता रहा है। यहां की खान २५०० फुट लम्बी और ७५० फुट गहरी है। यहां पर चूने के कङ्कड के साथ साथ हिंगुल, प्राकृतिक पारद, खालिस गन्धक, रौप्य माक्षिक और विमल अन्य खनिजों के सहयोग में पाये जाते हैं। १८९९ से १९२० तक टेक्सास से ९३२७१ फ्लास्क पारद की निकासी की गई। सबसे अधिक माल १९१७ में १०७९१ फ्लास्क पारद निकाला गया, बाद में काम शिथिल पड़ गया तथापि सन् १९२१ में केलिफोर्निया की अपेक्षा टेक्सास में पारद अधिक निकाला गया। उसकी मात्रा ३१४४ फ्लास्क थी।

उटाह (Utah)

यहां पर मृत्तिका जाति के हिंगुल से बहुत मात्रा में पारद निकालने का अध्यवसाय होता रहा है। यहां पर सोने की खान में से ही पारद के खनिजों के निकास का पता लगा है। इस खान में टिमानाइट (Tiemannite Hgsse) और ओनाफ्राइट (Ono frite Hgsse) नामक पारदीय खनिजों से भी थोड़ा पारद निकाला गया। १९०९ में १११३ फ्लास्क पारद निकाला गया था।

वाशिंगटन Washington)

यहां के प्रान्तों में भी पारद की पर्याप्त निकासी हुई है तथापि १९१२ के उपरान्त पारद के भाव के गिर जाने से और निकासी का खर्च बढ़ जाने से इस का व्यवसाय मन्द पड़ गया है। स्पेन की सरकार अपने यहां पारद की निकासी अधिक बढ़ाने के लिये नवीन आविष्कारों का बाहुल्य से उपयोग कर रही है। ऐसी दशा में अमेरिका के संयुक्त राज्य के पारद व्यवसाय को अवश्य हानि पहुंचेगी। यहां पर १०% फीसदी वर्तमान में पारद निकासी पर कर लगता है। सन् १९१४ से १९२१ तक नीचे लिखी सारणी के अनुसार संयुक्त राज्य में पारद निकाला गया है। यह मान ७९ पाउण्ड फ्लास्क का है।

सन्	केलिफोर्निया	टेक्सास	निवादा	ओरेगन	ऐरजोना इडाहो, वाशिङ्गटन	टोटल	फ्लास्क
१९१४	११३०३	३१९६	२०८९	—	—	१६५६८	,,
१९१५	१४२८३	४४२३(अ)	२३२७	(क)	—	२१०३३	,,
१९१६	२१०४९	६३०६(ब)	२१९८	३७८	९(ख)	२९९३२	,,
१९१७	२३९३८	१०७९१	९९७	३१३	१२०(ग)	३६१९९	,,
१९१८	२२६६४	८४९१	१०४४	७०२	२२(घ)	३२८८३	,,
१९१९	१५२०९	५०१९	७९६	४३९	—	२१४१९	,,
१९२०	९८४९	३४३६	८३	२४	—	१३३९२	,,
१९२१	३०९९	३१२३	१००	—	१	६३३९	,,

(अ) इसमें ऐरिजोना कीनिकासी भी सम्मिलित है।
(ब) इसमें भी ऐरिजोना और ओरेगन की निकासी मिली हुई है।
(क) टेक्सोस के साथ निकासी दी गई है।
(ख) केवल ऐरिजोना को उत्पात्त है।
(ग) एरिजोना ४० वाशिगटन ७६ इडाहो ६ फ्लास्क है।
(घ) केवल इडाहो की निकासी है।

दक्षिण अमेरिका (South America)

ब्राजिल (Brazil) यहां पारद के खनिज पेट्रोलियं वाले शिलाजतु की भूमि में छोटे छोटे कणों के रूप में बिखरे पाये जाते हैं या सुवर्ण युक्त स्फटिक के साथ हिंगुल मिला पाया जाता है।

चिली (Chile)

इस देश में हिंगुल, रेड पाउडर (Red Powder oxide), गिरिसिन्दूर, प्राकृतिक पारद, टिट्रेहाईड्रेट (Tetrahedrite) आदि पारद के खनिज पाये जाते हैं। इन के सहयोग में रौप्यमाक्षिक, सुवर्णमाक्षिक, गरिक, कठिन स्फटिक आदि मिले रहते हैं। इसी जिले में प्राकृतिक पारद रजतमिश्रक चिरकाल से पारद निकालने के लिये ज्ञात रहा है। इसके आसपास के स्थानों में हिंगुल भी पाया जाता है।

कोलम्बिया (Columbia)

इस देश में हिङ्गुल सूक्ष्म चूर्ण के रूप में इधर उधर फैला हुआ पाया जाता है। रौप्यमाक्षिक और हिंगुल के साथ साथ प्राकृतिक पारद भी मिला पाया जाता है। सुवर्ण और रजत के प्राकृतिक पारदीय मिश्रक भी यहां पर प्राप्त होते हैं। यहां के खनिज हलकी जाति के होने के कारण पारद निकालने का व्यवसाय चिरकाल तक नहीं चल सकता है।

डचगायना (Dutchguina)

इस देश में ९ मील के फैलाव में हिङ्गुल का विस्तार मालूम हुआ और परीक्षा के लिये जो कूप खोदा गया उसमें २० फुट की गहराई पर उत्तम श्रेणी का खनिज प्राप्त हुआ। इस के उपरान्त यहाँ का विशेष विवरण प्रकाशित नहीं हुआ न व्यापार के लिये यहां कोई अध्यवसाय ही किया गया है।

यूकोडर (Ecuador)

यहां पर पारद निकालने का व्यवसाय बहुत प्राचीन काल से चलता है। आज कल खान में खनिज शेष नहीं है तथापि आसपास की भूमि में प्राकृतिक पारद पाया जाता है। कहीं कहीं पर हिङ्गुल भी मिला है।

पेरू (Peru)

पेरू के आदिम निवासी लोग हिङ्गुल को रङ्गसाज़ी में व्यवहार करते थे; ऐसी

किंवदन्ती प्रसिद्ध है । यहां पर पारद के खनिजों का बहुत बड़ा व्यापार रहा है । सन् १९६६ से १५७० के लगभग स्पेन राज्य ने २५०००० डयूकेटस (लगभग ११७००० पाउन्ड) देकर यहां की पारद की खान खरीद ली थी । यह खान २२० फुट लम्बी, १११ फुट चौड़ी और ४४५ फुट गहरी थी । बाद में निरन्तर कार्य होते रहने से यहाँ की गहराई १४०४ फुट तक होगई थी । इस खान का काम वे सिलसिले रहा, पर खुदाई का काम खूब होता रहा है । यहां पर एक स्थान की खुदाई मुरब्बा ४००० गज और उपरितल पर गहराई १०० से २० फुट की है । सन् १९०१ से १९०३ तक इस खान से माल इस प्रकार निकाला गया है ।

समय	टोटल पारद की उत्पत्ति	वार्षिक उत्पत्ति क्वि-न्टल्स सेट्रिकरन में	वार्षिक उत्पत्ति फ्ला-स्क के हिसाब में
१५०१—१७८९	१०४०४६९	२१८	६४२४
१७९०—१८४३	६५७६६	५५	१६३०
१८४४—१९०३	१००००	७०६	२२५

यहां पर की गहराई की नाप करने के लिये २१३ फुट गहरा कूप खोदने के लिये प्रयत्न किया गया किन्तु वह १९७ फुट पर जाकर विफल हुआ, तब अन्यत्र प्रयत्न किया गया । वहाँ पर ९८५ फुट गहराई तक पहुंच कर फिर पूर्व खनित भूमि के अन्तराल में पहुंचने का प्रयत्न किया जा रहा है । यदि यह खुदाई पूर्ण हो गई तो ३९३७ फुट की गहराई होगी । इस प्रयत्न के लिये भट्टियां (Furnaces) तय्यार हो गई हैं । इस खान के पास में उष्ण जल के कई स्रोत हैं ।

जुनिन (Junin)

इस विभाग के योलि (youli) ज़िले में स्फटिक की शिराओं में और रेणु पाषाणों में हिङ्गुल जमा हुआ पाया जाता है । हिङ्गुल के सहयोग में रौप्य माक्षिक पाया जाता है । यहां पर हिङ्गुल प्राप्ति के स्थान के समीप उष्ण जल का स्रोत है और उसकी तह पर प्राकृतिक गन्धक पाया जाता है । इस जिले में एक स्थान अन-काचस (Ancachs) कहलाता है । वहां पृथ्वी की शिराओं में गेलेना, यशद, रौप्य-माक्षिक और सुवर्णमाक्षिक के साथ साथ हिङ्गुल भी पाया जाता है ।

हुवानुको (Huanuco)

इस विभाग के चोन्टा (Chonta) ज़िले में तीन जमाव हैं जिनमें रौप्यमा-क्षिक, यशद, गेलेना, हिंगुल, टेट्राहिड्रेट (Tetrahedrite) आदि रेणु-पाषाण और स्फटिक-पाषाणों के साथ पाये जाते हैं ।

वीनेज़ुए (Venezue)

सन् १९०४ में यह सूचना प्रकाशित हुई थी कि यहाँ उष्ण स्रोत के जमाव के

साथ साथ हिङ्गुल भी पाया जाता है। हिंगुल के साथ रौप्यमाक्षिक भी मिलता है।

ब्योरेवार विवरण का कारण

ऊपर के पारदीय खनिज के ब्योरेवार विवरण के लिखने का उद्देश यह है कि रसशास्त्रोक्त पारद गन्धक सम्बन्धी अनेक बातों पर विचार करने के लिये उपयुक्त सामग्री प्राप्त हो सके और साथ ही हमारे देश के भ्रमणशील वैद्य उपयुक्त उष्णस्रोतों के पूज्य धार्मिक कुण्डों व तीर्थों पर जाकर गन्धक व हिंगुल या तत्सम्बन्धी अनेक जानकारियां प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकें। बद्रीनाथ की यात्रा में और विहार आदि अन्य प्रान्तों में अनेक उष्णस्रोत हैं और वहाँ पर धर्मार्थी प्रतिवर्ष तीर्थ करने जाते हैं। यदि उनका ध्यान इस तरफ आकर्षित होने लगे तो सम्भव है अनेक प्रकार के अमूल्य खनिजों का पता लग जावे और भविष्य में विदेशियों का मुँह न ताकना पड़े तथा हमारे ही देश में हमारे रसशास्त्र की सामग्री एकत्रित करने की सुलभता हो सके।

पारद के दोष

प्राकृतिक पारद, हिङ्गुलोत्थ पारद तथा उसके रसकर्पूरादि यौगिक दाहक विष हैं। पारद में अन्य धातु भी मिले रहते हैं। इन्हीं दोषों का दिखाने के लिये। इस ग्रन्थ में "विषं वह्निर्मलश्चेति दोषा नैसर्गिकास्त्रयः" इस तरह अशुद्ध पारद मारक होने से विष दोष तथा दाहक होने से वह्नि दोष और धात्वन्तर के संयोग होने से मल दोष से युक्त पारद माना गया है। इन दोषों से युक्त पारद के अथवा पारदीय यौगिक के सेवन करने से "रसे मरणसन्तापमूर्च्छानां हेतवः क्रमात्" इस क्रम से मरण, सन्ताप और मूर्च्छा आदि उपद्रव होते हैं।

यही बात आजकल के वैज्ञानिक भी मानते हैं घोष की मेटेरिया मेडिका (Materia Medica) के पृष्ठ नं० ४४६ में पारद प्रयोग के एक्यूट टाक्सिक एक्शन (Acute Toxic Action तात्कालिक पारदविष प्रभाव) के शीर्षक में लिखा है कि पारद के यौगिक विशेष कर रसकर्पूरादि (रसकर्पूर=कोरोसिव सबलिमेंट) रसपुष्प (केलोमल, सुधानिधि रस) और मुरधरस (ग्रे पाउडर) ये सेवन करने से कोष्ठ में भयङ्कर प्रभाव करते हैं जिससे वमन (Vomitign), विरेचन (Purging), शूल (Pain) रक्तातिसार (Bloody Stools), मूर्च्छा (Callapse) तथा अन्त में मरण (Death) भी होता है।

Acute Toxic Action-Acute poisoning is not common. Mercurials aspecialli the mercuric salts produce severe gastro-enteritis with Vomiting pains purging and bloody stools callapse and even death Materia Medica and Therapeutics By R. Ghosh Page 446.

इसी लिये पारद के संस्कारों की हमारे प्राचीन रसशास्त्रों में पूर्ण व्यवस्था की गई है जिससे ये दोष कम हों तथा द्रव्यान्तर संयोग से रोगनाशक व शक्तिप्रद गुण उत्पन्न हो जावें। पारद का विषप्रभाव तो स्वाभाविक है। जब खान से पारद निकलता है उस समय उसके साथ में संखिया, एन्टिमनी भी निकलते हैं। ये दोनों द्रव्य भयङ्कर विष हैं तथा उड़न शील भी हैं इस लिये पारद की शुद्धि करते समय इनकी अशुद्धियों को दूर करने का भी अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

पारद में दो यौगिक दोष नाग (Lead) और वङ्ग (Tin) के माने गये हैं। यथा—

यौगिकौ नागवङ्गौ द्वौ तौ जाड्याध्मानकुष्टदौ ?

ये आधुनिक दृष्टि से भी ठीक हैं। घोष की मेटेरिया मेडिका ऐण्ड थेराप्युटिक्स नामक ग्रन्थ में लिखा है कि पारद में लेड (Lead) टिन (Tin) तथा अन्य धातुओं की अशुद्धियां भी मिली रहती हैं यथा—Impurites—Lead Tin and other metals)।

अन्य धातुओं के विषय में लाडर ब्रण्टन नाम के विद्वान् ने अपने फार्माकोलोजी थेराप्युटिक्स एण्ड मेटेरिया मेडिका नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ६९१ पर लिखा है कि "Other metals especially Lead Arsenic and Antimony may be present

अर्थात् अन्य अशुद्धियों में लेड (नाग) आर्सेनिक (संखिया) एण्टिमनी (स्रोतोऽञ्जन) हो सकते हैं। इन अवतरणों से स्पष्ट है कि पारद में अन्य धातु मिले रहते हैं अत एव मल दोष को मानना सर्वथा सत्य तथा ज्ञातव्य है।

पारद के सप्तकञ्चुक

उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त पारद में सप्तकञ्चुक दोष भी माने गये हैं। इनको रसशास्त्र में औपाधिक माना गया है।

औपाधिकाः पुनश्चान्ये कीर्तिताः सप्तकञ्चुकाः ।
पर्पटी पाटिनी भेदी द्रावी मलकरी तथा ।
अन्धकारी तथा ध्वांक्षी विज्ञेयाः सप्तकञ्चुकाः ॥

सप्तकञ्चुक क्या है ?—आधुनिक रसायन और खनिज विज्ञान के परिशीलन से पता चलता है कि पारद प्रायः सब धातुओं से भारी है। जब यह अन्य धातुओं के साथ मिलता है जैसा कि इसी ग्रन्थ में कहा है—

काष्टौषध्यो नागे नागो वङ्गेऽथ वङ्गमपि शुल्वे ।
शुल्वं तारे तारं कनके कनकञ्च लीयते सूते ॥

तब उसे पारदीय मिश्रक (Allooy of Mercury) कहते हैं।

इस अवस्था में पारद के अन्दर मिली हुई धातुएँ प्रायः पारद के ऊपर आवरण की भांति तैरती रहती हैं। इस प्रकार के आवरण को कञ्चुक कह सकते हैं। पारद

के कन्चुक दोषों का प्राच्य पाश्चात्य ढङ्ग से रसतरङ्गिणी में अच्छा वर्णन कर दिया गया है।

यथा—धातवो रससंश्लिष्टा यदा विष्णुपदामृतम्।
गृह्णन्ति हि तदा तेषां कश्चिद्भागोऽवशीर्यते॥
ततश्चूर्णत्वमापन्ना रसमाच्छादयन्ति ते।
तेनावरणसाम्येन धातवः सूतसङ्गताः॥
कन्चुकाख्यां भजन्तीति प्राच्यपाश्चात्यसम्मतिः।
कैश्चिदेते कन्चुकाख्या दोषा औपाधिकाः स्मृताः॥

(रसतरङ्गिणी पृष्ठ २७)

पारद के मिश्रक अत्यधिक दबाव पर (on very High pressure) विश्लिष्ट हो जाते हैं अर्थात् पारद अलग निकल आता है। सम्भवतः इसी ज्ञान के आधार पर आयुर्वेद के रस शास्त्रज्ञों ने पारद को शुद्ध करने के लिये अनेक प्रकार की शोधन विधियों का आविष्कार किया है। साधारणतया पारद लेटिन गेबर (The Latin Geber) के लेखानुसार वङ्ग, सुवर्ण, ताम्र, रजत और लोहे के साथ मिलता है, तथा इसके बाद के लेखकों के मतानुसार पारद यशद (Zinc), नाग (Lead) और पेलेदियं (Palladium) नामक धातु के साथ भी मिलता है। लौह के साथ कठिनता से मिलता है। बाज़ार में ये मिश्रक व्यापार के लिये आते हैं। पारद तथा वङ्ग (Tin) का मिश्रक दर्पण पर कलई करने के काम आता है। सुवर्ण और रजत के द्वारा बने हुए पारदीय मिश्रक सोनहरी, रूपहरी, गिलट की कारीगरो में उपयुक्त होते हैं। यशद और वङ्ग के साथ बने हुए पारदीय मिश्रक विद्युत् यन्त्रों की रबर पर चढ़ाने के लिये तैय्यार होते हैं। इसी प्रकार भिन्न २ मात्रा से बने हुए रजत, ताम्र, वङ्ग और कभी २ सुवर्ण तथा प्लेटिनम के द्वारा बने हुए पारदीय मिश्रक दांतों की खातों के भरने के काम में आते हैं। इन के अतिरिक्त पोटासियं (Potassium) सोडियम् (Sodium) अमोनियम् (Ammonium) केडमियम् (Cadmium) के अमाल्गम् (Amalgams) भी तैय्यार होते हैं।

आधुनिक विद्वानों ने पारद पर वायु विशेष (गेस) का भी कन्चुक (आवरण) माना है। यह आवरण अत्यन्त सूक्ष्म होता है और विशिष्ट यन्त्र द्वारा ही परीक्षित या दृष्टिगत हो सकता है।

'J. J. Jaak and R. Sissingh have shown that a layer of absorbed gas only one Molecule thick can be dected optically on the surface of Mercury. (Monograph on Mercury ores Pages 15)

इन दोषों के अतिरिक्त हमारे अन्य रस ग्रन्थों में पारद के अन्दर अन्य दोष भी

माने गये हैं परन्तु उनका कोई विशेष उपयोग ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि जिनका आधिक्य से विचार किया जाना आवश्यक हो। भूमिज, गिरिज, वारिज जो दोष माने हैं वे सरलता से समझ में आ सकते हैं। जिस भूमि से पारद निकला उसके संसर्गज दोष, जिस स्रोत के जल में घुल कर ऊपर आकर हिङ्गुल के रूप में बना उसके दोष भी पारद में रहना सम्भव है। इस लिये शुद्धि के समय जहां से खनिज पारद एकत्रित किया गया हो वहां के स्थान के संसर्ग से होने वाले सब दोषों का परिहार अवश्य कर लेना चाहिये। कितना सूक्ष्म विचार है। किन्तु दुःख है कि आजकल हम लोगों को यह भी पता लगाने की इच्छा नहीं कि बाजार में जो वर्तमान पारद आता है उसका उद्गम देश कहां पर है और उस देस में पारद के साथ सहयोगी धातु कौन २ निकलते हैं तथा उनका पारद पर क्या प्रभाव पड़ता है, अथवा उस की शुद्धि क्यों की जाती है और शुद्धि के द्रव्यों का पारद के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है। हम पारद के सब कृत्य केवल इस लिये करते हैं कि शास्त्र की आज्ञा है। इस प्रकार की उदासी का फल यह हो रहा है कि अन्धकार में प्रयत्न किया जा रहा है। करने वाले को बिना ज्ञान के काम करते रहने से उद्देश्य हीन की तरह श्रान्ति हो जाती है और वह उस प्रयत्न से विरत हो जाता है। यही कारण है कि वैद्य समाज पारद के बचे हुए अष्टकर्म को भी यथाविधि करने में उदासीन सा हो गया है। हमारे पूर्वाचार्यों ने पारद पर अथक परिश्रम कर उसके अनेक अद्भुत गुणों का ज्ञान प्राप्त किया और वह ज्ञान ऐसा स्थिर तथा व्यापक है कि प्रत्यक्षवादी आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक भी अनेक परीक्षाएं कर प्रायः उसी फल पर पहूंचे हैं। इस समय पौर्वात्य और पाश्चात्य ज्ञान को एकत्रित करके आगे बढने के लिये प्रयत्न करना परमावश्यक है। जापान इसी कारण उन्नत हो रहा है तथा सारा संसार उसका मान करके उसके आविष्कारों से लाभ उठा रहा है। अभी हाल ही में उसने मोती को शीघ्र पैदा करने की क्रिया के आविष्कार से संसार में नवयुग उत्पन्न कर दिया है तथा "स्वातौ सागरशुक्तिकुक्षिपतितं तज्जायते मौक्तिकम्" की युक्ति का शतशः खण्डन कर अरबों का लाभ प्राप्त कर रहा है।

पारद के भेद

रसो रसेन्द्रः सूतश्च पारदो मिश्रकस्तथा।
इति पञ्चविधो जातः क्षेत्रभेदेन शम्भुजः॥

इस प्रकार पारद के ५ भेद माने गये हैं। रस नामक पारद रक्त वर्ण का होता है इस को रेड आकसाइड आफ् मर्करी (Red oxide of Mercury) कह सकते हैं। रसेन्द्र नामक पारद रूक्ष तथा श्याव वर्ण का होता है इसको इम्प्योर (Impure) कह सकते हैं। सूत नामक पारद रूक्ष तथा कुछ पीतवर्ण की आभा से युक्त होता है

इसको यलो आक्साइड आफ मर्करी (yellow oxide of Mercury) कहना चाहिए। पारद नामक चौथे प्रकार का पारा चञ्चल तथा श्वेत वर्ण वाला होता है अर्थात् इसका वर्ण गली हुई चांदी के समान होता है यह अल्प प्राप्य है। इसको नेटिव मर्करी (Native Mercry) कहना चाहिए। मिश्रक नामक पारद अन्य धातुओं के साथ मिला रहता है तथा मोर के पङ्ख की चन्द्रिका के समान चमकदार होता है इसको मिश्रक कहते हैं अर्थात् Mix with Lead zinc and Tin इनके साथ मिश्रिक रूप में प्राप्त होता है।

शुद्ध पारद के लक्षण।

शुद्ध पारद चांदी के समान श्वेत वर्ण का होता है। साधारण तापक्रम पर यह द्रवरूप में रहता है। हिलाने से इसके गोल कण बनते हैं। तथा पृथ्वी पर पात्र से गिरा देने पर छोटे २ कणों में विभक्त होकर फैल (बिखर) जाता है। इन विखरे हुए कणों को फिर मार्जनी या वस्त्र से एकत्रित करके पात्र में भर सकते हैं। पारद अत्यन्त शीतांश पर सफेद रांगे (Tin) का सा ठोस हो जाता है और वह चाकू से काटा जा सकता है। द्रवावस्था में पारद की पतली तह (सतह) पारदर्शक (ट्रान्स पेरेण्ट Transparent) या पारभासक (ट्रान्स ल्यू सेण्ट Translucent) होती है तथा उसमें नीले रङ्ग की आभा दिखाई देती है। रस शास्त्रों में शुद्ध पारद के ये ही लक्षण बताये हैं।

यथा—"अन्तः सुनीलो बहिरुज्वलो यो,
मध्याह्नसूर्यप्रतिमप्रकाशः
शस्तः..............(र० सा० सं०)

थोड़ा सा पारद एक कांच या चीनी के बर्तन में रख कर उस पर ऊपर की ओर से पानी की तेज़ धार गिराई जाय तो पारद के बुलबुले (Bubbles) पानी की सतह पर तैरते हुए दिखाई देते हैं और इन में नीली आभा दिखाई देती है तथा वे शीघ्र फूट कर ठोस पारद कण के रूप में बदल जाते हैं।

पारद का आपेक्षिक घनत्व (Relative Density) जल की अपेक्षा १३६ है। पारद ३५७ से ३५९ डिग्री की उष्णता पर उड़ने लगता। पारद की वाष्प रङ्ग रहित होती है। रसायन शास्त्र के नियमानुसार यद्यपि पारद बहुत ऊंची डिग्री के तापक्रम पर उड़ता है तथापि साधारण तापक्रम (Normal Temperature) पर अत्यन्त स्वल्प मात्रा में उड़ता देखा गया है। एक चीनी के बर्तन में पारद रखकर ऊपर सुवर्ण के पत्र के ढकने या लटकाने से दो तीन मास में इसकी मन्द उड़न शीलता की परीक्षा हो जाती है। इतने समय में सुवर्ण के पत्र पर पारद लगा दिखाई देगा। पारद द्रव होते हुए भी शक्कर, गन्धक, और खड़िया आदि चूर्ण द्रव्यों के साथ

घोटने से अत्यन्त सूक्ष्म कणों में विभक्त हो जाता है। इसे पारद की मूर्छना या मरण (Extinction or Deadning) कहते हैं।

अशुद्ध पारद के लक्षण—

साधारणतया बाजार का पारद किसी विशेषांश में अन्य धातुओं से संयुक्त रहता है। इस लिये यदि किसी साफ़ चीनी या कांच के बर्तन में थोड़ा सा पारद रख कर उसे तिरछा करें तो पारद के कण पुच्छयुक्त दिखाई देंगे। अशुद्ध पारद को यदि वायु में हिलावें तो पारद के ऊपरी भाग में काले से चूर्ण की सतह जम जावेगी जिससे पारद के छोटे २ कण आवृत हो जावेंगे। यह रजत पारद के साथ मिले हुए धातुओं के आतञ्चन (आक्सिडेशन Oxidation) होने से उत्पन्न होती है। यही कञ्चक दोष माना गया है। प्रायः अशुद्ध पारद का स्वरूप धूएं के समान पाण्डु और चित्र विचित्र होता है जैसा कि कहा भी है।

"अथ धूम्रः परिपाण्डुरश्च चित्रो न योज्यो रसकर्मसिद्धौ" इस लिये इस प्रकार के पारद को औषध या रसकर्म में अच्छी प्रकार से शुद्ध किये बिना प्रयुक्त न करें।

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनो र्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतरसरत्नसमुच्चये
पण्डितप्रवरेण श्रीकृष्णात्मजेन अम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचित-
रत्नोज्ज्वलाख्यभाषाटीकान्तर्गतः खनिजविज्ञानाद्यनेक-
रसग्रन्थसङ्गृहीतः पारदीयविमर्शः समाप्तः ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ महारसाः—

अभ्रवैक्रान्तमाक्षीकविमलाद्रिजसस्यकम् ।
चपलो रसकश्चेति ज्ञात्वाऽष्टौ संग्रहेद्रसान् ॥ १ ॥

चार प्रकार का अभ्रक (श्वेत, अरुण, श्याम, पीत) तीन प्रकारका (श्वेत रक्त, नील,) वैक्रान्त, दो प्रकार का माक्षिक (स्वर्ण और रौप्य) विमल (माक्षिक विशेष) या मतान्तर से सोनामाखी (माक्षिक), रूपामाखी (विमल) शिलाजीत, तुत्थ, चपल (विस्मथ) खर्पर, ये आठ महारस हैं। इन्हें अच्छी तरह से लक्षणों से पहचान कर वैद्य संग्रह करे ॥ १ ॥

अथ गन्धाभ्रयोः स्वरूपम्—

देव्या रजो भवेद्गन्धो धातुः शुक्रं तथाऽभ्रकम् ।

पार्वती देवी का आर्तव शोणित गन्धक है और ब्रह्मा जी का वीर्य अभ्रक है।

अथ अभ्रकगुणाः—

गौरीतेजः परममसृतं वातपित्तक्षयघ्नं
प्रज्ञाबोधि प्रशमितरुजं वृष्यमायुष्यमग्र्यम् ।
बल्यं स्निग्धं रुचिदमकफं दीपनं शीतवीर्यं
तत्तद्योगैः सकलगदहृद्व्योम सूतेन्द्रबन्धि ॥ २ ॥
राजहस्तादधस्ताद्यत्समानीतं घनं खनेः ।
भवेत्तदुक्तफलदं निःसत्वं निष्फलं परम् ॥ ३ ॥

अभ्रक वात, पित्त और क्षय को नष्ट करता है, बुद्धि को बढ़ाता है, सम्पूर्ण व्याधियों को नष्ट करता है, अमृत तुल्य गुण कारक है, वृष्य है, आयु के लिये हित कर है, बल दायक और रुचिवर्धक है, स्निग्ध है तथा पाचक वन्हि को बढ़ाता है, शीतवीर्य है, कफ को नष्ट करता है, भिन्न २ योगों में मिला कर देने से समस्त व्याधियों को नष्ट करता है। अभ्रक पारद का नियमन करता है। जो अभ्रक आठ हस्त से भी गहरी खोदी हुई खान से निकलता है वही उत्तम सर्व गुणों को करता है, किन्तु सार रहित और राजहस्त प्रमाण से रहित खान से (उपर से) निकला हुआ ठीक नहीं है ॥ २-३ ॥

विमर्शः—अभ्रक को लैटिन में मायका (Mica) तथा अंग्रेजी में टाल्क (Talk) और ग्लिम्मर (Glimmer) कहते हैं। यह भी खानों से निकलता है। उपलब्धि- यह विहार प्रान्त में हजारीबाग और गिरडो तथा बङ्गाल में रानीगञ्ज के आसपास की कोयले की खानों के अन्दर मिलता है। तथा मद्रास के निल्लोर जिले में भी कहीं २ मिलता है और सिन्ध, तथा बम्बई प्रेसीडेन्सी के धारवाड़ ज़िले में भी प्राप्त होता है। पञ्जाब में कांगड़ा ज़िले के नूरपुर तहसील की खानों में से भस्म करने योग्य अच्छा कृष्णाभ्रक मिलता है। राजपूताना में किशनगढ तथा अजमेर के नजदीक वाले पहाड़ों में भी इसकी कहीं कहीं खाने हैं। यू० पी० में अल्मोड़ा तथा बागेश्वर में भी कहीं २ मिलता है। अभ्रक के पिनाक, नाग, मण्डूक और वज्राभ्रक इन चार भेदों में वज्राभ्रक को लोहाभ्रक का अपर पर्य्याय समझना चाहिए क्योंकि वज्राभ्रक के इन

सुप्रशस्तं कठोराङ्गं गुरु कज्जलसन्निभम्।
यन्न शब्दायते वह्नौ नैवोच्छूनं भवेदपि॥
सदाकरसमुद्भूतं वज्रेति प्रथितं घनम्॥ (इति र० सा० सं०)

तथा—यदञ्जननिभं क्षिप्तं न वह्नौ विकृतिं व्रजेत्।
वज्रसंज्ञं हि तद् योज्यमभ्रं सर्वत्र नेतरत्॥ (इति र० चि०

लक्षणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जो अभ्रक कठोर (अधिक वजनी) तथा कज्जल या काले अञ्जन के समान वर्ण का हो वह वज्राभ्रक औषध में प्रशस्त माना गया है तथा आजकल यह निश्चित हो गया है कि जिस अभ्रक में लोह का अंश अधिक होता है वही अधिक वजनी तथा काले वर्ण का होता है। इस प्रकार के अभ्रक को बायो टाईट (Bio Tite) कहते हैं। और भी अभ्रक की अनेक जातियां मिलती हैं किन्तु रसग्रन्थों में औषध के लिये वज्राभ्रक (लोहाभ्रक) से बढकर उनकी महत्वता नहीं है इस लिये यहां पर वर्णन नहीं किया गया है।

उत्पत्ति—"देव्या रजो भवेद्गन्धो धातुः शुक्रं तथाऽभ्रकम्"

अर्थात् ब्रह्माजी का शुक्र अथवा पार्वती देवी का धातुस्वरूप जो शुक्र है वही अभ्रक है। इससे यह दिखाया गया कि अभ्रक की उत्पत्ति का सम्बन्ध पार्वती देवी से है। इस आशय का पार्वती अर्थात् पर्वते भवा या पर्वतस्य इयं पार्वती (पर्वत सम्बन्धिनी पृथिवी या पर्वतसन्निकट पृथिवी अर्थात् पर्वत (पहाड़) की खान का धातु अर्थात् परम तत्व (रासायनिक परिवर्तनादिक विधियों से बना हुआ) ही अभ्रक है। इस प्रकार के अर्थ की सत्यता में प्रथम कारण तो "सदाकरसमुद्भूतं वज्रेति प्रथितं घनम्, यह तथा राजहस्तादधस्ताद्यत् समानीतं घनं खनेः" आदि अपने दूरदर्शी, त्रिकाल विज्ञानी रसशास्त्र के आचार्य की सूत्रबद्धकृति ही प्रमाण है। तथा दूसरा कारण आधुनिक युग के वैज्ञानिकों की प्रत्यक्ष करके दिखाई हुई विज्ञान चर्चा को समझना चाहिए।

अथाभ्रभेदाः—

पिनाकं नागमण्डूकं वज्रमित्यभ्रकं मतम् ।
श्वेतादिवर्णभेदेन प्रत्येकं तच्चतुर्विधम् ॥ ४ ॥

अभ्रक पिनाक, नाग, मण्डूक और वज्र इन भेदों से चार प्रकार का है, और ये हरेक चारों भेद चार २ प्रकार के हैं। जैसे श्वेत, अरुण, श्याम और पीत। कुछ लोगों का मत है कि अभ्रक श्वेतादि भेद से चार तरह का है किन्तु श्याम (कृष्ण) अभ्रक पिनाकादि चार भेदों वाला होता है ॥ ४ ॥

अथ पिनाकादीनां लक्षणानि—

पिनाकं पावकोत्तप्तं विमुञ्चति दलोच्चयम् ।
तत्सेवितं मलं बद्ध्वा मारयत्येव मानवम् ॥ ५ ॥
नागाभ्रं नागवत्कुर्याद्ध्वनिं पावकसंस्थितम् ।
तद्भुक्तं कुरुते कुष्ठं मण्डलाख्यं न संशयः ॥ ६ ॥
उत्प्लुत्योत्प्लुत्य मण्डूकं ध्मातं पतति चाभ्रकम् ।
तत्कुर्यादश्मरीरोगमसाध्यं शस्त्रतोऽन्यथा ॥ ७ ॥
वज्राभ्रं वह्निसन्तप्तं निर्मुक्ताशेषवैकृतम् ।
देहलोहकरं तच्च सर्वरोगहरं परम् ॥ ८ ॥

पिनाक अभ्रक अग्नि में तपाने से पत्ररूप में पृथक हो जाता है। उस को सेवन करने से मल का अवरोध होता है। इससे मृत्यु भी हो जाती है। नागाभ्रक अग्नि पर रखने से सर्प की तरह शब्द (फूं फूं) करता है। उसके सेवन से मण्डलाकार कुष्ठ उत्पन्न होता है। मण्डूक संज्ञक अभ्रक अग्नि में तपाने पर मण्डूक के समान उछल २ कर भागता है। उसके सेवन करने से दवासे असाध्य परन्तु शस्त्रादि कर्म से साध्य अश्मरी रोग उत्पन्न होता है। वज्र संज्ञक अभ्रक अग्नि में तपाने पर भी किसी भी विकृति को प्राप्त नहीं होता है। वह शरीर को अत्यन्त दृढ बनाता है तथा सब रोगों का नाशक है ॥ ५–८ ॥

अथ वर्णभेदेनाभ्रकस्य भेदास्तेषां क्रियाविषयश्च—

श्वेतं रक्तं च पीतं च कृष्णमेवं चतुर्विधम् ।
श्वेतं श्वेतक्रियासूक्तं रक्ताभं रक्तकर्मणि ॥
पीताभमभ्रकं यत्तु श्रेष्ठं तत्पीतकर्मणि ॥ ९ ॥

चतुर्विधं वरं व्योम यद्यप्युक्तं रसायने।
तथाऽपि कृष्णवर्णाभ्रं कोटिकोटिगुणाधिकम्॥ १०॥

अभ्रक श्वेत, पीत, रक्त और कृष्ण इन चार भेदों में प्राप्त होता है। श्वेत अभ्रक चांदी बनाने या उसके मारण में और श्वित्र कुष्ठों को दूर करने में या अग्नि से जलने पर श्वेत चर्म को दूर करने में प्रयुक्त होता है। रक्त अभ्रक हिङ्गुलादि लाल वस्तुओं के शोधन अथवा रक्त की वृद्धि और शुद्धि में प्रयुक्त होता है। पीला अभ्रक स्वर्णादि पीत वस्तुओं के मारण में या पाण्डु रोग से पीत देह को सुधारने में प्रयुक्त होता है। यद्यपि चारों प्रकार का अभ्रक रसायन के लिये श्रेष्ठ है तथापि कृष्ण वर्ण का अभ्रक करोड़ों फल देने वाला होता है॥ ९-१०॥

स्निग्धं पृथुदलं वर्णसंयुक्तं भारतोऽधिकम्।
सुखनिर्मोच्यपत्रं च तदभ्रं शस्तमीरितम्॥ ११॥

स्निग्ध, बड़े २ पत्रवाला, श्रेष्ठ वर्णयुक्त, वजन में भारी और जिसके पत्र सुख से अलग हो जांय वह अभ्रक श्रेष्ठ है॥ ११॥

अथ ग्रासयोग्याभ्रम्—

सचन्द्रिकं च किट्टाभं व्योम न ग्रासयेद्रसः।
ग्रसितश्च नियोज्योऽसौ लोहे चैव रसायने॥ १२॥

जो अभ्रक चमकदार हो और लोह के किट्ट सदृश हो वह पारद में नहीं मिल सकता है। और यदि पारे से ग्रसित हो जाय तब उसे लोहादि योगों में और रसायन कर्म में ग्रहण करना चाहिए॥ १२॥

निश्चन्द्रसचन्द्राभ्रयोर्गुणदोषौ—

निश्चन्द्रिकं मृतं व्योम सेव्यं सर्वगदेषु च।
सेवितं चन्द्रसंयुक्तं मेहं मन्दानलं चरेत्॥ १३॥

चमक से रहित अभ्रक की भस्म सेवन करानी चाहिए। निश्चन्द्रीकरण क्रिया रहित अभ्रक भस्म का सेवन करने से मनुष्य प्रमेह और मन्दाग्नि को प्राप्त होता है॥ १३॥

अथाशुद्धाभ्रस्य दोषाः—

यैरुक्तं युक्तिनिर्मुक्तैः पत्राभ्रकरसायनम्।
तैर्दृष्टं कालकूटाख्यं विषं जीवनहेतवे॥ १४॥

सत्त्वार्थं सेवनार्थं च योजयेच्छोधिताभ्रकम् ।
अन्यथा त्वगुणं कृत्वा विकरोत्येव निश्चितम् ॥ १५ ॥

युक्तियों से हीन जिन मनुष्यों ने पत्राभ्रक सेवन करने को कहा है उन्होंने जीवन की रक्षा के लिये कालकूट नामक विष खाने को कहा है। सत्व निकालने के लिये और औषध रूप में सेवन करने के लिये शोधन किये हुए अभ्रक का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा न करने से गुणों के बदले निश्चय करके विकार ही पैदा करता है ॥ १४–१५ ॥

अथाभ्रशोधनमारणे—

प्रतप्तं सप्तवाराणि निक्षिप्तं काञ्जिकेऽभ्रकम् ।
निर्दोषं जायते नूनं प्रक्षिप्तं वाऽपि गोजले ॥ १६ ॥
त्रिफलाक्वथिते चापि गवां दुग्धे विशेषतः ।
ततो धान्याभ्रकं कृत्वा पिष्ट्वा मत्स्याक्षिकारसैः ॥ १७ ॥
चक्रीं कृत्वा विशोष्याथ पुटेदर्धेभके पुटे ।
पुटेदेवं हि षड्वारं पौनर्नवरसैः सह ॥ १८ ॥
कलांशटङ्कणेनापि सम्मर्द्य कृतचक्रिकम् ।
अर्धेभाख्यपुटैस्तद्वत्सप्तवारं पुटेत्खलु ॥ १९ ॥
एवं वासारसेनापि तण्डुलीयरसेन च ।
प्रपुटेत्सप्तवाराणि पूर्वप्रोक्तविधानतः ॥
एवं सिद्धं घनं सर्वयोगेषु विनियोजयेत् ॥ २० ॥

अभ्रक को वन्हि में अत्यन्त तप्त करके काञ्जी, गोमूत्र, त्रिफला क्वाथ, तथा विशेष कर गौ के दुग्ध, इन सब में सात २ वार निर्वापित करना चाहिए। ऐसी शुद्धि से सब दोषों से अभ्रक रहित हो जाता है। ध्यान रहे कि प्रत्येक निर्वापन में काञ्जी इत्यादि द्रव पदार्थ वदल दें और ये पदार्थ इतनी मात्रा में लें जितनी में तप्त अभ्रक अच्छी तरह डूब जाय। बाद में धान्याभ्रक करके मत्स्याक्षि (हिलमोचिका वा गण्ड दूर्वा) के रस में खूब पीस कर टिकिया बना कर सुखा ले बाद में अर्ध-गज पुट में पुट देना चाहिए। इसी तरह पुनर्नवा (साठी) के रस में घोट कर ६ पुट देना चाहिए। फिर इसी तरह अभ्रक की अपेक्षा सोलवें भाग टङ्कण के साथ घोट कर सात पुट देवें। इसी तरह अडूसे के रस में घोट कर सात पुट दें और

चोलाई के रस में भी घोट कर सात पुट दें। इस तरह भस्म रूप में सिद्ध हुआ अभ्रक सब कामों में गुणकर होता है॥ १६–२०॥

अथ धान्याभ्रकम्—

चूर्णाभ्रं शालिसंयुक्तं वस्त्रबद्धं हि काञ्जिके।
निर्यातं मर्दनाद्वस्त्राद्धान्याभ्रमिति कथ्यते॥ २१॥

शुद्ध अभ्रक का चूर्ण चतुर्थांश शाली (धान) में मिलाकर वस्त्र में बांधके पोट्टली बना लें। फिर उस पोट्टली को काञ्जी में डालकर मर्दन करने पर वस्त्र से निकला हुआ अभ्रक धान्याभ्रक कहलाता है॥ २१॥

अथ धान्याभ्रमारणम्—

धान्याभ्रं कासमर्दस्य रसेन परिमर्दितम्।
पुटितं दशवारेण म्रियते नात्र संशयः॥
तद्वन्मुस्तारसेनापि तन्दुलीयरसेन च॥ २२॥

धान्याभ्रक को कासमर्द (कसोञ्जी) के रस से घोट कर दश पुट देने से मृत (भस्म रूप) हो जाता है। इसी तरह मुस्ते के रस में घोट कर दस पुट देना चाहिए, तथा चोलाई के रस में घोट कर दस पुट देने से मृत हो जाता है॥२२॥

अथाभ्रमारणम्—

पीतामलकसौभाग्यपिष्टं चक्रीकृताभ्रकम्।
पुटितं षष्ठीवाराणि सिन्दूराभं प्रजायते॥
क्षयाद्यखिलरोगघ्नं भवेद्रोगानुपानतः॥ २३॥

अभ्रक में सोलवां भाग की मात्रा में सोहागा मिला कर हलदी तथा आंवले के रस में घोट कर चक्रिका बनाकर छ २ वार पुट देने से सिन्दूर के समान रक्त वर्ण वाली भस्म हो जाती है। यह भस्म क्षय वगैरे सब रोगों को यथानुपान में देने से नष्ट करती है॥ २३॥

मतान्तर—

वटमूलत्वचः क्वाथैस्ताम्बूलीपत्रसारतः।
वासामत्स्याक्षिकाभ्यां वा मीनादया सकठिल्लया॥ २४॥
पयसा वटवृक्षस्य मर्दितं पुटितं घनम्।
भवेद्विंशतिवारेण सिन्दूरसदृशप्रभम्॥ २५॥

धान्याभ्रक को वट के मूल को छाल के काढ़े में घोटकर अथवा ताम्बूल पत्र के स्वरस में घोटकर या अडूसा और हिलमोचिका के रस में घोटकर या करेला और गण्डदूर्वा (मत्स्याक्षी) के रस में घोटकर २० पुट देने से सिन्दूर सदृश भस्म हो जाती है। केवल वट के दुग्ध में भी घोट कर २० पुट देने से भस्म हो जाती है॥ २४-२५ ॥

अथाभ्रकसत्वपातनम्—

पादांशटङ्कणोपेतं मुसलीरसमर्दितम् ।
रुन्ध्यात्कोष्ठ्यां दृढं ध्मातं सत्त्वरूपं भवेद्धनम् ॥ २६ ॥

अभ्रक में चतुर्थांश रूप में टङ्कण मिलाकर ताल मूली (मुसली) के रस में घोट कर कोष्ठिका यन्त्र में रख कर फूंकने से सत्व निकल आता है।

कोष्ठिका यन्त्रल०

षोडशाङ्गुलविस्तीर्णं हस्तमात्रायतं समम् ।
धातुसत्वनिपातार्थं कोष्ठिकं परिकीर्तितम् ॥ २६ ॥

प्रकारान्तर—

कासमर्दघनध्वानवासानां च पुनर्भुवः ।
मत्स्यादयाः काण्डवल्ल्याश्च हंसपाद्या रसैः पृथक् ॥२७॥
पिष्ट्वा पिष्ट्वा प्रयत्नेन शोषयेद्धर्मयोगतः ।
पलं गोधूमचूर्णस्य क्षुद्रमत्स्याश्च टङ्कणम् ॥ २८ ॥
प्रत्येकमष्टमांशेन दत्त्वा दत्त्वा विमर्दयेत् ।
मर्दने मर्दने सम्यक्शोषयेद्रविरश्मिभिः ॥ २९ ॥
पञ्चाजं पञ्चगव्यं वा पञ्चमाहिषमेव च ।
क्षिप्त्वा गोलान्प्रकुर्वीत किञ्चित्तिन्दुकतोऽधिकान् ॥ ३० ॥
पयो दधि घृतं मूत्रं सविट्कं चाजमुच्यते ।
अधःपातनकोष्ठ्यां हि ध्मात्वा सत्त्वं निपातयेत् ॥ ३१ ॥

कसौदी, नागरमोथा, धनियां, अडूसा, और पुनर्नवा, हिलमोचिका, करेला, हंसपादी इन वस्तुओं के रस में अभ्रक को पृथक् पृथक् घोट कर सूर्य की गर्मी से सुखाले और गेहूं का चूर्ण १ पल तथा मत्स्याक्षी (गण्डदूर्वा) और सोहागा ये प्रत्येक अभ्रक से अष्टमांश लेकर घोटना चाहिए। फिर सूर्य की किरणों से सूख

जाने पर बकरी का दुग्ध, दही, घृत, मूत्र और मिंगनी (मल) ये पांच वस्तु मिलाकर या पञ्चगव्य अथवा भैंस की दुग्धादि पांच वस्तु मिलाकर एक कर्ष से अधिक मोटे गोले बनाकर अधःपातन कोष्ठिका यन्त्र में रख कर फूंकने से अभ्रक का सत्व निकल जाता है। दुग्ध, दही, घी, मूत्र और गोबर इनका मिश्रण पञ्चगव्य है ॥ २७–३१ ॥

अथ किट्टात्सत्वग्रहणम्—

कोष्ठयां किट्टं समाहृत्य विचूर्ण्य खकान्हरेत् ।
तत्किट्टं स्वल्पटङ्केन गोमयेन विमर्द्य च ॥ ३२ ॥
गोलान्विधाय संशोष्य घर्मे भूयोऽपि पूर्ववत् ।
भूयः किट्टं समाहृत्य मृदित्वा सत्त्वमाहरेत् ॥ ३३ ॥

पश्चात् मूषा में से शेष अभ्रक के किट्ट को निकाल कर चूर्ण कर के उस में आठवां भाग टङ्कण और समभाग गौ का गोबर मिलाकर मर्दन करे और फिर घाम में शुष्क कर पूर्वानुसार सत्व निकाल ले, फिर भी किट्ट शेष रहे तो इसी रीति से टङ्कण और गोबर मिलाकर सत्व निकालना चाहिए ॥ ३२–३३ ॥

अथ सत्वशोधनम्—

अथ सत्त्वकणांस्तांस्तु काथयित्वाऽम्लकाञ्जिकैः ।
शोधनीयगणोपेतं मूषामध्ये निरुध्य च ॥ ३४ ॥
सम्यग्द्रुतं समाहृत्य द्विवारं प्रधमेद्धनम् ।
इति शुद्धं भवेत्सत्त्वं योज्यं रसरसायने ॥ ३५ ॥

बाद में अभ्रक के सत्व के कणों का खट्टी काञ्जी से क्वाथ करके फिर शोधन गण की वस्तुओं के रस में घोट कर गोले बना कर मूषा यन्त्र में बन्द कर के फूंके। इस तरह द्रुत हुए सत्व को द्वितीय वार शोधन गण की औषधियों से घोट कर गोले बनाले पश्चात् उन्हें मूषा यन्त्र में बन्द करके फूंकने से वह सत्व शुद्ध हो जाता है और रस तथा रसायन के काम में आता है ॥ ३४–३५ ॥

अथ सत्वानां मृदुकरणम्—

मधुतैलवसाज्येषु द्रावितं परिवापितम् ।
मृदु स्याद्दशवारेण सत्त्वं लोहादिकं खरम् ॥ ३६ ॥

अभ्रक सत्व को अग्नि संयोग से द्रवित कर के शहद, तैल, वसा और घृत में

दश वार निर्वापित करने से मृदु हो जाता है। इसी तरह कठिन लोहादि धातु भी मृदु होते हैं ॥ ३६ ॥

अथाभ्रमारणम्—

पट्टचूर्णं विधायाथ गोघृतेन परिप्लुतम्।
भर्जयेत्सप्तवाराणि चुल्लीसंस्थितखर्परे ॥ ३७ ॥
अग्निवर्णं भवेद्यावद्वारं वारं विचूर्णयेत्।
तृणं क्षिप्त्वा दहेद्यावत्तावद्वा भर्जनं चरेत् ॥ ३८ ॥
ततः सगन्धकं पिष्ट्वा वटमूलकषायतः।
पुटेद्विंशति वारेण वाराहेण पुटेन हि ॥ ३९ ॥
पुनर्विंशतिवाराणि त्रिफलोत्थकषायतः।
त्रिफलामुण्डिकाभृङ्गपत्रपथ्याक्षमूलकैः ॥ ४० ॥
भावयित्वा प्रयोक्तव्यं सर्वरोगेषु मात्रया।
सत्त्वाभ्रात्किंचिदपरं निर्विकारं गुणाधिकम् ॥ ४१ ॥
एवं चेच्छतवाराणि पुटपाकेन साधितम्।
गुणवज्जायतेऽत्यर्थं परं पाचनदीपनम् ॥ ४२ ॥

अभ्रक सत्व को कपड़े से छान कर या पत्थर पर चूर्ण कर के गोघृत मिला कर चूल्हे पर स्थित कटाह इत्यादि पात्र में भूने। जब तक अग्नि के समान लाल वर्ण का न हो तब तक उस सत्व का कड़ाह में घोट कर चूर्ण करता जाय या कटाह में तृण डालने से वे जलने लगे तब तक घोट २ के चूर्ण करता जाय। इस तरह सात बार भूनना चाहिए। फिर उसमें समान मात्रा में शुद्ध गन्धक डाल कर वट के मूल के कषाय या क्वाथ से घोट कर वाराह संज्ञक पुट द्वारा २० पुट देवे। प्रत्येक पुट में गन्धक मिलाना चाहिए। फिर त्रिफले के क्वाथ या कषाय से घोट कर उसी तरह २० पुट देना चाहिए। पश्चात् त्रिफला, मुण्डी, भांगरे के पत्ते और हरीतकी तथा बहेड़ा और मूली इनके रस की क्रमशः भावना देकर सब रोगों में मात्रानुसार प्रयोग करना चाहिए। इस सत्वाभ्रक से अन्य अधिक गुण करने वाली और कोई औषधि नहीं है। इसी प्रकार यदि १०० पुट दे कर अभ्रक सत्व का पुट पाक करें तो अत्यन्त गुण कारक तथा अग्निदीपक और पाचनशक्ति बढ़ाने वाली अभ्रक भस्म हो जाती है ॥ ३७–४२ ॥

मारणे प्रकारान्तरमाह—

गन्धर्वपत्रतोयेन गुडेन सह भावितम्।
अधोर्ध्वं वटपत्राणि निश्चन्द्रं त्रिपुटः खगम्॥ ४३॥
क्षुधं करोति चात्यर्थं गुञ्जार्धमितिसेवया।
तत्तद्रोगहरैर्योगैः सर्वरोगहरं परम्॥ ४४॥

यदि अभ्रक में गुड़ मिला कर एरण्ड (रेंडी) के पत्रों के स्वरस की भावना देकर शराव में रख कर ऊपर से वट पत्र रख कर शराव को कपड़ मिट्टि कर फूंक दे। इस तरह तीन पुट देने से अभ्रक की निश्चन्द्र भस्म तैय्यार होती है। इस भस्म को आधे रत्ती की मात्रा में सेवन करने से अत्यन्त क्षुधा लगती है और यह भस्म भिन्न २ दवाइयों या अनुपान के साथ देने से सर्व व्याधियों को दूर करती है॥ ४३-४४॥

अथ सत्वस्य शोधनमारणे—

सत्त्वस्य गोलकं ध्मातं सस्यसंयुक्तकाञ्जिके।
निर्वाप्य तत्क्षणेनैव कुट्टयेल्लोहपारया॥ ४५॥
संप्रताप्य घनस्थूलकणान्क्षिप्त्वाऽथ काञ्जिके।
तत्क्षणेन समाहृत्य कुट्टयित्वा रजश्चरेत्॥ ४६॥
गोघृतेन च तच्चूर्णं भर्जयेत्पूर्ववत्त्रिधा।
धात्रीफलरसैस्तद्वद्धात्रीपत्ररसेन वा॥ ४७॥
भर्जने भर्जने कार्यं शिलापट्टेन पेषणम्।
ततः पुनर्नवावासारसैः काञ्जिकमिश्रितैः॥ ४८॥
प्रपुटेद्दशवाराणि दशवाराणि गन्धकैः।
एवं संशोधितं व्योमसत्वं सर्वगुणोत्तरम्।
यथेष्टं विनियोक्तव्यं जारणे च रसायने॥ ४९॥
द्रुतयो नैव निर्दिष्टाः शास्त्रे दृष्टा अपि दृढम्॥
विना शंभोः प्रसादेन न सिध्यन्ति कदाचन॥ ५०॥

अभ्रक सत्व का गोला बना कर उसे प्रतप्त करें और फिर बिना छानी काञ्जी में बुझावे और उसी समय लोह के मूसल से चूर्ण करता जाय। इस तरह अभ्रक सत्व के स्थूल कणों को बार २ प्रतप्त कर के काञ्जी में बुझा कर उसी समय निकाल

कर चूर्ण करलें, फिर उस चूर्ण को पूर्वोक्त विधि से गोघृत से भूंजना चाहिए। अथवा इसी तरह आंवले के फल या पत्रों के स्वरस से भूनना चाहिए। प्रत्येक भर्जन के समय शिलापट्ट से चूर्ण करना आवश्यक है। बाद में पुनर्नवा और वासा के स्वरस में काञ्जी मिला कर घोट कर दश वार पुट देना चाहिए। इसी तरह गन्धक के साथ भी घोट कर दस पुट देना चाहिए। इस तरह शोधित किया हुआ अभ्रक सत्व सर्वगुण युक्त होता है और उस का पारद के जारण या रसायन में यथेष्ट प्रयोग कर सकते हैं। द्रुतियों का शास्त्र में वर्णन होने पर भी उपयोग ठीक विधि से नहीं बताया गया है और ये शिवजी की अनुकम्पा के विना सिद्ध भी नहीं होती हैं ॥ ४५–५० ॥

अथाभ्रप्रयोगः—

वेल्लव्योषसमन्वितं घृतयुतं वल्लोन्मितं सेवितं
दिव्याभ्रं क्षयपाण्डुरुग्ग्रहणिकाशूलामकुष्ठामयम्।
जूर्तिं श्वासगदं प्रमेहमरुचिं कासामयं दुर्धरं
मन्दाग्निं जठरव्यथां विजयते योगैरशेषामयान् ॥ ५१ ॥

इत्यभ्रकाधिकारः।

वायविडङ्ग, सोंठ, मिर्च, पिप्पल, प्रत्येक का दो दो रत्ती चूर्ण करले फिर उस चूर्ण में घृत मिलाकर दो रत्ती अभ्रक रस मिलाकर सेवन करे। इससे क्षय, पाण्डु, ग्रहणी, खांसी, शूल, आंव, और कुष्ठ रोग, ज्वर, श्वास, बीस प्रकार के प्रमेह, अरुचि, असाध्य कास रोग, मन्दाग्नि, उदर की समस्त व्याधियां और भिन्न २ अनुपानों से समग्र व्याधियां नष्ट हो जाती है ॥ ५१ ॥

अथ वैक्रान्तः—

अष्टास्रश्चाष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः।
शुद्धमिश्रितवर्णैश्च युक्तो वैक्रान्त उच्यते ॥ ५२ ॥

आठ कोनों तथा आठ फलकों से युक्त और षट्कोणवाला, स्निग्ध, भारी, शुद्ध और मिश्रित रङ्ग वाला उत्तम वैक्रान्त होता है ॥ ५२ ॥

अथ वैक्रान्तस्य वर्णभेदाः—

श्वेतो रक्तश्च पीतश्च नीलः पारावतच्छविः।
श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्बुरश्चाष्टधा हि सः ॥ ५३ ॥

श्वेत, रक्त, पीत, नील, धूमवर्ण, कृष्ण, श्याम तथा चित्रवर्ण या स्वर्णवर्ण इन वर्ण भेदों से वैक्रान्त आठ तरह का है ॥ ५३ ॥

अथ वैक्रान्तगुणाः—

आयुष्प्रदश्च बलवर्णकरोऽतिवृष्यः प्रज्ञाप्रदः सकलदोषगदापहारी ।
दीप्ताग्निकृत्पविसमानगुणस्तरस्वी वैक्रान्तकः खलु वपुर्बललोहकारी॥५४॥
रसायनेषु सर्वेषु पूर्वगण्यः प्रतापवान् ।
वज्रस्थाने नियोक्तव्यो वैकान्तः सर्वदोषहा ॥ ५५ ॥

वैक्रान्त अवस्था बढाता है, शरीर में बल तथा वर्ण पैदाकरता है, अत्यन्त वृष्य तथा बुद्धिप्रद है, सम्पूर्ण कुपित वातादि दोष और व्याधियों को नष्ट करता है, अग्नि को दीप्त करता है, वज्र (हीरक) के समान गुणकारी है, तथा शक्ति पैदा करता है, शरीर को बलयुक्त एवं लौह सदृश दृढ करता है । जितने भी रसायन हैं उनमें यह प्रधान और प्रभावसम्पन्न तथा सम्पूर्ण दोषों को नष्ट करने वाला है । इसका हीरे के स्थान में भी प्रयोग करते हैं ॥ ५४–५५ ॥

अथ वैक्रान्तोत्पत्तिः—

दैत्येन्द्रो माहिषः सिद्धः सहदेवसमुद्भवः ।
दुर्गा भगवती देवी तं शूलेन व्यमर्दयत् ॥ ५६ ॥
तस्य रक्तं तु पतितं यत्र यत्र स्थितं भुवि ।
तत्र तत्र तु वैक्रान्तं वज्राकारं महारसम् ॥ ५७ ॥

देवताओं (अथवा सहदेव) के साथ उत्पन्न तथा शङ्करजी से सिद्धिप्राप्त दैत्यों के राजा महिषासुर को भगवती दूर्गा ने जब अपने त्रिशूल से मारा था उस वक्त उसका रक्त जहां २ पृथ्वी पर पड़ा वहां २ वज्र के सदृश आकार वाले महारस वैक्रान्त की उत्पत्ति हुई ॥ ५६–५७ ॥

विमर्शः—वैक्रान्त को टर्मुली (Turmuly) कहते हैं ।

परिचय—यह एक विशेष खनिज है जो कि अभ्रक के साथ २ तथा कभी २ स्वतन्त्र रूप से भी प्राप्त होता है । सम्भव है कि इसी कारण इसका अभ्रक के बाद पाठ रखा गया है । इसकी जो मूल में उत्पत्ति दिखाई गई है वह अलङ्कारिक भाषा से ओतप्रोत होती हुई भी समर्थ का प्रतिपादन करती है । किन्तु आजकल के जौहरियों के प्रयोग के आधार पर इसके विषय में जो दग्ध हीरक होने की धारण लोगों की बनी हुई वह भ्रम से परिपूर्ण है । यह स्वतन्त्र खनिज है ।

उपलब्धि—यह खनिज प्रथम सीलोन से निकलता था किन्तु आजकल विशेष कर अफ्रीका से निकलता है तथा वहाँ से सर्वत्र वितरित होता है। इसके जो अनेक वर्ण के सुन्दर २ कण (क्रिस्टल्स् Crystals) आते हैं उनकी गणना रत्नों में होती है। इसी लिये इस ग्रन्थ में इसका आगे रत्नों के साथ भी उल्लेख किया गया है। इसके बहुमूल्य कणों को जौहरी अनेक प्रकार के आभूषणों में काम में लाते हैं।

इसके कृष्णवर्ण के खनिज में लोहे का अंश अधिक होता है इस लिये उसका ही विशेष कर के औषध कर्म में प्रयोग करना चाहिए।

वैक्रान्तस्य स्थानं निरुक्तिश्चाह—

विन्ध्यस्य दक्षिणे भागे ह्युत्तरे वाऽस्ति सर्वतः।
विकृन्तयति लोहानि तेन वैक्रान्तकः स्मृतः॥ ५८॥

यह वैक्रान्त विन्ध्याचल पर्वत के उत्तर तथा दक्षिण भाग में सर्वत्र खानों में प्राप्त होता है तथा लौह ताम्रादिक समग्र धातुओं को काट डालने से वैक्रान्त कहा जाता है॥ ५८॥

मतान्तरेण वर्णभेदकथनम्—

श्वेतः पीतस्तथा रक्तो नीलः पारावतप्रभः।
मयूरकण्ठसदृशश्चान्यो मरकतप्रभः॥ ५९॥

यह श्वेत, पीत, रक्त, नील और कबूतर के समान धूम्रवर्ण वाला तथा मयूर के कण्ठ के समान चित्रवर्ण युक्त और मरकतमणि के तुल्य वर्ण वाला सात रङ्ग का होता है॥ ५९॥

वर्णभेदेन कार्यभेदकथनम्—

देहसिद्धिकरं कृष्णं पीते पीतं सिते सितम्।
सर्वार्थसिद्धिदं रक्तं तथा मरकतप्रभम्॥
शेषे द्वे निष्फले वर्ज्ये वैक्रान्तमिति सप्तधा॥ ६०॥

कृष्णवर्ण वाला वैक्रान्त शरीर को सिद्धि प्रदान (अजरअमर) करता है। पीत वैक्रान्त को स्वर्ण के जारण मारण में प्रयोग करते हैं। इसी तरह श्वेत को चांदी के लिये या श्वेत कुष्ठादिरोगों में प्रयुक्त करते हैं। लाल तथा मरकत मणि समान वर्ण वाले वैक्रान्त को सेवन करने से सम्पूर्ण सिद्धियां प्राप्त होती हैं। शेष दो रंगवाला (नील तथा कबूतर वर्ण) वैक्रान्त विशेष फल नहीं करने से वर्जनीय है। इस तरह वैक्रान्त सात प्रकार का होता है॥ ६०॥

अथाऽऽहरणविधिः—

यत्र क्षेत्रे स्थितं चैव वैक्रान्तं तत्र भैरवम्।
विनायकं च संपूज्य गृह्णीयाच्छुद्धमानसः॥ ६१॥

जिस स्थान (क्षेत्र) में वैक्रान्त हो वहां पर भैरव तथा गणेशजी की पूजन कर शुद्धचित्त होकर उसे ग्रहण करें॥ ६१॥

अथ गुणान्तरम्—

वैक्रान्तो वज्रसदृशो देहलोहकरो मतः।
विषघ्नो रसराजश्च ज्वरकुष्ठक्षयप्रणुत्॥ ६२॥

वैक्रान्त हीरे के समान है तथा शरीर को लोह तुल्य बनाता है। विषों का प्रभाव नष्ट करता है। ज्वर, कुष्ठ और क्षय रोगों को नष्ट करता है। यह रसों का राजा कहलाता है॥ ६२॥

अथ शोधनम्—

वैक्रान्तकाः स्युस्त्रिदिनं विशुद्धाः संस्वेदिताः क्षारपटूनि दत्त्वा।
अम्लेषु मूत्रेषु कुलत्थरम्भानीरेऽथवा कोद्रववारिपक्वाः॥ ६३॥

सर्व प्रकार के वैक्रान्त को काञ्जी में, गोमूत्र में, कुलत्थी के काढे में, या केले के स्वरस में क्षारवर्ग के क्षार डालकर दोला यन्त्र में तीन दिन स्वेदन करके शुद्ध करते हैं। अथवा कोदो धान के जल में पकाने से भी शुद्ध हो जाता है॥६३॥

मतान्तरे शोधनमारणे—

कुलत्थक्वाथसंस्विन्नो वैक्रान्तः परिशुध्यति।
म्रियतेऽष्टपुटैर्गन्धनिम्बुकद्रवसंयुतः॥ ६४॥

कुलत्थी के काढे में एक प्रहर स्वेदन करने से वैक्रान्त शुद्ध हो जाता है। बाद में सम भाग शुद्ध गन्धक डाल कर निम्बूरस से घोट कर आठ पुट देने से भस्म हो जाती है॥ ६४॥

मतान्तरम्—

वैक्रान्तेषु च तप्तेषु हयमूत्रं विनिक्षिपेत्।
पौनःपुन्येन वा कुर्याद्द्रवं दत्त्वा पुटं त्वनु॥
भस्मीभूतं तु वैक्रान्तं वज्रस्थाने नियोजयेत्॥ ६५॥

वैक्रान्त को प्रतप्त करके घोड़े के मूत्र में बुझावे। इस तरह २१ वार प्रतप्त कर

नया मूत्र डाल २ कर बुझाना चाहिए। बाद में पुट देने पर वज्र के स्थान पर प्रयोग करने लायक भस्म हो जाती है ॥ ६५ ॥

अथ सत्वपातनम्—

मोचमोरटपालाशक्षारगोमूत्रभावितम् ।
वज्रकन्दनिशाकल्कफलचूर्णसमन्वितम् ॥ ६६ ॥
तत्कल्कं टङ्कणं लाक्षाचूर्णं वैक्रान्तसम्भवम् ।
नरसारसमायुक्तं मेषशृङ्गीद्रवान्वितम् ॥ ६७ ॥
पिण्डितं मूकमूषस्थं ध्मापितं च हठाग्निना ।
तत्रैव पतते सत्त्वं वैक्रान्तस्य न संशयः ॥ ६८ ॥

कदली कन्द (केले की जड़) मोरट (इक्षुमूल) रस पलाश (ढाक) का क्षार और गोमूत्र इनसे वैक्रान्त कोभावित करे। पश्चात् उसमें जङ्गली सूरण कन्द तथा हलदी का कल्क और त्रिफला का चूर्ण, सोहागा, लाह चूर्ण और नोसादर मिलाकर मेंढासिङ्गी के स्वरस से घोट कर गोला बनावे। उस गोले को अन्धमूषा मेंर ख कर धौंकनी (भस्त्रा) से अग्नि को दीप्त करके फूंके। इससे निश्चय ही सत्व निकल आता है ॥ ६६-६८ ॥

अथ मतान्तरम्—

सत्त्वपातनयोगेन मर्दितश्च वटीकृतः।
मूषास्थो घटिकाध्मातो वैक्रान्तः सत्त्वमुत्सृजेत् ॥ ६९ ॥

सत्व!निकालने में प्रयुक्त होने वाली औषधियों के साथ वैक्रान्त को घोट कर गोला बनाकर मूषायन्त्र में रख कर एक घण्टे तक तीव्र अग्नि से धमन करने से सत्व निकल जाता है ॥ ६९ ॥

अथ मृतवैक्रान्तस्य प्रयोगविधिर्गुणाश्च—

भस्मत्वं समुपागतो विकृतका हेम्ना मृतेनान्वितः
पादांशेन कणाज्यवेल्लसहितो गुञ्जामितः सेवितः ।
यक्ष्माणं जरणं च पाण्डुगुदजं श्वासं च कासामयं
दुष्टां च ग्रहणीमुरःक्षतमुखान् रोगाञ्जयेद्देहकृत् ॥ ७० ॥

भस्म हुए एक रत्ती वैक्रान्त में चतुर्थभाग रूप में सुवर्ण भस्म मिलाकर विडङ्ग, छोटी पीपल और घृत मिला कर सेवन करने से राजयक्ष्मा, बुढापा,

पाण्डुरोग, अर्श, श्वास, कास, दूषित ग्रहणी, उरःक्षत तथा मुख के रोग नष्ट होते हैं तथा शरीर भी बलयुक्त होता है ॥ ७० ॥

अथ प्रयोगान्तरम्—

सूतभस्मार्धसंयुक्तं नीलवैक्रान्तभस्मकम्
मृताभ्रसत्त्वमुभयोस्तुलितं परिमर्दितम् ॥ ७१ ॥
क्षौद्राज्यसंयुतं प्रातर्गुञ्जामात्रं निषेवितम् ।
निहन्ति सकलान् रोगान् दुर्जयानन्यभेषजैः ।
त्रिःसप्तदिवसैर्नृणां गङ्गांभ इव पातकम् ॥ ७२ ॥

इति वैक्रान्ताधिकारः ।

पारद भस्म (रससिन्दूर) आधा भाग, एक भाग नील वर्ण के वैक्रान्त की भस्म तथा दोनों के तुल्य मृत अभ्रक का सत्व मिला कर घोट कर शहद तथा घृत मिला कर प्रातःएक रत्ती भर (१ गुञ्जा) २१ दिन तक सेवन करने से अन्य औषधियों से असाध्य भी मनुष्यों के सकल रोग नष्ट हो जाते हैं जिस तरह गङ्गा जल पापों को नष्ट कर देता है ॥ ७१-७२ ॥

अथ माक्षिकम्—

माक्षिकोत्पत्तिवर्णनम्

सुवर्णशैलप्रभवो विष्णुना काञ्चनो रसः ।
ताप्यां किरातचीनेषु यवनेषु च निर्मितः ॥
ताप्यः सूर्यांशुसन्तप्तो माधवे मासि दृश्यते ॥ ७३ ॥

विष्णु भगवान की कृपा से सुमेरु पर्वत से उत्पन्न हुआ तथा सुवर्ण के समान चमकने वाला माक्षिक धातु तापी नदी और किरात, चीन इत्यादि यवन देशों में निर्मित हुआ है और यह तापी नदी से उत्पन्न माक्षिक वैशाखमास में सूर्य की प्रखर किरणों से तप्त होने पर दिखाई देता है ॥ ७३ ॥

अथ माक्षिकस्य गुणाः—

मधुरः काञ्चनाभासः साम्लो रजतसन्निभः ।
किञ्चित् कषायमधुरः शीतः पाके कटुर्लघुः ।
तत्सेवनाज्जराव्याधिविषैर्न परिभूयते ॥ ७४ ॥

सुवर्ण के समान चमकदार माक्षिक मधुररसवाला होता है और रजतवर्ण

माक्षिक अम्ल तथा कुछ कसैला और मधुर, पाक में शीतवीर्य कटु और लघु होता है। इन दोनों प्रकार के माक्षिक का सेवन करने से मनुष्य जरा व्याधि और विष से आक्रान्त नहीं होता है ॥ ७४ ॥

अथ माक्षिकभेदाः—

माक्षिको द्विविधो हेममाक्षिकस्तारमाक्षिकः।
तत्राऽऽद्यं माक्षिकं कान्यकुब्जोत्थं स्वर्णसन्निभम् ॥ ७५ ॥
तपतीतीरसम्भूतं पञ्चवर्णसुवर्णवत्।
पाषाणबहलः प्रोक्तस्ताराख्योऽल्पगुणात्मकः ॥ ७६ ॥

माक्षिक धातु सुवर्ण और रजत का भाग मिलने से दो तरह का होता है। इनमें प्रथम सुवर्ण माक्षिक जो कि कान्यकुब्ज (कन्नोज या कानपुर) देश की खानों से निकलता है सुवर्ण के समान होता है। किन्तु तापी नदी के तट के पास की खानों से निकाला हुआ सोनामाखी धातु पांच रङ्ग वाला तथा सुवर्ण सदृश होता है, रौप्यमाक्षिक में पत्थर का भाग ज्यादा होता है तथा वह अल्प गुणदायक है ॥७५–७६॥

विमर्शः—भारतवर्ष में माक्षिक कोयलों की खानों में मिलता है। आचार्यों ने इसके तीन भेद बताये हैं किन्तु इस ग्रन्थ में इसके दो ही भेद हैं। तथा आगे विमल (रौप्यमाक्षिक) के तीन भेद किए हैं किन्तु यह अन्य रसग्रन्थों से विरुद्ध है।

"माक्षिको द्विविधो हेममाक्षिकस्तारमाक्षिकः" (इति० र० र० स०)

१ स्वर्णमाक्षिक—कापर पेराइटिज़ (Copperpyritis Cu fes 2)

२ रौप्यमाक्षिक (विमल)—आयर्न पेराइटिज़ (Iron pyritis)

३ कांस्यमाक्षिक (आर्सेनो पेराइटिज़ Arsano pyritis)

ये तीनों खनिज ताम्र, लौह, और संखिये के गन्धित हैं। इनमें से गन्धक निकाल देने से उक्त तीनों पदार्थों की प्राप्ति होती है। यद्यपि इनमें अन्य खनिज भी रहते हैं किन्तु प्रधान रूप में उपर्युक्त ही होते हैं। इस लिये इनकी भस्म बनाने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। यद्यपि बजार में आने वाले स्वर्ण तथा रौप्य माक्षिक में दोनों (स्वर्णरजत) की मात्रा नहीं होती है। किन्तु विदेशों से कुछ इनके अधिक मूल्य खनिज आते हैं उनमें दोनों धातुओं का कुछ अंश रहता है इसलिये रस शास्त्रों में जहां २ स्वर्ण और चांदी के भस्म के अभाव में इन दोनों का ग्रहण करना हो तब उक्त अधिक मूल्यवान माक्षिक खनिजों की भस्म बनाकर प्रयोग करना चाहिये।

माक्षिकगुणाः—

माक्षीकधातुः सकलामयघ्नः प्राणो रसेन्द्रस्य परं हि वृष्यः ।
दुर्मेललोहद्वयमेलनश्च गुणोत्तरः सर्वरसायनाग्र्यः ॥ ७७ ॥

माक्षिक धातु सम्पूर्ण रोग नाशक है, पारद के गुणों का उत्कर्ष करता है तथा अत्यन्त वृष्य है । परस्पर कठिनता से मिश्रित होने वाले लोह द्वय को मिला देता है ॥ ७७ ॥

अथ सुवर्णमाक्षिकशोधनमारणे—

एरण्डतैललुङ्गाम्बुसिद्धं शुद्ध्यति माक्षिकम् ।
सिद्धं वा कदलीकन्दतोयेन घटिकाद्वयम् ।
तप्तं क्षिप्तं वराक्वाथे शुद्धिमायाति माक्षिकम् ॥ ७८ ॥
मातुलुङ्गाम्बुगन्धाभ्यां पिष्टं मूषोदरे स्थितम् ।
पञ्चक्रोडपुटैर्दग्धं म्रियते माक्षिकं खलु ॥ ७९ ॥
एरण्डस्नेहगव्याज्यैर्मातुलुङ्गरसेन वा ।
खर्परस्थं दृढं पक्वं जायते धातुसन्निभम् ॥
एवं मृतं रसे योज्यं रसायनविधावपि ॥ ८० ॥

माक्षिक का चूर्ण कर एरण्ड तेल (रेड़ी तेल), बिजौरे निम्बू का रस या केले की जड़ के रस में डालकर दोलायन्त्र विधि से दो घण्टे तक स्वेदन करने से शुद्ध हो जाती हैं । अथवा त्रिफला के क्वाथ में तपा कर सात बार बुझाने से शुद्ध हो जाता है । बिजौरे निम्बू का रस और समान गन्धक शुद्ध माक्षिक में मिला कर खरल करें । बाद में गीला बनाकर मूषायन्त्र में रख कर वाराह पुट में पांच पुट देने से निश्चय ही माक्षिक की भस्म हो जाती है । इसी तरह एरण्ड तैल या गाय के घी को कड़ाह में डालकर उसमें सोनामाखी को खूब पकाने से भस्म सदृश हो जाता है । केवल बिजौरे के रस से भी पकाने पर भस्म हो जाती है, इस तरह मृत माक्षिक को रस और रसायन में उपयोग करना चाहिए ॥ ७८-८० ॥

अथ सत्त्वपातनम्—

त्रिंशांशनागसंयुक्तं क्षारैरम्लैश्च मर्दितम् ।
ध्मातं प्रकटमूषायां सत्त्वं मुञ्चति माक्षिकम् ॥ ८१ ॥

सप्तवारं परिद्राव्य क्षिप्तं निर्गुण्डिकारसे ।
माक्षीकसत्त्वसम्मिश्रं नागं नश्यति निश्चितम् ॥ ८२ ॥
क्षौद्रगन्धर्वतैलाभ्यां गोमूत्रेण घृतेन च ।
कदलीकन्दसारेण भावितं माक्षिकं मुहुः ॥
मूषायां मुञ्चति ध्मातं सत्त्वं शुल्वनिभं मृदु ॥ ८३ ॥

माक्षिक के चूर्ण में तीसवें भाग की मात्रा से नागभस्म मिलाकर समान भाग क्षार (स्वर्जिका, यवक्षार, टङ्कण) और अम्ल रसों से घोट कर गोला बनाकर सत्व पातन करने की मूषा में रखकर फूंकने से माक्षिक अपना सत्व छोड़ देता है। इस सत्व को अग्नि पर तप्त कर निर्गुण्डी के रस में सात बार बुझाने से माक्षिक के सत्व के साथ मिश्रित नाग निश्चय ही नष्ट हो जाता है । माक्षिक को क्रम से शहद् , एरण्डतैल, गौमूत्र घृत और केले के कन्द के रस में भावना देकर गोला बना कर मूषा में रख कर फूंकने से ताम्र के समान लाल और मृदु सत्व निकल जाता है ॥ ८१–८३ ॥

अथ विशुद्धताप्यसत्वलक्षणम्—

गुञ्जाबीजसमच्छायं द्रुतद्रावं च शीतलम् ।
ताप्यसत्त्वं विशुद्धं तद्देहलोहकरं परम् ॥ ८४ ॥

गुञ्जाबीज के समान रक्तवर्ण और अग्नि पर जल्दी पिघलने वाला तथा शीतल शुद्ध माक्षिक सत्व होता है । वह देह को श्रेष्ठ बनाता है ॥ ८४ ॥

अथ सुवर्णमाक्षिकरसायनम्—

माक्षीकसत्त्वं च रसेन पिष्टं कृत्वा विलीने च बलिं निधाय ।
सम्मिश्र्य सम्मर्द्य च खल्वमध्ये निःक्षिप्यसत्त्वं द्रुतिमभ्रकस्य ॥ ८५ ॥
विधाय गोलं लवणाख्यन्त्रे पचेद्दिनार्द्धं मृदुवह्निना च ।
स्वतः सुशीतं परिचूर्ण्य सम्यग्वल्लोन्मितं व्योषविडङ्गयुक्तम् ॥ ८६ ॥
संसेवितं क्षौद्रयुतं निहन्ति जरां सरोगान्त्वपमृत्युमेव ।
दुस्साध्यरोगानपि सप्तवासरैर्नैतेन तुल्योऽस्ति सुधारसोऽपि ॥ ८७ ॥

माक्षिक सत्व को शुद्ध समान भाग पारे के साथ खूब घोट कर चमक रहित कज्जली बनावे । फिर उसमें सत्व के बराबर ही गन्धक मिला कर घोटे, गन्धक के मिल जाने पर माक्षिक सत्व के समान भाग ही में अभ्रक सत्व की द्रुति मिलाकर

घोंट कर गोला बनावे। उस गोले को लवण नामक यन्त्र में रख कर मृदु अग्नि से आधे दिन तक पकावे। स्वाङ्गशीतल होने पर निकाल कर चूर्ण कर ले। इसमें से एक रत्ती की मात्रा में लेकर सोंठ, मिर्च, पीपल और वायविडङ्ग के चूर्ण में मिलाकर शहद के साथ सेवन करने से समग्र रोग, जरा तथा अत्यन्त कष्टसाध्य भी रोग और अकाल मृत्यु सात दिन में दूर हो जाते हैं। इसके समान अमृत रस भी गुण नहीं करता है॥ ८५–८७॥

अथ सुवर्णमाक्षिकरसायनम्—

एरण्डोत्थेन तैलेन गुञ्जा क्षौद्रं च टङ्कणम्।
मर्दितं तस्य वापेन सत्त्वं माक्षिकजं द्रवेत्॥ ८८॥

इति माक्षिकाधिकारः।

एरण्ड तेल, गुञ्जा का चूर्ण, शहद और सुहागा इनके चूर्ण के साथ सुवर्ण माक्षिक सत्व के चूर्ण को डाल कर अग्नि पर गलाने से सोना माखी के सत्व का द्रवण हो जाता है॥ ८८॥

विमलभेदाः—

विमलस्त्रिविधः प्रोक्तो हेमाद्यस्तारपूर्वकः।
तृतीयः कांस्यविमलस्तत्तत्कान्त्या स लक्ष्यते॥ ८९॥

कुछ लोग (पर्य्यायमुक्तावलीकार) विमल को रूपमाखी कहते हैं। विमल भी माक्षिक धातु का ही एक भेद है। विमल के ३ भेद हैं। सुवर्ण का भाग मिला रहने से सुवर्ण विमल, चांदी का भाग मिला रहने से तार विमल और कांस्य का भाग रहने से कांस्य विमल कहलाता है। चमक से ही विमल के भेदों का ज्ञान होता है॥ ८९॥

विमल—इसको रौप्यमाक्षिक कहते हैं। बाजारों में इसके चतुष्कोण कण मिलते हैं और उनका वर्ण स्वर्ण के समान होता है। इसी लिये इसको फूल्स गोल्ड (Fools gold) भी कहते हैं तथा अज्ञ लोग इसे स्वर्ण माक्षिक मान कर स्वर्ण के अभाव में प्रयुक्त करते हैं। किन्तु यह गन्धक तथा लौह का यौगिक है। इस में स्वल्प मात्रा में भी स्वर्ण नहीं रहता है।

जो असली स्वर्णमाक्षिक होता है उसमें ताम्र का अंश रहता है तथा वह कणरूप में नहीं आता है। "सत्वं चन्द्रार्कसङ्काशम्" इस पद से सिद्ध होता है कि प्राचीनाचार्यों ने भी असली स्वर्णमाक्षिक में ताम्र की उपस्थिति को माना है।

उपलब्धि—आज कल माक्षिक धातु विशेष करके विहार, नेपाल, पञ्जाब और बुन्देलखण्ड की रियासतों में मिलता है तथा विदेश में भी इसकी खाने हैं।

अथ विमलस्य लक्षणगुणाः—

वर्तुलः कोणसंयुक्तः स्निग्धश्च फलकान्वितः।
मरुत्पित्तहरो वृष्यो विमलोऽतिरसायनः॥ ९०॥

जो विमल गोल तथा चारों ओर कोण युक्त हो तथा स्पर्श में स्निग्ध और फलकाकार हो वह श्रेष्ठ है, तथा कुपित वात और पित्त को नष्ट करता है तथा अत्यन्त रसायन और वृष्य है॥ ९०॥

विमलभेदानां प्रयोगनिर्देशः—

पूर्वो हेमक्रियासूक्तो द्वितीयो रूप्यकृन्मतः।
तृतीयो भेषजे तेषु पूर्वपूर्वो गुणोत्तरः॥ ९१॥

सुवर्ण विमल सोने के जारण मारण या उसके स्थान में प्रयुक्त होता है। तार विमल चांदी के कार्य में और तृतीय कांस्य विमल औषध में काम आता है। इन तीनों में पूर्व से पूर्व श्रेष्ठ माना गया है॥ ९१॥

अथ विमलशोधनम्—

आटरूषजले स्विन्नो विमलो विमलो भवेत्।
जम्बीरस्वरसे स्विन्नो मेषशृङ्गीरसेऽथवा॥
आयाति शुद्धिं विमलो धातवश्च यथाऽपरे॥ ९२॥

विमल को दोला यन्त्र द्वारा वासा के रस में या नीम्बू के रस में या मेढासिङ्गी के रस में दो घण्टे तक स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है। इस विधि से अन्य धातुओं को भी शुद्ध करना चाहिये॥ ९२॥

अथ विमलस्य मारणम्—

गन्धाश्मलकुचाम्लैश्च म्रियते दशभिः पुटैः॥ ९३॥

विमल के चूर्ण में समान भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर बड़हर (लकुच) के स्वरस में या निम्बू के रस में घोट कर १० पुट देने से भस्म हो जाती है॥९३॥

अथ विमलस्य सत्वपातनविधिः—

सटङ्कलकुचद्रावैर्मेषशृंग्याश्च भस्मना।
पिष्टो मूषोदरे लिप्तः संशोष्य च निरुध्य च॥ ९४॥

षट्प्रस्थकोकिलैर्ध्मातो विमलः सीससन्निभः ।
सत्त्वं मुञ्चति तद्युक्तो रसः स्यात्स रसायनः ॥ ९५ ॥

विमल भस्म में बराबर भाग में सुहागा और मेढासिङ्गी की भस्म मिलाकर बडहर के रस में घोट कर मूषा के अन्दर लेप कर के सुखा लें । फिर मूषा यन्त्र को बंध कर के ६ प्रस्थ कोयले की आंच में फूकने से सीसे के समान श्वेत सत्व निकल आता है । इस सत्व को पारे के साथ मिलाने से उत्तम रसायन तैय्यार हो जाता है ॥ ९४–९५ ॥

अथ मतान्तरेण सत्वपातनम्—

विमलं शिग्रुतोयेन कांक्षीकासीसटङ्कणम् ।
वज्रकन्दसमायुक्तं भावितं कदलीरसे ॥ ९६ ॥
मोक्षकक्षारसंयुक्तं ध्मापितं मूकमूषगम् ।
सत्त्वं चन्द्रार्कसंकाशं पतते नात्र संशयः ॥ ९७ ॥

विमल भस्म के बराबर २ फिटकिरी, हीराकसीस, सोहागा और जङ्गली सूरण-कन्द लेकर इनको कदली कन्द स्वरस या सहजन (शिग्रु) की छाल के क्वाथ से घोट कर पाढल क्षार भी मिला कर मूकमूषा यन्त्र में बन्द कर फूंकने से चन्द्र और अर्क (सूर्य) के समान श्वेत या चन्द्रकिरणवत् श्वेत सत्व निकलता है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ९६–९७ ॥

अथ विमलस्य प्रयोग विधिर्गुणाश्च—

तत्सत्त्वं सूतसंयुक्तं पिष्टं कृत्वा सुमर्दितम् ।
विलीनं गन्धके क्षिप्त्वा जारयेत् त्रिगुणालकम् ॥ ९८ ॥
शिलां पञ्चगुणां चापि वालुकायन्त्रके खलु ।
तारभस्म दशांशेन तावद्वैक्रान्तकं मृतम् ॥ ९९ ॥
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य पटेन परिगाल्य च ।
निक्षिप्य कूपिकामध्ये परिपूर्य प्रयत्नतः ॥ १०० ॥
लीढो व्योषवरान्वितो विमलको युक्तो घृतैः सेविता
हन्याद्दुर्भगकृज्ज्वराञ्श्वयथुकं पाण्डुप्रमेहारुचीः ।
मूलार्त्तिं ग्रहणीं च शूलमतुलं यक्ष्मामयं कामलाम्
सर्वान्पित्तमरुद्गदान्क्रिमपरैर्योगैरशेषामयान् ॥ १०१ ॥

विमल का सत्व और शुद्ध पारद समान मात्रा में घोटकर अग्नि में द्रुत हुए गन्धक के साथ मिलाकर तीन गुणी हरताल के साथ जारण करें। फिर विमल सत्व से पांच गुणी मनःशिला मिला कर वालुका यंत्र में पाक करना चाहिए। स्वाङ्ग शीत होने पर उस यन्त्र से निकाल कर सत्व से दशमांश चांदीभस्म और उतनी ही वैक्रान्त भस्म मिलाकर घोट कर वस्त्र से छान कर शीशी में रख लेना चाहिये। फिर इस विमल रसायन को बलानुसार एक या दो रत्ती के प्रमाण से त्रिकटु और त्रिफला तथा घृत के साथ सेवन करने से तीव्रज्वर, शोथ, पाण्डुरोग, प्रमेह, अर्श, अरुचि, संग्रहणी, शूल, राजयक्ष्मा, कामला, शिरदर्द तथा समग्र वात तथा पित्त जन्य रोगों को नष्ट करता है। ज्यादा क्या कहें जैसे २ रोग हो उनके अनुकूल अनुपान के साथ देने से लाभ करता है ॥ ९८–१०१ ॥

अथ शिलाजतु—

शिलाजतुभेदाः—

शिलाधातुर्द्विधा प्रोक्तो गोमूत्राद्यो रसायनः।
कर्पूरपूर्वकश्चान्यस्तत्राद्यो द्विविधः पुनः॥
ससत्त्वश्चैव निःसत्त्वस्तयोः पूर्वो गुणाधिकः॥ १०२॥

शिलाजीत दो तरह की होती है। एक गोमूत्र के समान गन्धवाली और दूसरी कर्पूर के समान गन्धवाली। इन दोनों भेदों में गोमूत्र गंधी शिलाजीत उत्तम रसायन है। इस गोमूत्रगंधी शिलाजीत के भी दो भेद हैं। एक सत्व सहित, दूसरी सत्वहीन, इनमें भी प्रथम अधिक गुण प्रद होती है॥ १०२ ॥

शिलाजतुन उत्पत्तिः—

ग्रीष्मे तीव्रार्कतप्तेभ्यः पादेभ्यो हिमभूभृतः।
स्वर्णरूप्यार्कगर्भेभ्यः शिलाधातुर्विनिःसरेत्॥ १०३॥

ग्रीष्म कालीन सूर्य के तीव्र ताप से तपे हुए और सुवर्ण, चांदी, तथा ताम्र धातुओं से युक्त हिमालय पर्वत के शिखरों की चट्टानों से शिलाजतु निकलती है॥ १०३॥

विमर्शः—आजकल शिलाजीत गिलगिट (काश्मीर का सीमा प्रान्त) बृटिश गढवाल, बागेश्वर, भूटान,तथा तिब्बत के पहाड़ों से आती है। इसका यौगिक क्या है इसका अभी तक ठीक २ निर्णय नहीं हुआ है तथापि प्राचीनशास्त्र मत तथा अर्वाचीन रसायन शास्त्र के मतों का समन्वय करने से प्रतीत होता है कि यह खनिजतैल

(मिनरल ओइल Mineral oil) का यौगिक है । इसीलिये इसको अग्नि पर तपाने का निषेध है । क्योंकि उसमें पेट्रोल जाति का तैल होने से शीघ्र ही उड़न शील है तथा अग्निपरीक्षा करने पर निर्धूम होने को लिखा है और जल के अन्दर डूबने का भी निषेध है (अर्थात् यह खनिज तैल है इससे जलपर तैरेगा)

यथा—"वह्नौ क्षिप्तं भवेद्यत्तल्लिङ्गाकारमधूमकम् ।
सलिलेऽप्यविलीनञ्च तच्छुद्धं हि शिलाजतु ॥

यह द्रव्य शिलाजत्वादिक लौह आदि अनेकों योगों में पड़ता है तथा उन से क्षयरोग में बहुत लाभ होता है । आधुनिक चिकित्सक भी पेट्रोलियम् इमल्शन (Patrolium Imultion) का क्षय में बहुत प्रयोग करते है । इस को वेन्जर्स इमल्शन कहते हैं । यह आधुनिक चिकित्सकों ने प्राचीन चिकित्सकों के रसग्रन्थों से ही सीखकर प्रयोग करना प्रारम्भ किया है । तथा इसग्रन्थ में जो इनके उत्पत्ति का (ग्रीष्मे तीव्रार्कतप्तेभ्यः) इत्यादि श्लोकों से वर्णन किया गया है वह अत्यन्त युक्तियुक्त है ।

स्वर्णगर्भगिरेर्जातो जपापुष्पनिभो गुरुः ।
स स्वल्पतिक्तः सुस्वादुः परमं तद्रसायनम् ॥ १०४ ॥
रूप्यगर्भगिरेर्जातं मधुरं पाण्डुरं गुरु ।
शिलाजं पित्तरोगघ्नं विशेषात्पाण्डुरोगहृत् ॥ १०५ ॥
ताम्रगर्भगिरेर्जातं नीलवर्णं घनं गुरु ।
शिलाजं कफवातघ्नं तिक्तोष्णं क्षयरोगहृत् ॥ १०६ ॥

जिस हिमालय पर्वत की खान या चट्टान में सुवर्ण भाग ज्यादा होता है उससे निकली शिलाजीत जपापुष्प के समान लालवर्ण, वजन में भारी और कुछ स्वाद में तिक्त तथा स्वादु होता है । यह उत्तम रसायन है । चांदी की खान वाले स्थान से निकली शिलाजीत भारी, मधुर और पाण्डुरवर्ण की होती है। इससे पित्तरोग और विशेषकर पाण्डुरोग नष्ट होता है । ताम्रधातु युक्त पर्वत की खान से निकली शिलाजीत नीलवर्ण, भारी और ठोस होती है यह शिलाजीत तिक्त तथा उष्ण है कफ और वात विकार से उत्पन्न रोग तथा क्षयरोग को नष्ट करती है ॥ १०४–१०६ ॥

शुद्धशिलाजतुलक्षणम्—

वह्नौ क्षिप्तं भवेद्यत्तल्लिङ्गाकारमधूमकम् ।
सलिलेऽप्यविलीनं च तच्छुद्धं हि शिलाजतु ॥ १०७ ॥

शुद्धशिलाजीतपरीक्षा—वह्नि में डालने से लिङ्गाकार हो तथा धुआं न दे और जल में न घुले किन्तु नीचे सूत्र रूप में वैठ जाय वह उत्तम है ॥ १०७ ॥

अथ गुणाः—

नूनं सज्वरपाण्डुशोफशमनं मेहाग्निमान्द्यापहं
मेदश्छेदकरं च यक्ष्मशमनं शूलामयोन्मूलनम् ।
गुल्मप्लीहविनाशनं जठरहृच्छूलघ्नमामापहम् ।
सर्वत्वग्गदनाशनं किमपरं देहे च लोहे हितम् ॥ १०८ ॥
रसोपरससूतेन्द्ररत्नलोहेषु ये गुणाः ।
वसन्ति ते शिलाधातौ जरामृत्युजिगीषया ॥ १०९ ॥

शिलाजीत ज्वर, पाण्डुरोग, शोथ (सूजन), बीस प्रकार के प्रमेह तथा अग्नि-मान्द्य को नष्ट करती है। बढी हुई शरीर की चर्बी (मेद) को काट कर निकालती है तथा राजयक्ष्मा, शूल, गुल्म, प्लीहवृद्धि और उदर रोगों को नष्ट करती है। सम्पूर्ण चर्म की व्याधियों को नष्ट करती है। शरीर को लौह सदृश करती है। रस, उपरस, पारद, रत्न तथा सप्त धातुओं में जो गुण हैं वे मनुष्यों के जरा तथा मरण को जीतने के लिये मानों शिलाजीत में निवास करते हैं ॥ १०८–१०९ ॥

अथ शोधनम्—

क्षाराम्लगोजलैर्धौतं शुद्ध्यत्येव शिलाजतु ॥ ११० ॥
शिलाधातुं च दुग्धेन त्रिफलामार्कवद्रवैः ।
लोहपात्रे विनिक्षिप्य शोधयेदतियत्नतः ॥ १११ ॥
क्षाराम्लगुग्गुलोपेतैः स्वेदनीयन्त्रमध्यगैः ।
स्वेदिता घटिकामानाच्छिलाधातुर्विशुद्ध्यति ॥ ११२ ॥

क्षार, अम्ल तथा गोमूत्र से घोट कर धोने पर शिलाजीत शुद्ध हो जाती है। अथवा दुग्ध, त्रिफलाक्वाथ और भांगरे के स्वरस को लौह के पात्र में डाल कर शिलाजीत डाल दे। सूर्य की गर्मी से शुद्ध भाग द्रवों के ऊपर तैरने लगता है। बुद्धिमान उस तैरने वाले अंश को काच के पात्र में एकत्र करे। अथवा दोलायन्त्र में क्षार, अम्ल और गुग्गुल डाल कर उनके साथ शिलाजीत को एक घण्टे तक स्वेदन करने से शुद्ध हो जाती है ॥ ११०–११२ ॥

अथ शिलाजतुमारणम्—

शिलया गन्धतालाभ्यां मातुलुङ्गरसेन च।
पुटितो हि शिलाधातुर्म्रियतेऽष्टगिरिण्डकैः॥ ११३॥

शिलाजीत की मारण विधि—शिलाजीत को मनः शिला, गन्धक तथा हरताल के साथ विजौरे निम्बू के रस से घोट कर गोला बनाकर गज पुट में आठ जङ्गली उपलों द्वारा पुट देने से उसकी भस्म हो जाती है॥ ११३॥

अथ प्रयोगविधिः—

भस्मीभूतशिलोद्भवं समतुलं कान्तं च वैक्रान्तकं
युक्तं च त्रिफलाकटुत्रिकघृतैर्वल्लेन तुल्यं भजेत्।
पाण्डौ यक्ष्मगदे तथाग्निसदने मेहेषु मूलामये॥
गुल्मप्लीहमहोदरे बहुविधे शूले च योन्यामये॥ ११४॥
सेवेत यदि षण्मासं रसायनविधानतः।
वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं सुखी॥ ११५॥

शिलाजीत की भस्म, कान्तलौह भस्म और वैक्रान्तभस्म इन्हें समान २ भाग में परस्पर मिलाकर घोट लें। बाद में एक रत्ती की मात्रा से त्रिफला और त्रिकटु चूर्ण तथा घृत के सङ्ग सेवन करने से पाण्डुरोग, राजयक्ष्मा, अग्निमांद्य, प्रमेह, अर्श, गुल्म, प्लीह वृद्धि, जलोदर तथा अनेक प्रकार के उदर शूल और स्त्रियों के योनि रोग नष्ट हो जाते हैं। यदि इस रसायन को विधि पूर्वक ६ मास सेवन करे तो बालों का श्वेत होना तथा गिरना बन्द होकर सुख पूर्वक सौ वर्ष तक मनुष्य जीता रहता है॥ ११४–११५॥

अथ सत्त्वपातनम्—

पिष्टं द्रावणवर्गेण साम्लेन गिरिसम्भवम्।
क्षिप्त्वा मूषोदरे रुद्धा गाढैर्ध्मातं हि कोकिलैः॥
सत्त्वं मुञ्चेच्छिलाधातुस्तत्क्षणाल्लोहसन्निभम्॥ ११६॥

शिलाजीत को द्रावक वर्ग की गुड़, गुग्गुल, गुञ्जा, घृत इन औषधियों के साथ तथा काञ्जी इत्यादि अम्ल से पेषण करके मूषायन्त्र में डाल कर उसका मुख अवरुद्ध कर के बेर के कोयलों की अग्नि में फूंकने से सत्व निकल जाता है। यह सत्व लौह सदृश दृढ होता है॥ ११६॥

अथ कर्पूरशिलाजतुनो लक्षणादिकम्—

पाण्डुरं सिकताकारं कर्पूराद्यं शिलाजतु ।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीमेहकामलापाण्डुनाशनम् ॥ ११७ ॥
एलातोयेन सम्भिन्नं सिद्धं शुद्धिमुपैति तत् ।
नैतस्य मारणं सत्त्वपातनं विहितं बुधैः ॥ ११८ ॥

इति शिलाजित्वधिकारः ।

कर्पूर गन्धवाली शिलाजीत पाण्डुवर्ण तथा बालू के आकार की होती है। इस के सेवन से मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, कामला और पाण्डुरोग नष्ट होता है। इस की शुद्धि इलायची के क्वाथ में घोटने से होती है। आयुर्वेद के विद्वानों ने इसका मारण और सत्व पातन का विधान नहीं कहा है ॥११७–११८॥

अथ सस्यकः—

अथ सस्यकोत्पत्तिवर्णनम्—

पीत्वा हालाहलं वान्तं पीतामृतगरुत्मता ।
विषेणामृतयुक्तेन गिरौ मरकताह्वये ।
तद्वान्तं हि घनीभूतं सञ्जातं सस्यकं खलु ॥ ११९ ॥

किसी समय अमृत पान किये हुए गरुड़ जी ने हालाहल नामक विषका पान कर लिया। इस कारण अमृत और हालाहल विष के एकत्र होने से मरकत नामक पर्वत पर उन्हें वमन होगई। कुछ समय के पश्चात् वह वमन पदार्थ घन स्वरूप होकर नील तुत्थ के रूप में परिणत होगया ॥ ११९ ॥

प्रशस्तसस्यकलक्षणम्—

मयूरकण्ठसच्छायं भाराढ्यमतिशस्यते ॥ १२० ॥
द्रव्यं विषयुतं यत्तद्द्रव्याधिकगुणं भवेत् ।
सुधाहालाहलैर्युक्ता सुधाधिकगुणा तथा ॥ १२१ ॥

जो नील तुत्थ (सस्यक) मयूर के कण्ठ के समान नील वर्ण और भार युक्त हो वह औषध कर्म में अत्यन्त श्रेष्ठ है। किसी द्रव्य में विष मिल जाने से उस के गुण बढ़ जाते हैं। इसी तरह हालाहल विष से युक्त सुधा भी सुधा (अमृत) से भी अधिक गुण प्रद हो जाती है ॥ १२०–१२१ ॥

अथ गुणाः—

निःशेषदोषविषहृद्गदशूलमूलकुष्ठाम्लपैत्तिकविबन्धहरं परञ्च ॥
रसायनं वमनरेककरं गरघ्नं श्वित्रापहं गदितमत्र मयूरतुत्थम् ॥१२२॥

नील तुत्थ कुपित वात पित्तादि सम्पूर्ण दोष, विषप्रभाव, हृदय रोग, शूल, अर्श, कुष्ट, अम्लपित्त तथा विबन्ध (मलावरोध) को नष्ट करता है। यह अत्यन्त श्रेष्ठ रसायन है। इस से वमन तथा विरेचन कर्म होते हैं और श्वेत कुष्ठ तथा विष के आक्रमण को दूर करता है ॥ १२२ ॥

अथ शोधनम्—

सस्यकं शुद्धिमाप्नोति रक्तवर्गेण भावितम् ॥ १२३ ॥

नीलतुत्थ रक्त वर्ग में कही हुई जपाकुसुमादि औषधियों के रस की भावना से शुद्ध होता है ॥ १२३ ॥

अथ मतान्तरम्—

स्नेहवर्गेण संसिक्तं सप्तवारमदूषितम् ॥
दोलायन्त्रेण सुस्विन्नं सस्यकं प्रहरत्रयम् ।
गोमहिष्याजमूत्रेषु शुद्ध्यते तुत्थखर्परम् ॥ १२४ ॥

अथवा नील तुत्थ को तप्त कर स्नेह वर्गोक्त घृत, तैल, वसा आदि पदार्थों में सात वार बुझा कर शुद्ध करते हैं। केवल दोलायन्त्र में ३ प्रहर तक गौ, भैंस और बकरी के मूत्र के साथ स्वेदन करने से भी नीलतुत्थ शुद्ध हो जाता है ॥ १२४ ॥

अथ तुत्थखर्परमारणम्—

लकुचद्रावगन्धाश्मटङ्कणेन समन्वितम् ।
निरुध्य मूषिकामध्ये म्रियते कौक्कुटैः पुटैः ॥ १२५ ॥

शुद्ध नीलतुत्थ को समान गन्धक और टङ्कण के साथ बड़हल के फल के स्वरस में घोट कर मूषायन्त्र में बन्ध कर के कुक्कुट पुट देने से भस्म हो जाती है॥ १२५॥

अथ तुत्थसत्त्वपातनम्—

सस्यकस्य तु चूर्णं तु पादसौभाग्यसंयुतम् ।
करञ्जतैलमध्यस्थं दिनमेकं निधापयेत् ॥ १२६ ॥
अन्धमूषास्यमध्यस्थं ध्मापयेत्कोकिलत्रयम् ।
इन्द्रगोपाकृति चैव सत्त्वं भवति शोभनम् ॥ १२७ ॥

नीलतुत्थ चूण के साथ चोथाई भाग की मात्रा में सुहागा मिला कर घोटें। फिर उसको करञ्ज के तैल में एक दिन तक भिज्ञो दे। तदनन्तर उसका गोला बनाकर अन्धमूषा में वन्दकर वैर (बदरी) काष्ट के कोयलों की अग्नि में तीन दिन तक फूंकने से इन्द्रगोप (वीर वहूटी) के समान सुन्दर लालवर्ण का सत्व प्राप्त होता है॥१२७॥

अथ मतान्तरम्—

निम्बुद्रवाल्पटङ्काभ्यां मूषामध्ये निरुध्य च।
ताम्ररूपं परिध्मातं सत्वं मुञ्चति सस्यकम् ॥ १२८ ॥
शुद्धं सस्यं शिखिक्रान्तं पूर्वभेषजसंयुतम्।
नानाविधानयोगेन सत्त्वं मुञ्चति निश्चितम् ॥ १२९ ॥

अथवा नीलतुत्थ चूर्ण के साथ कुछ टङ्कण (सुहागा) मिलाकर निम्बू के रस से घोट कर गोला बनावें। पश्चात् मूषायन्त्र में वन्दकर फूंकने से ताम्र के समान लाल वर्ण का सत्व प्राप्त होता है। शुद्ध नील तुत्थ चूर्ण को सत्वपातन कराने वाली पूर्वोक्त औषधियों के साथ मिला कर भिन्न २ सत्वपातन की विधियों द्वारा अग्नि देने से सत्व प्राप्त हो जाता है॥ १२८–१२९॥

अथ प्रयोगविधिः—

सत्त्वमेतत्समादाय खरभूनागसत्त्वयुक्।
तन्मुद्रिका कृतस्पर्शा शूलघ्नी तत् क्षणाद्भवेत् ॥ १३० ॥
चराचरं विषं भूतडाकिनीदृग्गतं जयेत्।
मुद्रिकेयं विधातव्या दृष्टप्रत्ययकारिका ॥ १३१ ॥

नील तुत्थ का सत्व, दुरालभा और केंचुए (अर्थ वर्म) का सत्व इन को मिला कर अंगूठी वनवावे। इस के स्पर्श मात्र से शीघ्र ही शूल नष्ट हो जाता है। किसी पुस्तक में खर के स्थान में कर्ष शब्द लिखा है उस मत से एक कर्ष केंचुए का सत्व लेना चाहिए, दुरालभा नहीं लेवें। इस अंगूठी के प्रभाव से स्थावर और जङ्गम विष तथा भूत, प्रेत और डाकिनीयों को दृष्टि से उत्पन्न वाधाएं दूर हो जाती हैं तथा यह मुद्रिका प्रत्यक्ष विश्वास पैदा कराने वाली है॥ १३०–३३१॥

अथ भालुकितन्त्रोक्तप्रयोगविधिः—

रामवत्सोमसेनानीर्मुद्रितेऽपि तथाऽक्षरम्।
हिमालयोत्तरे पार्श्वे अश्वकर्णो महाद्रुमः।

तत्र शूलं समुत्पन्नं तत्रैव विलयं गतम् ॥ १३२ ॥
मन्त्रेणानेन मुद्राम्भो निपीतं सप्तमन्त्रितम् ।
सद्यःशूलहरं प्रोक्तमिति भालुकिभाषितम् ॥ १३३ ॥
अनया मुद्रया तप्तं तैलमग्नौ सुनिश्चितम् ।
लेपितं हन्ति वेगेन शूलं यत्र क्वचिद्भवेत् ॥
सद्यः सूतिकरं नार्याः सद्यो नेत्ररुजापहम् ॥ १३४ ॥

इति सस्यकाधिकारः ।

राम शब्द से लेकर गतम् यहां तक मन्त्र का स्वरूप है। इस मन्त्र को पढ़ते हुए मुद्रा को जल में छोड़ दें। इस तरह सात वार मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित कर के पीलाने से शीघ्र ही शूल नष्ट होजाता है। यह भालुकि महर्षि का कथन है। इस अंगूठी को तैल में डाल कर अग्नि पर पकावें। फिर जहां कहीं शूल चलता हो वहां इस तैल के लगाने से शूल चलना बन्द हो जाता है तथा गर्भवती स्त्रियों के हस्त पाद पर लगा के मर्दन करने से तुरन्त प्रसव होता है। नेत्रों में लगाने से नेत्र पीड़ा दूर हो जाती है ॥१३२-१३४॥

अथ चपलः—

गौरः श्वेतोऽरुणः कृष्णश्चपलस्तु चतुर्विधः ।
हेमाभश्चैव ताराभो विशेषाद्रसबन्धनः ॥ १३५ ॥
शेषौ तु मध्यौ लाक्षावच्छीघ्रद्रावौ तु निष्फलौ ।
वङ्गवद्द्रवते वह्नौ चपलस्तेन कीर्तितः ॥ १३६ ॥

चपल धातु सर्षप वर्ण युक्त (गौर) और श्वेत, रक्त तथा कृष्ण इस तरह चार प्रकार का होता है। गौर और श्वेत चपल पारद के बन्धन करने में श्रेष्ठ हैं। शेष रक्त तथा कृष्ण वर्ण की चपल लाह के समान शीघ्र द्रव हो जाने के कारण मध्यम कही गई है तथा उन से विशेष फल भी नहीं होता है। यह धातु अग्नि में वङ्ग (रांगा) के समान द्रव हो जाता है। इस कारण इसको चपल कहते हैं ॥ १३५-१३६ ॥

विमर्शः—चपल को बिस्मथ (Bismuth) कहते हैं। इसका संकेत Bi है तथा परमाणु भार (Atomic weights) २०९ है।

उपस्थिति—यह धातु मुक्तावस्था में भी पाई जाती है। इस धातु की प्राप्ति

प्रायः बिस्मथ आक्साइड (Bismuth oxide Bi_2S_2) और बिस्मथ तथा बिस्मथ सल्फाईड (Bismuth sulphide बिस्मथ ग्लांस Bi_2S_2) । इन दो प्रधान खनिजों से होती है तथा टङ्गस्टेन और वङ्ग के खनिजों के साथ भी थोड़ी मात्रा में बिस्मथ पाया जाता है ।

बिस्मथ की उपलब्धि बिस्मथ आक्साइड (Bismuth oxide) को कोयलों के साथ गरम करने से आक्साइड लब्धीकृत हो बिस्मथ मुक्त हो जाता है तथा द्रव अवस्था में बह कर कोयले से पृथक् हो जाता है ।

यह क्रिया इस प्रकार होती है ।

$$2\,Bi_2O3 + C = 4\,Bi + 3\,co\,2$$

गुण—बिस्मथ भूरे रङ्ग की रक्त आभा ली हुई क्रिस्टलीय धातु है । यह कठोर और भङ्गुर होती है । इस में चमकीली धातुकद्युति होती है । इस का विशिष्ट घनत्व ७·८ होता है । यह ७०^{0} से० पर के तापक्रम पर पिघलती है ।

यह वायु या आक्सिजन से आक्रान्त नहीं होती है परन्तु तीव्र आंच से वायु में आक्साइड के रूप में परिणत हो जाती है । तनु गन्धकाम्ल और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की भी इस पर कोई क्रिया नहीं होती है । तप्त गन्धकाम्ल से यह बिस्मथ सल्फेट (Bi 2 so 4) 3 और सल्फर डाई-आक्साइड (Sulphur Di oxide) में परिणत हो जाता है । तनु अथवा समाहृत नाइट्रिक अम्ल से यह शीघ्रता से आक्रान्त होकर बिस्मथ नाइट्रेट बनती है और नाइट्रोजन का आक्साइड मुक्त करती है ।

बिस्मथ का उपयोग—आज कल इस का स्टीरियो टाइप में अधिक प्रयोग होता है तथा निम्न तापक्रम पर पिघलने वाली अनेक धातुओं के निर्माण में प्रयुक्त होती है । बिस्मथ के अनेक आक्साइड होते हैं । उन में बिस्मथ ट्राइ-आक्साइड् और बिस्मथ पेण्टाक्साइड मुख्य हैं । बिस्मथ का सल्फाईड प्रकृति में भी पाया जाता है और कृत्रिम रीति से भी तैयार हो सकती है । बिस्मथ के सामान्य नाइट्रेट और भास्मिक नाइट्रेट होते हैं । इसका पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र में उदर रोग और उपदंश आदि में विशेष प्रयोग होता है । किन्तु हमारे चिकित्सक इसका प्रयोग नहीं करते हैं । वैद्य बन्धुओं को इसका प्रयोग कर के लाभ उठाना चाहिए ।

अथ गुणाः—

चपलो लेखनः स्निग्धो देहलोहकरो मतः ।
रसराजसहायः स्यात्तिक्तोष्णमधुरो मतः ॥ १३७ ॥
चपलः स्फटिकच्छायः षडस्रः स्निग्धको गुरुः ।
त्रिदोषघ्नोऽतिवृष्यश्च रसबन्धविधायकः ॥ १३८ ॥

महारसेषु कैश्चिद्धि चपलः परिकीर्तितः ॥ १३९ ॥

चपल धातु लेखन (मोटे शरीर को पतला करना) तथा स्निग्ध है और शरीर को लोह समान दृढ करती है। पारद के साथ मिलाने से अधिक गुण प्रद और स्वाद में तिक्त मधुर तथा उष्ण प्रकृति वाली है। चपल श्वेत पाषाण या फिटकरी के सदृश और षट् कोण युक्त होती है। यह स्निग्ध, गुरु, त्रिदोषनाशक, अत्यन्त वृष्य और पारद बन्धन करती है। कुछ विद्वानों की सम्मति है कि महा रसों में चपल की भी गणना है ॥ १३७–१३९ ॥

अथ शोधनम्—

जम्बीरकर्कोटकशृङ्गवेरैर्विभावनाभिश्चपलस्य शुद्धिः ॥१४०॥

चपल धातु को चूर्ण करके निम्बू, वन्ध्या कर्कोटकी तथा आर्द्रक के रस की सात भावना देने से शुद्ध हो जाती है ॥ १४० ॥

अथ सत्त्वपातनम्—

शैलं तु चूर्णयित्वा तु धान्याम्लोपविषैर्विषैः।
पिण्डं वध्वा तु विधिवत्पातयेच्चपलं तथा ॥ १४१ ॥

इति चपलाधिकारः।

चपल को काञ्जी, विष तथा उपविष के काथों की भावना देकर (अर्थात् इन से घोटकर) गोला वना कर मूषा में फूंकने से सत्व निकल जाता है ॥ १४१ ॥

अथ रसकः—

रसको द्विविधः प्रोक्तो दर्दुरः कारवेल्लकः।
सदलो दर्दुरः प्रोक्तो निर्दलः कारवेल्लकः ॥ १४२ ॥

रसक अर्थात् खर्पर दो प्रकार का होता है। जो पत्ररूप रचना वाला होता है उसे दर्दुर कहते हैं और जिसमें पत्र रचना नहीं होती है उसे कारवेल्लक कहते हैं ॥ १४२ ॥

विमर्शः—रसक को खर्पर कहते हैं तथा इसका अङ्ग्रेजी नाम स्मिथ ़सोनाइट (Smithsonite) तथा केलेमाइट (Calamite) है। प्राचीन रस शास्त्र में जो इसके दो भेद (रसको द्विविधः प्रोक्तो दर्दुरः कारवेल्लकः) किये गये हैं उनमें कारवेल्लक खर्पर के लक्षण स्मिथ सोनाइट के साथ तथा दर्दुर खर्पर के लक्षण केलेमाइट के साथ मिलते जुलते हैं। प्रथम जिङ्क सिलिकेट है तथा द्वितीय जिङ्क कार्बोनेट है।

औषधिकर्म में प्रथम का प्रयोग प्रशस्त है। यह प्रायः अमेरिका की खानों से आता है। आज काल बाजार में खर्पर नाम से जो खनिज आता है वह एक प्रकार की मृत्तिका है जहां तक हो सके उसका प्रयोग न करें शुद्ध खनिज मंगवा कर ही प्रयोग करना चाहिए।

सस्यकस्य प्रयोगविषयो गुणाश्च—

सत्त्वपाते शुभः पूर्वो द्वितीयश्चौषधादिषु।
रसकः सर्वमेहघ्नः कफपित्तविनाशनः॥
नेत्ररोगक्षयघ्नश्च लोहपारदरञ्जनः॥ १४३॥
नागार्जुनेन सन्दिष्टौ रसश्च रसकावुभौ।
श्रेष्ठौ सिद्धरसौ ख्यातौ देहलोहकरौ परम्॥ १४४॥
रसश्च रसकश्चोभौ येनाग्निसहनौ कृतौ।
देहलोहमयी सिद्धिर्दासी तस्य न संशयः॥ १४५॥

दर्दुर नामक खर्पर का सत्त्वपातन कर्म में प्रयोग होता है तथा औषधियों में कारवेल्लक का प्रयोग होता है। खर्पर बीस प्रकार के प्रमेह, कफ, पित्त, नेत्ररोग और राजयक्ष्मा को नष्ट करता है। लौह तथा पारद को रङ्ग देता है। नागार्जुनाचार्य ने खर्पर तथा पारद को सिद्ध रस कहा है तथा ये दोनों देह को स्थिर करते हैं। जो मनुष्य खर्पर तथा पारद को अग्नि में नहीं उड़ने वाले धर्म का बना देता है अथवा जो मनुष्य दोनों को अपनी पाचकाग्नि से पचा लेता है उसकी देहसिद्धि दासी वन जाती है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है॥ १४३–१४५॥

अथ शोधनम्—

कटुकालाबुनिर्यास आलोड्य रसकं पचेत्।
शुद्धं दोषविनिर्मुक्तं पीतवर्णं च जायते॥ १४६॥

खर्पर को कड़वी तुम्बी के रस में घोट कर पकाने से दोषरहित और शुद्ध होजाता है तथा इसका रङ्ग पीला होजाता है॥ १४६॥

अथ मतान्तरम्—

खर्परः परिसन्तप्तः सप्तवारं निमज्जितः।
बीजपूररसस्यान्तर्निर्मलत्वं समश्नुते॥ १४७॥
नृमूत्रे वाऽश्वमूत्रे वा तक्रे वा काञ्जिकेऽथवा।
प्रताप्य मज्जितं सम्यक् खर्परं परिशुद्ध्यति॥ १४८॥

खर्पर को अग्नि में खूब प्रतप्त कर बिजोरे निम्बू के रस में सात बार बुझाने-से शुद्ध हो जाता है। अथवा नरमूत्र, हयमूत्र तथा तक्र और काञ्जी में तप्त कर बुझाने से भी शुद्ध होजाता है ॥ १४७–१४८ ॥

अथ रसकस्य ताम्रादिरञ्जनविधिः—

नरमूत्रे स्थितो मासं रसको रञ्जयेद्ध्रुवम् ।
शुद्धताम्रं रसं तारं शुद्धस्वर्णप्रभं यथा ॥ १४९ ॥

खर्पर को एक मास तक मनुष्य के मूत्र में डुबो कर रखने से शुद्धताम्र, पारद तथा चांदी को सुवर्ण के समान कान्तियुक्त कर देता है ॥ १४९ ॥

अथ खर्परस्य भस्म तथा सत्त्वपातनविधिश्च—

हरिद्रात्रिफलारालसिन्धुधूमैः सटङ्कणैः ।
सारुष्करैश्च पादांशैः साम्लैः सम्मर्द्य खर्परम् ॥ १५० ॥
लिप्तं वृन्ताकमूषायां शोषयित्वा निरुध्य च ।
मूषां मुषोपरि न्यस्य खर्परं प्रधमेत्ततः ॥ १५१ ॥
खर्परे प्रद्रुते ज्वाला भवेन्नीला सिता यदि ।
तदा सन्दंशतो मूषां धृत्वा कृत्वा त्वधोमुखीम् ॥ १५२ ॥
शनैरास्फालयेद्भूमौ यथा नालं न भज्यते ।
वङ्गाभं पतितं सत्त्वं समादाय नियोजयेत् ।
एवं त्रिचतुरैर्वारैः सर्वं सत्त्वं विनिःसरेत् ॥ १५३ ॥

शुद्ध खर्पर के चूर्ण में हरिद्रा, त्रिफला, राल, गृहधूम सुहागा, भल्लातक (भिलांवा) प्रत्येक खर्पर से चतुर्थांश भाग की मात्रा से मिला कर काञ्जी या निम्बू के रस में घोट कर वृन्ताक नाम की मूषा में लेप कर दें। सूखने पर मूषा का मुख बन्द करके इसे दूसरी मूषा के ऊपर रखकर अग्नि में फूंके। इस तरह खर्पर के द्रुत होने पर मूषा से श्वेत या नीली ज्वाला निकलने लगे तब उसे संड़सी से पकड़ कर पृथ्वी की ओर मुख औंधा कर ताड़न करे। परन्तु मूषा की नाल को बचाना चाहिए। इस तरह वङ्ग के समान सत्त्व निकलता है। इस विधि को तीन या चार वार करने से सम्पूर्ण सत्व निकल जाता है। इसका सर्वत्र प्रयोग करें ॥ १५०–१५३ ॥

अथ मतान्तरम्—

साभयाजतुभूनागनिशाधूमजटङ्कणम् ।
मूकमूषागतं ध्मातं शुद्धं सत्त्वं विमुञ्चति ॥ १५४ ॥

अथवा हरीतकी, लाक्षा, केंचुआ (अर्थवर्म), हरिद्रा, घर का धुंआं, सुहागा इन सबको खर्पर से चतुर्थांश भाग की मात्रा से लेकर खर्पर चूर्ण को मूकमूषा में रख कर फूंकने से सत्त्व निकल जाता है ॥ १५४ ॥

अथ मतान्तरम्—

लाक्षागुडाऽऽसुरीपथ्याहरिद्रासर्जटङ्कणैः ।
सम्यक् सञ्चूर्ण्य तत्पक्वं गोदुग्धेन घृतेन च ॥ १५५ ॥
वृन्ताकमूषिकामध्ये निरुध्य गुटिकाकृतम् ।
ध्मात्वा ध्मात्वा समाकृष्य ढालयित्वा शिलातले ।
सत्त्वं वङ्गाकृति ग्राह्यं रसकस्य मनोहरम् ॥ १५६ ॥

अथवा लाक्षा, गुड़, राई (राजिका) हरड़, हल्दी, राल और टङ्कण इनका चूर्णकर खर्पर के साथ घोऐं । फिर गोघृत और दुग्ध से पका कर गोला वनाले' । फिर उस गोले को वृन्ताक मूषा में रखकर उसका मुख वन्द कर फूंके । पश्चात् किसी पत्थर पर मूषा को ढालने से वङ्ग के समान सुन्दर सत्त्व निकल आता है ॥ १५५–१५६ ॥

अथ मतान्तरम्—

यद्वा जलयुतां स्थालीं निखनेत्कोष्ठिकोदरे ।
सच्छिद्रं तन्मुखे मल्लं तन्मुखेऽधोमुखीं क्षिपेत् ॥ १५७ ॥
मूषोपरि शिखित्रांश्च प्रक्षिप्य प्रधमेद्दृढम् ।
पतितं स्थालीकानीरे सत्त्वमादाय योजयेत् ॥ १५८ ॥

अथवा एक हांडी में जल भर कर उसे जमीन में गाड़ देवें । उस स्थाली के मुख पर छिद्र वाला एक सकोरा रख दें । उस सकोरे पर मूषा का मुख वाला भाग रख कर मुषा पर कोयले डालकर अग्नि पर फूंके । खूब प्रधमन करने से मूषा के मुख से सत्त्व निकल कर हण्डिका के जल में गिर जायगा । उसको लेकर औषधियों के कार्य में प्रयोग करना चाहिए ॥ १५७–१५८ ॥

अथ सत्त्वमारणम्—

तत्सत्त्वं तालकोपेतं प्रक्षिप्य खलु खर्परे ।
मर्दयेल्लोहदण्डेन भस्मीभवति निश्चितम् ॥ १५९ ॥

खर्पर सत्त्व को कड़ाही में डाल कर उसमें समान मात्रा से हरताल डाल कर अग्नि पर रख दें और लौह के दण्ड से चलाता रहे । इस तरह खर्पर सत्त्व की भस्म हो जाती है ॥ १५९ ॥

अथ प्रयोगविधिः—

तद् भस्म मृतकान्तेन समेन सह योजयेत् ।
अष्टगुञ्जामितं चूर्णं त्रिफलाक्काथसंयुतम् ॥ १६० ॥
कान्तपात्रस्थितं रात्रौ तिलजप्रातवापकम् ।
निषेवितं निहन्त्याशु मधुमेहमपि ध्रुवम् ॥ १६१ ॥
पित्तं क्षयं च पाण्डुं च श्वयथुं गुल्ममेव च ।
रक्तगुल्मं च नारीणां प्रदरं सोमरोगकम् ॥ १६२ ॥
योनिरोगानशेषांश्च विषमांश्च ज्वरानपि ।
रजःशूलं च नारीणां कासं श्वासञ्च हिध्मिकाम् ॥ १६३ ॥

इति रसकाधिकारः ।

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये
रसोत्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

खर्पर सत्त्व की भस्म को समान कान्तलौह भस्म के साथ मिलादें । इसमें से ८ रत्ती (गुञ्जा) लेकर एक कान्त लौह के पात्र में डालकर उसमें त्रिफला क्वाथ पूर्णमात्रा में भर दें, रात भर पड़ा रख कर प्रातःकाल इसमें कुछ तिलों का क्षार डाल कर सेवन करने से मधुमेह (डायबेटिज़), पित्त के रोग, क्षय, पाण्डु, शोथ, गुल्म, स्त्रियों का रक्तगुल्म, प्रदर और सोमरोग, सम्पूर्ण योनिरोग, विषम ज्वर (मलेरिया), रजःप्रवृत्तिकालीन शूल, कास, श्वास हिचकी आदि अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १६०–१६३ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां
रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्यभाषाटीकायां रसो-
त्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

अथोपरसानां नामानि—

गन्धाश्मगैरिकासीसकांक्षीतालशिलाञ्जनम् ।
कङ्कुष्ठं चेत्युपरसाश्चाष्टौ पारदकर्मणि ॥ १ ॥

गन्धक (सल्फर), गैरिक, कासीस, सुराष्ट्रमृत्तिका (कांक्षी), हरताल, मैनशील, अञ्जन, कङ्कुष्ठ ये आठ उपरस हैं । इनका पारद के कार्य में उपयोग होता है ॥ १ ॥

अथ गन्धकोत्पत्तिः—

पार्वत्युवाच ।

गन्धकस्य तु महात्म्यं तद्गुह्यं वद मे विभो ॥ २ ॥

हे भगवन् गन्धक का गुप्त माहात्म्य मुझे सुनाईये ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच ।

श्वेतद्वीपे पुरा देवि सर्वरत्नविभूषिते ।
सर्वकाममये रम्ये तीरे क्षीरपयोनिधेः ॥ ३ ॥
विद्याधरीभिर्मुख्याभिरङ्गनाभिश्च योगिनाम् ।
सिद्धाङ्गनाभिः श्रेष्ठाभिस्तथैवाप्सरसां गणैः ॥ ४ ॥
देवाङ्गनाभी रम्याभिः क्रीडन्तीभिर्मनोहरैः ।
गीतैर्नृत्यैर्विचित्रैश्च वाद्यैर्नानाविधैस्तथा ॥ ५ ॥
एवं संक्रीडमानायाः प्राभवत्प्रसृतं रजः ।
तद्रजोऽतीव सुश्रोणि सुगन्धि सुमनोहरम् ॥ ६ ॥
रजसश्चातिबाहुल्याद्वासस्ते रक्ततां ययौ ।
तत्र त्यक्त्वा तु तद्वस्त्रं सुस्नाता क्षीरसागरे ॥ ७ ॥
वृता देवाङ्गनाभिस्त्व कैलासं पुनरागता ।
ऊर्मिभिस्तद्रजोवस्त्रं नीतं मध्ये पयोनिधेः ॥ ८ ॥
एवं ते शोणितं भद्रे प्रविष्टं क्षीरसागरे ।
क्षीराब्धिमथने चैतदमृतेन सहोत्थितम् ॥ ९ ॥
निजगंधेन तान्सर्वान्हर्षयन्सर्वदानवान् ।
ततो देवगणैरुक्तं गन्धकाख्यो भवत्वयम् ॥ १० ॥

रसस्य बन्धनार्थाय जारणाय भवत्वलम् ।
ये गुणाः पारदे प्रोक्तास्ते चैवात्र भवन्त्विति ॥ ११ ॥
इति देवगणैः प्रीतैः पुरा प्रोक्तं सुरेश्वरि ।
तेनायं गन्धको नाम विख्यातः क्षितिमण्डले ॥ १२ ॥

इस तरह पार्वतीजी के प्रश्न करने पर शिवजी कहने लगे हे देवि ? किसी समय श्वेतद्वीप नामक देश में सर्वरत्नों से शोभायमान, निखिल कामदेव की सामग्री वाले क्षीरसमुद्र के तट पर श्रेष्ठ सिद्धाङ्गनाओं, अप्सराओं, विद्याधरियों योगिनियों और देवताओं की स्त्रियों के साथ नाना प्रकार की रासक्रीड़ा तथा मनोहर गीत, नृत्य, वाद्य आदि क्रीड़ा करते करते तुम्हारा रजःस्राव हो गया । हे सुश्रोणि ? वह रज अत्यन्त सुगन्धित और मनोहर तथा उस रज के अधिक निकलने से तुम्हारे वस्त्र लाल हो गये, तब तुम उन रञ्जित वस्त्रों को वहीं छोड़ कर क्षीर समुद्र में स्नान कर देवताओं की स्त्रियों के साथ कैलास पर्वत पर चली आई । उधर वे रज के वस्त्र तरङ्गों के द्वारा क्षीरसमुद्र में मिल गये । हे भद्रे ? इस तरह तुम्हारा आर्तव शोणित क्षीर सागर में प्रविष्ट हो गया । जिस समय क्षीर सागर का मथन होने लगा उस समय यह रज सभी दानवों को अपनी सुगन्ध से प्रसन्न करता हुआ अमृत के साथ बाहर निकला, तब देव समाज ने कहा कि यह संसार में गन्धक कहलाएगा और पारद के बन्धन तथा जारण के लिये समर्थ होगा और जो गुण पारद में हैं वे सब इस में भी होंगे । हे सुरेश्वरि ? प्रसन्न हुए देवताओं ने इस तरह गन्धक के विषय में कहा है । तभी से यह खनिज संसार में गन्धक के नाम से विख्यात हुआ ॥ ३-१२ ॥

अथ गन्धकभेदाः—

स चापि त्रिविधो देवि शुकचञ्चुनिभो वरः ।
मध्यमः पीतवर्णः स्याच्छुक्लवर्णोऽधमः प्रिये ॥ १३ ॥
चतुर्धा गन्धको ज्ञेयो वर्णैः श्वेतादिभिः खलु ।
श्वेतोऽत्र खटिका प्रोक्तो लेपने लोहमारणे ॥ १४ ॥
तथा चामलसारः स्याद्यो भवेत्पीतवर्णवान् ।
शुकपिच्छः स एव स्याच्छ्रेष्ठो रसरसायने ॥ १५ ॥
रक्तश्च शुकतुण्डाख्यो धातुवादविधौ वरः ।

दुर्लभः कृष्णवर्णश्च स जरामृत्युनाशनः ॥ १६ ॥

हे देवि ? वह गन्धक तीन प्रकारका है। प्रथम तोते की चोञ्च के समान लाल वर्ण वाला होता है वह उत्तम है। दूसरा पीले वर्ण का होता है वह मध्यम होता है। तृतीय श्वेत वर्ण का होता है वह अधम है। कुछ लोगों का मत है कि श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण भेद से गन्धक चार तरह का होता है। इन में श्वेत गन्धक को खटिक कहते हैं। क्यों कि यह खड़िया के समान सफेद होता है। यह लेप करने में तथा लौह मारग में काम आता है और जो गन्धक पीले वर्ण का होता है उसे आमला सार गन्धक कहते हैं। इसी का एक दूसरा भेद होता है, उस का नाम शुक पिच्छ है, वह रस और रसायन में श्रेष्ठ होता है। जो गन्धक तोते की चोञ्च समान होता है वह सोना, चांदी इत्यादि धातुओं के बनाने में श्रेष्ठ होता है। जो कृष्ण वर्ण का गन्धक होता है वह जरा और मृत्यु को नष्ट करता है किन्तु वह दुर्लभ है ॥ १३–१६ ॥

अथ गन्धकगुणाः—

गन्धाश्मातिरसायनः सुमधुरः पाके कटूष्णो मतः ।
कण्डूकुष्ठविसर्पदद्रुदलनो दीप्तानलः पाचनः ॥
आमोन्मोचनशोषणो विषहरः सूतेन्द्रवीर्यप्रदः ।
गौरीपुष्पभवस्तथा कृमिहरःसत्त्वात्मकः सूतजित् ॥ १७ ॥
बलिना सेवितः पूर्वं प्रभूतबलहेतवे ॥ १८ ॥

गन्धक श्रेष्ठ रसायन है तथा स्वाद में मधुर तथा पाक में कटु एवं उष्ण है। यह खुजली, कुष्ठ, विसर्प (फैलने वाली खुजली) और दद्रु को नष्ट करता है, पाचन शक्ति बढ़ाता है, अग्नि दीप्त करता है, आंव को दूर करता है तथा उस का शोषक है, विषनाशक तथा पारद के गुणों का उत्कर्ष बढ़ाता है। प्लीहावृद्धि, आध्मान और कृमियों को नष्ट करता है। सत्त्वस्वरूप गन्धक पारद को जीतने वाला है। पूर्वकाल में शक्ति प्राप्ति के लिये राजा बली ने इस का सेवनकिया था॥१७–१८॥

अथ वलिवसाख्यगन्धकोत्पत्तिः—

वासुकिं कर्षतस्तस्य तन्मुखज्वालया द्रुता ।
वसा गन्धकगन्धाढ्या सर्वतो निःसृता तनाः ॥ १९ ॥
गन्धकत्वं च सम्प्राप्ता गन्धोऽभूत्सविषःस्मृतः ।

तस्माद्बलिवसेत्युक्तो गन्धकोऽतिमनोहरः ॥ २० ॥

समुद्र के मन्थन के समय वासुकी को खींचते हुए उस के मुख की ज्वाला से मिली हुई राजा बली के शरीर से गन्धक की गन्ध से मिली हुई जो वसा (चर्बी) निकली वही गन्धक के स्वरूप को प्राप्त होकर विषगन्धक कहलाई। इस अत्यन्त मनोहर गन्धक को बलिवसा कहते हैं ॥ १९-२० ॥

अथ गन्धकशुद्धिः—

पयः स्विन्नो घटीमात्रं वारिधौतो हि गन्धकः ।
गव्याज्यविद्रुतो वस्त्राद्गालितः शुद्धिमृच्छति ॥ २१ ॥
एवं संशोधितः सोऽयं पाषाणानंबरे त्यजेत् ।
घृते विषं तुषाकारं स्वयं पिण्डत्वमेव च ॥ २२ ॥
इति शुद्धो हि गन्धाश्मा नापथ्यैर्विकृतिं व्रजेत् ।
अपथ्यादन्यथा हन्यात्पीतं हालाहलं तथा ॥ २३ ॥

गन्धक को एक घण्टे तक दुग्ध में स्वेदन कर जल से धो डालें । फिर उसे चूल्हे पर कड़ाई में द्रव कर के वस्त्र से छान डालें। इस प्रकार से शुद्ध हुए गन्धक के पाषाण के टुकड़े तथा अन्य मल निकल जाते हैं। और विष बिन्दुओं के रूप में घी के ऊपर तैरने लगता है । स्वयं गन्धक ठंढक से पिण्ड के स्वरूप का हो जाता है । इस तरह से शुद्ध गन्धक के सेवन करने पर अपथ्य होने पर भी विकार उत्पन्न नहीं होता । किन्तु अशुद्ध गन्धक सेवन करने पर अपथ्य हो जाय तो वह हालाहल विष की तरह मनुष्य को मार डालता है। गन्धक को पिघला (द्रुत) कर भृङ्गराज के रस में छोड़ने से शुद्ध हो जाता है। इस तरह सात बार करना चाहिए। प्रत्येक समय में भृङ्गराज का रस बदलना चाहिये और गन्धक को उष्ण जल से धोना चाहिए ॥ २१-२३ ॥

मतान्तरम्—

गन्धको द्रावितो भृङ्गरसे क्षिप्तो विशुध्यति ।
तद्रसैः सप्तधा भिन्नो गन्धकः परिशुध्यति ॥ २४ ॥

अथवा गन्धक को द्रुत करके सात बार भृङ्गराज (भांगरे) के रस में बुझाने से भी शुद्धि हो जाती है अथवा भृङ्गराज के स्वरस से आप्लावित करके सूर्योदय से सूर्यास्त तक घोटें । इस तरह सात बार घोटने से वह शुद्ध हो जाता ॥२४॥

अथ मतान्तरम्—

स्थाल्यां दुग्धं विनिक्षिप्य मुखे वस्त्रं निबध्य च ।
गन्धकं तत्र निक्षिप्य चूर्णितं सिकताकृतिम् ॥ २५ ॥
छादयेत्पृथुदीर्घेण खर्परेणैव गन्धकम् ।
ज्वालयेत्खर्परस्योर्ध्वं वनच्छाणैस्तथोपलैः ॥ २६ ॥
दुग्धे निपतितो गन्धो गलितः परिशुद्धयति ।
शतवारं कृतश्चैव निर्गन्धो जायते ध्रुवम् ॥ २७ ॥

एक हण्डिका में दुग्ध (जितने में गन्धक डूब सके) भर कर पतले शुद्ध वस्त्र से उसका मुख बांध देना चाहिए तथा उस वस्त्र पर गन्धक का बारीक चूर्ण कर रख दें और ऊपर से शराव द्वारा ढक दें, बाद में सकोरे पर जङ्गली उपलों (छाणों) की अग्नि जलादें। इससे गन्धक पिघल कर वस्त्र से छन कर दुग्ध में पड़ जाता है और शुद्ध हो जाता है। इस तरह सौ बार करने से गन्धक निःसन्देह गन्ध रहित हो जाता है ॥ २५-२७ ॥

अथ प्रयोगः—

इत्थं विशुद्धस्त्रिफलाज्यभृङ्गमध्वन्वितः शाणमितो हि लीढः ।
गृध्राक्षितुल्यं कुरुतेऽक्षियुग्मं करोति रोगोज्झितदीर्घमायुः ॥ २८ ॥

इस तरह उपर्युक्त विधि से शतवार शुद्ध किया हुआ गन्धक एक शाण (चोअन्नी भर) लेकर उसमें त्रिफला चूर्ण, मधु, भांगरे का रस और घृत मिला कर प्रतिदिन सेवन करने से दोनों नेत्र गिद्ध की आंख के समान दूर की वस्तुओं को देखने में समर्थ हो जाते हैं और रोग रहित होकर मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त करता है ॥ २८ ॥

अथ गन्धकद्रुतिः—

कलांशव्योषसंयुक्तं गन्धकं श्लक्ष्णचूर्णितम् ।
अरत्निमात्रे वस्त्रे तद्विप्रकीर्य विवेष्टय तत् ॥ २९ ॥
सूत्रेण वेष्टयित्वाऽथ यामं तैले निमज्जयेत् ।
धृत्वा संदंशतो वर्तिमध्यं प्रज्ज्वालयेच्च तम् ।
द्रुतो निपतितो गन्धो बिन्दुशः काचभाजने ॥ ३० ॥

शुद्ध गन्धक में षोड़शांस त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) का चूर्ण मिला कर

खरल में दोनों का अत्यन्त बारीक चूर्ण करलें, इस चूर्ण को एक हाथ चौरस कपड़े पर बिछा कर उसे मोड़ कर दृढ बत्ती बनाले उस बत्ती को धागे से लपेट कर एक प्रहर तक तिल तैल में डूबो दें। फिर उसे संड़सी से बीच में पकड़ कर अग्नि से जलावें और नीचे एक काच का पात्र रख दें जिसमें गन्धक द्रुत होकर विन्दु २ कर के तैल के रूप में एकत्रित हो जायगा ॥ २९-३० ॥

अथ प्रयोगविधिः—

तां द्रुतिं प्रक्षिपेत्पत्रे नागवल्ल्यास्त्रिविन्दुकाम् ॥
वल्लेन प्रमितं स्वच्छं सूतेन्द्रं च विमर्दयेत् ॥ ३१ ॥
अङ्गुल्याऽथ सपत्रां तां द्रुतिं सूतं च भक्षयेत् ।
करोति दीपनं तीव्रं क्षयं पाण्डु च नाशयेत् ॥ ३२ ॥
कासं श्वासं च शूलार्तिं ग्रहणामतिदुर्धराम् ।
आमं विनाशयत्याशु लघुत्वं प्रकरोति च ॥ ३३ ॥

उस तैल स्वरूप गन्धक द्रुति के तीन बूंद और एक रत्ती भर रससिन्दूर ले के घोट कर दोनों को अङ्गुली से पान में मिला कर भक्षण करें। इस से अग्नि दीप्त होती है तथा तीव्र क्षय, पाण्डु, कास और श्वास ये रोग नष्ट हो जाते हैं, तथा शूल, दुःसाध्य ग्रहणी, आंव ये भी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन करने से शरीर में लघुता उत्पन्न होती है ॥ ३१-३३ ॥

अथान्यविधप्रयोगविधिः—

घृताक्ते लोहपात्रे तु विद्रुतं शुद्धगन्धकम् ।
घृताक्तदर्विकाक्षिप्तं द्विनिष्कप्रमितं भजेत् ॥
हन्ति क्षयमुखान् रोगान्कुष्ठरोगं विशेषतः ॥ ३४ ॥

घृत से लिप्त लोह पात्र (कड़ाही) में शुद्ध गन्धक डालकर पिघलावें फिर उसे घृत से लिप्त कलच्छु से चलाते रहें। कुछ देर बाद नीचे उतार कर चूर्ण कर रख लें। इस गन्धक को एक निष्क (चार मासा) से दो निष्क की मात्रा में सेवन करने से कुष्ठ तथा क्षय रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

गन्धकसेवने वर्ज्यानि—

क्षाराम्लतैलसौवीरविदाहिद्विदलं तथा ।
शुद्धगन्धकसेवायां त्याज्यं योगयुतेन हि ॥ ३५ ॥

शुद्ध गन्धक का सेवन करने वाले मनुष्य क्षार (नीमक), अम्ल (निम्बू इ०), तैल और निस्तुष यव या गोधूमकृत काञ्जी (सौवीर), जलन कारक वस्तु या अम्ल-पाक वस्तु जैसे वंशकरीरादि और दो दल वाले मुद्गादि शमीधान्य त्याग दें॥३५॥

कुष्ठे गन्धकप्रयोगः—

गन्धकस्तुल्यमरिचः षड्गुणत्रिफलान्वितः ।
घृष्टः शम्पाकमूलेन पीतश्चाखिलकुष्ठहा ॥ ३६ ॥
तन्मूलं सलिले पिष्टं लेपयेत्प्रत्यहं तनौ ।
दृष्टप्रत्यययोगोऽयं सर्वत्राप्रतिवीर्यवान् ।
श्रीमता सोमदेवेन सम्यगत्र प्रकीर्तितः ॥ ३७ ॥

शुद्ध गन्धक और मरिच चूर्ण समान भाग लेकर गन्धक से षड् गुण अधिक त्रिफला चूर्ण मिलाकर घोट लें। फिर इस चूर्ण को अमलतास की जड़ के क्वाथ या स्वरस के साथ पीने से सम्पूर्ण कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। इसी के साथ साथ अमलतास की जड़ को पानी में चन्दन की तरह घिस कर उसका शरीर पर लेप करना चाहिए। यह योग कुष्ठनाशन के लिये प्रत्यक्ष फलप्रद देखा गया है। इसके समान अन्य योग शान्तिप्रद नहीं है। यह सोमदेव ने बताया है॥३६-३७॥

अथ कण्डूहरप्रयोगः—

द्विनिष्कप्रमितं गन्धं पिष्ट्वा तैलेन संयुतम् ।
अथापामार्गतोयेन सतैलमरिचेन हि ॥ ३८ ॥
विलिप्यासकलं देहं तिष्ठेद्घर्मे ततः परम् ।
तक्रभक्तं च भुञ्जीत तृतीये प्रहरे खलु ॥ ३९ ॥
भजेद्रात्रौ तथा वह्निं समुत्थाय तथाप्रगे ।
महिषीछगणं लिप्त्वा स्नायाच्छीतेन वारिणा ॥ ४० ॥
ततोऽभ्यज्य घृतैर्देहं स्नायादिष्टोष्णवारिणा ।
अमुना क्रमयोगेन विनश्यत्यतिवेगतः ।
दुर्जया बहुकालीना पामा कण्डूः सुनिश्चितम् ॥ ४१ ॥
गन्धकस्य प्रयोगाणां शतं तत्र प्रकीर्तितम् ।
ग्रन्थविस्तारभीतेन सोमदेवेन भूभुजा ॥ ४२ ॥

दो निष्क (८ मासे) भर शुद्ध गन्धक का चूर्ण तथा इतना ही मरिचचूर्ण

लेकर दोनों को कटुतैल और अपामार्ग के जल के साथ घोट कर सम्पूर्ण शरीर में लेप कर धूप में खड़ा रहना चाहिए। तीसरे प्रहर में भूख लगने पर मट्ठा और भात का भोजन करें। रात्रि में अग्नि से देह कों तपावें। दूसरे दिन उठ कर भैंस के गोबर का शरीर पर लेप कर शीत जल से स्नान करें। पश्चात् समग्र शरीर पर घृत की मालिश कर मन्दोष्ण जल से स्नान करें। इस तरह इस प्रयोग का कुछ दिन सेवन करने से शीघ्र ही बहुकालीन तथा असाध्य पामा, और कण्डू निश्चय ही नष्ट हो जाती हैं। इस तरह के गन्धक के सैकड़ों प्रयोग हैं उनका ग्रन्थ विस्तार होने के भय से महाराज सोमदेव ने नहीं वर्णन कियाहै ॥३८–४२॥

अथ गन्धकतैलम्—

अथवाऽर्कस्नुहीक्षीरैर्वस्त्रं लेप्यन्तु सप्तधा।
गन्धकं नवनीतेन पिष्ट्वा वस्त्रं लिपेद्धनम् ॥ ४३ ॥
तद्वर्तिं ज्वलितां दंशे धृतां कुर्यादधोमुखीम्।
तैलं पतेदधोभाण्डे ग्राह्यं योगेषु योजयेत् ॥ ४४ ॥

किसी स्वच्छ वस्त्र को सेंहुड़ के दुग्ध से लिप्त कर सुखा लें। इस तरह सात वार सुखावें, पश्चात् सात वार ही उस वस्त्र को मदार के दुग्ध से लिप्त कर सुखालें। फिर शुद्ध गन्धक को मक्खन या घृत में पीस कर उसका वस्त्र पर गाढ़ा लेप कर वस्त्र की बत्ती बना लें। उस बत्ती को संड़सी से पकड़ कर जलावें, फिर उसका एक मुख नीचे रखे पात्र को ओर कर देना चाहिए। इस तरह तैल नीचे के पात्र में गिरेगा। उसेसब कामों में (रोगनाशार्थ) ग्रहण करें ॥ ४३–४४ ॥

शुद्धगन्धकगुणाः—

अग्निकारी महानुष्णो वीर्यवृद्धिं करोति च ॥ ४५ ॥

इति गन्धकाधिकारः—

शुद्ध गन्धक कुष्ट रोग तथा जरा और मरण (अकाल मृत्यु) को नष्ट करता है। यह पाचकाग्नि को दीप्त करता है। उष्ण वीर्य तथा वीर्य अर्थात् शरीर शक्ति को बढ़ाता है ॥ ४५ ॥

अथ गन्धकीयविमर्शः—

गन्धक (Sulphur) सल्फर।

इस मूलतत्त्व (Element) का ज्ञान सांसारिक प्राणियों को कब से है, इसके

एतिहासिक वृत्त का व्योरा अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। सम्भवतः इस तत्व का ज्ञान भ्रमणशील रसायन प्रेमियों ने ज्वालामुखी, उष्णस्रोत तथा गोदन्ती के क्षेत्र प्रभृति प्रदेशों में उग्र गन्ध और ज्वलनशक्ति देखकर अन्वेषण किया हो इसी लिये प्राचीन आर्य रसायन ग्रन्थों में "गन्धक" नाम से ही इसका अभिधान किया गया है। गन्धक की उत्पत्ति के प्रकरण में लिखा है किः—

निजगन्धेन तान्सर्वान् हर्षयन्दैत्यदानवान्।
ततो देवगणैरुक्तं गन्धकाख्यो भवत्वयम्॥

इसी प्रकार पाश्चात्य वैज्ञानिक साहित्य में ज्वलन शक्ति के कारण इसको सल्फर (Sul=sal=salt Fur=fire) अर्थात् ज्वलन-शील-लवण के अभिधान से सम्बोधित किया है।

उपलब्धि—

गन्धक प्रायः ज्वालामुखी प्रदेशों में स्वतन्त्र दशा में पाया जाता है। मिस्चरलिच (Mitscherlich) नामक विद्वान् ने सर्व प्रथम योरोप में गन्धक की अनेक प्रकार की परिवर्तित रासायनिक दशाओं का प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। गन्धक का प्रयोग भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से किया जा रहा है। रस ग्रन्थों के अवलोकन से विदित होता है कि आर्यरसायन-विज्ञों ने भी व्योरेवार इसके रासायनिक परिवतन और गुणों का अध्ययन किया तथा उसका औषधि में उपयोग कर जन समुदाय का बड़ा उपकार किया था। किन्तु इस व्योरे से यह प्रगट नहीं होता कि गन्धक का क्रमबद्ध अध्ययन करने वाला महापुरुष कौन था और किस समय में वह वर्तमान रहा। यह ऐतिहासिक वृत्त अन्वेषणीय है।

गन्धक उन थोड़े से मूलतत्वों में गिना जाता है जो प्रकृति में स्वतन्त्र रूप से पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं यह प्रशान्त वा प्रज्वलित ज्वालामुखी प्रदेशों में आधिक्य से प्राप्त होता है। योरोप में इटली (Italy), सिसली (Sicily), आइसलेन्ड (Iceland) आदि देशों में बहुतायत से मिलता है। असाधारणतया अन्य खनिजों के साथ में भी यह यौगिक रूप में पाया जाता है। कहीं २ हाइड्रोजन गेस के साथ सल्फ्युरेटेड हाईड्रोजन (Sulphurated Hydrogen) के रूप में उष्ण स्रोतों में पाया जाता है। ऐसे स्रोत बद्रीनाथजी की यात्रा के मार्ग में प्रायः देखे जाते हैं। अन्यत्र भी भारतवर्ष के विहार, बङ्गाल, आसाम, मद्रास आदि प्रान्तों में तीर्थों के स्थानों में प्रायः ऐसे उष्ण स्रोत मिला करते हैं। ऐसे स्रोतों में गन्धक की उग्र गन्ध होती है।

यौगिक-गन्धक सल्फाइड (Sulphide) के रूप में अनेक खनिजों के साथ में मिला रहता है उनमें से प्रधान निम्न लिखित समझे जाते हैं।

१ रौप्यमाक्षिक (Iron pyrites) लौहमाक्षिक।

२ सुवर्णमाक्षिक (Copper pyrites) ताम्रमाक्षिक।
३ कांस्यमाक्षिक (Arseno pyrites) तालमाक्षिक।
४ कान्तमाक्षिक (Pyrrhotite) चुम्बकीय लौहमाक्षिक।
५ विमल (Marcasite pyritous) लौहमाक्षिक (विशिष्टरूप युक्त)।
६ गन्धनाग (Galena) नीलाञ्जन।
७ गन्धयशद Zinc blende) यशद का खनिज।
८ गन्धबरनाग (Stibnite)।
९ गन्धरजत (Argentite) रजतखनिज।
१० हिङ्गुल (Cinnabar) पारद का खनिज।
११ गोदन्ती (Gypsum) गन्धक का खनिज।
१२ बेरिया सल्फेट (Heavy spar) बराइट।
१३ बोर्नाइट (Bornite) पाषाणस्वरूप ताम्रमाक्षिक।

उक्त खनिजों की मात्रा किसी किसी स्थान पर बहुत व्यापक और बड़ी तादाद में पाई जाती है। स्वतन्त्र तथा अन्य खनिजों के साथ मिला हुआ गन्धक प्रायः पृथ्वी के सर्वांश में पाया जाता है।

वनस्पतियों में भी नीचे लिखे गणों में प्रायः गन्धक मिला रहता है:—राईवर्ग, गाजरवर्ग, लहसुनवग, इनके रस और बीजों के तैल में सल्फेट (Sulphate) और सल्फाइड (Sulphide) के रूप में गन्धक पाया जाता है।

प्राणि वर्ग में भी यह रक्तादि धातुओं में अत्यल्प प्रमाण से मिला रहता है। पित्त में २५ फी सदी गन्धकांश गन्धक के तेजाब (Hydro chloric acid) के रूप में विद्यमान है।

प्रकृति में अनेक प्रकार की रासायनिक प्रतिक्रियाओं से गन्धक पैदा होता है। माक्षिक के आक्सिडेशन से भी गन्धक पृथक् होकर जहां माक्षिक के कण घुले रहते हैं, वहाँ पर के कोष्ठों में जमा पाया जाता है। जहां पर ज्वालामुखी की कन्दराओं से अनेक प्रकार की गन्धकीय गैसें ऊपर की ओर निकलती हैं वहां पर 'सल्फर डाई औक्साइड' और हाइडोजन सल्फाईड की प्रतिक्रिया से गन्धकाम्ल और गन्धक उत्पन्न होता है।

(H_2 S हाइड्रोजन सल्फाइड × $_2$ So $_2$ सल्फर डाइ आक्साइड H $_2$ So 4 गन्धकाम्ल और 2S गन्धक) कहीं २ सम्भवतः हाइड्रोजन सल्फाइड और आक्सिजन की अपूर्ण प्रति क्रिया से गन्धक बनता है। ($_2$ H $_2$ So हाइड्रोजन सल्फाइड+ O $_2$ आक्सिजन की प्रतिक्रिया से $_2$ H $_2$ o जल और $_2$ S गन्धक) अथवा सल्फर डाइ ओक्साइड और जल की प्रतिक्रिया से गन्ध काम्ल और गन्धक

पैदा होते हैं। ($3SO_2 + 2H_2O = 2H_2SO_4 + S$) इस प्रकार से उत्पन्न हुआ गन्धक का बड़ा जमाव 'अबासानो वेरी माइनहोकैडो जापान में गन्धक निकालने के लिये काम में लाया जा रहा है। यह जमाव पुराने सूखे ज्वालामुखी सम्बन्धी मृत्तिकामय तालावों के क्षेत्र के साथ पाया गया है। इस जमाव से बहुत बड़ी मात्रा में गन्धक निकाल कर युनाइटेड स्टेट को भेजा है। इस प्रकार के जमाव जो मेक्सिको (Mexico) आदि प्रदेशों में पाये जाते हैं उनका भी उपयोग करने का प्रबन्ध किया जा रहा है। सबसे अधिक गन्धक खुश्क या तर उष्ण स्रोतों के आस पास में पाया जाता है। ऐसे स्थानों में हाइड्रोजन सल्फाइड के अपूर्ण ओक्सिडेशन से अथवा गन्धकोत्पादक जीवाणुओं की प्रतिक्रिया से उत्पन्न होता है। इस रीति से उत्पन्न हुए गन्धक के जमाव अमेरिका के पश्चिमी राज्यों में प्रायः मिलते हैं। उदाहरण के लिये कुपराइट (Cuprite), इस्मेरेल्डा कन्टी (Esmeralda County), नवाडा (Navada), सल्फर बेंक केलिफोर्निया (Sulphur Bank California), रेबिट होल माइन्स हम्बाल्ट कौन्टी (Rabbit Hole Mines Humboldt county), उटाह (Utah), कौडी (Cody), थर्मोपोलिस (Thermopolis) और व्योमिङ्ग (Wyoming) जिलों के नाम लिखे जा सकते हैं। अन्त के तीन जिलों में गन्धक निकालने का व्यवसाय प्रारम्भ हैं। व्योमिंग जिले में जो गन्धक प्राप्त होता है वह अल्पांश में चूने के साथ पाया जाता है। यहां का जमाव गहरा नहीं है तथापि व्यापार चलाने लायक समझा जाता है।

संसार में जितना भी प्राकृतिक गन्धक प्राप्त होता है वह ज्वालामुखी या उष्ण स्रोतों के उद्गम से ही निकलता नहीं है किन्तु सब से अधिक निक्षिप्तस्तरों के जमाव (Sedimentary beds) में पाया जाता है, ऐसे जमावों का घनिष्ट सम्बन्ध गोदन्ती (Gypsum) व सुधापाषाण (Lime stone) के साथ रहता है। इनके अतिरिक्त कालसाइट (Calcite), अरेगोनाइट (Aragonite), ओपल और कभी कभी स्फटिक (Quartz) आदि के साथ गन्धक मिला प्राप्त होता है। गैसीय और घन हाइड्रोकार्बन (Gaseous and solid Hydro Carbons) के साथ भी गन्धक का सहयोग देखा गया है। संसार के बड़े २ गोदन्ती के क्षेत्रों के साथ विशेष रूप से गन्धक का सम्बन्ध सदा और सर्वत्र पाया जाता है, चाहे ऐसे सम्बन्ध व्यापारोपयोगी गन्धक निकालने का कार्य न दें तथापि गन्धक उत्पत्ति का यह नित्य सम्बन्ध सर्वत्र दिखाई देता रहेगा। इस विषय का विशेष ज्ञान प्राप्त करना हो तो लुसियाना (Louisiana) के बोरिंग (Boring) का विवरण जो उक्त स्टेट को सर्वे के बुलेटिन में प्रकाशित हुआ है, ध्यानपूर्वक अवलोकन करना चाहिए। इस विवरण के देखने से गोदन्ती और गन्धक का अविरत जन्यजनक सम्बन्ध भली प्रकार विदित हो

जाता है। गन्धक गोदन्ती और चूने के साथ शिरा, मृत्तिका, राल का शकल का तथा रवों आदि के रूप में जमा पाया जाता है।

गन्धक निम्न रूप में मिलता है।

(१) रवेदार गन्धक (Crystalline Forms)

(क) अष्टफलकीम रवेदार गन्धक (Octahedral sulphur)

(ख) त्रिपार्श्वीय रवेदार गन्धक (Prismatic sulphur)

(२) बिना रवेदार गन्धक (Amorphous forms)

(अ) नम्य गन्धक (Plastic sulphur)

(ब) श्वेत रवे रहित (White Amorphous)

(म) पीत रवे रहित (Yellow amorphous)

(३) द्रवितगन्धक (Colloidal sulphur)

गन्धक और गन्धकाय खनिज प्राप्ति के स्थान

अफ़गानिस्तान—

के हजार जाठ (Hazara Jat) नामक स्थान में प्राकृतिक गन्धक बहुतायत से प्राप्त होता है।

पीत गन्धक के डले और शिरायें गोदन्ती के खण्डों के साख "दस्त-इ-सफेद" (Dast i-safed) नामक स्थान के आस पास में मिलता है।

आसाम—

के लखिमपुर जिले के "माकुम" (Makum) ग्राम में माक्षिक के खण्ड (Shales) भुगर्भज कोयले के साथ ऊपर आसाम में प्राप्त होते हैं। किन्तु इनकी मात्रा इतनी नहीं है कि जिससे गन्धक निकालकर व्यापारिक लाभ उठाया जा सके।

बलुचिस्तान (Baluchistan)

के कोह-इ-सुलतान (Koh-i-sultan) नामक स्थान में प्रशान्त ज्वालामुखी के आस पास के परिवर्त्तित स्थानों में पीत गन्धक और गौदन्ती पाये जाते हैं। यहां के निवासी खनिज गन्धक को नांदो में भर कर गरम करते हैं। जब गन्धक विघल जाता है तब उसे तसलों की शकल के ढांचों में ढाल कर अन्य पार्थिव अशुद्धियों से शुद्ध कर लिया करते हैं। "बोलन पास के "ड्राज वेन्ट" (Draj Bent) और गोकुर्थ (Gokurth) नामक स्थानों में भी मृत्तिकाकृति चूने के साथ गन्धक पाया जाता है। किन्तु यहां से उसकी निकासी कठिन है।

कच्छी (Kachhi)

जिले के सन्नी (Sanni) नामक स्थान में गन्धक की बड़ी खान रही है। सन् १८४६ ई० हुटन (Huttan) नामक अंग्रेज ने इस स्थान को जाकर देखा था।

उसका कथन है कि इस स्थान में गंधक अष्ट पार्श्वीय रवों और चूर्ण के रूप में बहुतायत से प्राप्त हो सकता है। अब भी यहां के निवासी खनिज गंधक को निकाल कर 'सन्नी' के पूर्व की तरफ स्थित बाग (Bagh) नामक स्थान पर ले जाकर उसे तैल के साथ पिघाल कर शुद्ध किया करते हैं। बाग नामक स्थान सन्नी से ४० मील दूर है। यहां पर की खान की खुदाई का काम अफगानीस्तान के अमीर के तरफ से होता रहा है पर अब वृटिश सरकार के आधिपत्य में आ जाने पर गंधक की निकासी का काम बन्द कर दिया गया है। किसी कारण वश इस खान में आग लग जाने से खान का कुछ अंश जल भी गया है। सन् १९०६ ई० में इस खान को टिप्पर (Tipper) नामक अंग्रेज देखने गया था। उसका लिखना है कि इस स्थान में गन्धक शिवालिक मृत्तिका के साथ शिराओं के रूप में प्राप्त होता है। कुछ स्थान पर गन्धक इस प्रकार जमा हुआ है कि वह आसानी से जल सकता है। होलेन्ड (Holland) नामक विद्वान की राय है कि यहां गन्धकीय जमाव व्यापारिक लाभ उठाने के योग्य है।

लास वेला (Las bela)

जिले में 'कान वेरार' (Kan Berar) नामक स्थान के आस पास खारे स्रोतों के समीप गन्धक का जमाव देखा गया है। यहां पर के स्रोतों के समीप रेणु शिला की शिराओं में लवण और गन्धक की शिरायें देखी जाती हैं। किन्तु परीक्षा करने से विदित हुआ कि यहां का जमाव व्यापारोपयोगी नहीं है।

मेकरन तट (Mekran coast)

के जिले में करघारी (Karghari) के पास गोलकुर्ट (Golkurt) स्थान में बहुत गन्धक एकत्रित किया जा सकता है।

सिबि (Sibi)।

जिले में "खाटान" (Khattan) नामक स्थान के मिट्टी के तैल के कूप के पास वाले उष्ण स्रोतों के स्राव से रवेदार गन्धक का बहुत सा जमाव पाया जाता है।

वेरन आइलेन्ड (Barten Island)

में भी गन्धक का जमाव पाया जाता है। किन्तु उसकी मोटाई २ या ३ इञ्च से अधिक नहीं है और कई दर्जन टन से अधिक गन्धक निकालने का अनुमान भी नहीं किया जाता है।

विहार और उड़िसा—

मयूरभञ्ज रियासत के धल भूमि सीमा प्रान्त के मालाघाटी के पास में विशेष रूप से रौप्यमाक्षिक (Iron pyrites) अनेक स्थानों में पाया जाता है। आज कल गन्धक निकालने का यह प्रधान खनिज समझा जाता है।

सिन्ध भूम जिले में सुवर्ण माक्षिक (Copper pyrites) से ताम्र के साथ

गन्धक बहुतायत के साथ प्राप्त किया जा सकता है। यहां के ताम्र के खनिजों का व्यापार उसी दशा में लाभ कारक हो सकता है जब बड़े पैमानों पर काम किया जाय।

बम्बई—

सिन्ध के गिजरी बन्दर (Ghizri bunder) पर गन्धक के जमाव का पता लगाया गया है। यहां के खनिजों से ६० फी सदी गन्धक प्राप्त किया जा सकता है। किसी समय "लाकि" (Laki) नामक स्थान के स्रोतों के स्राव से जो गन्धक के जमाव "जामा" (Scum) के रूप में बनते थे, उनसे वहां के ग्राम्यजन गन्धक निकालने का अध्यवसाय करते थे। किन्तु व्यापारिक लाभ के लिये यहां की गन्धक पर्याप्त नहीं समझी जाती।

बर्मा (Burma)

सन् १८७३ में स्ट्रोवर (Strover) नामक विद्वान ने लिखा है कि बर्मी राजाओं के राज्य काल में अपर बर्मा में अनेक स्थानों से २८००० विस (एक बर्मी तौल) गन्धक रौप्यमाक्षिक से उड़ा कर प्रति वर्ष निकाला जाता रहा है। बर्मा में गन्धक व्यवसाय का मुख्य केन्द्र जोन्स (Jones) के लेखानुसार "मासुन" (Mowsun) नामक प्रान्त के समीप में रहा है।

दक्षिणी शान राज्यों (Southern Shan states) में भी गन्धक निकालने का व्यवसाय अब तक होता रहा है। शान राज्यों की अनेक प्रकार की स्फटिक शिलाओं में रौप्यमाक्षिक पाया गया है। इस रौप्यमाक्षिक से गन्धक निकालने का कारोबार चल सकता है। यहां के रौप्यमाक्षिक में सुवर्ण, रजत आदि बहुमूल्य खनिज प्राप्त नहीं होते। ये स्थान इतने निकट हैं कि यहां पर रौप्यमाक्षिक से गन्धकाम्ल बनाने का व्यवसाय लाभ पूर्वक नहीं चलाया जा सकता।

दक्षिण हैदराबाद—

के गुलबर्ग (Gulbarg) जिले में मुदानूर (Mudanur) नामक स्थान पर आधिक्य से रौप्यमाक्षिक प्राप्त होता है, जिससे गन्धक निकालने का व्यवसाय किसी जमाने में होता रहा है।

काश्मीर—

के बाल्टिस्तान (Baltistan) जिले में अनेक उष्ण-स्रोतों से गन्धक का जमाव होता है। रूपशु (Rupshu) जिले की पुगा घाटी (Puga valley) के उष्ण-स्रोत-सम्बन्धी गन्धकीय जमाव से काश्मीर दरबार को तरफ से गन्धक निकालने का कारोबार हुआ करता था, यहां शीत अधिक होने के कारण केवल वर्ष में चार मास तक ही कारखाना चलता था, जिससे गन्धक की वार्षिक निकासी २०-२५ टन हो जाया करती थी।

मद्रास—

के आरकोट (Arcot) जिले में आधा मील तक गन्धक का जमाव 'वोलण्डर-पेट (Wolunderpet) से कुछेक मील की दूरी पर पोडिया बोलियं (Wodia Paliam) नामक जिले में स्थित है।

गोदावरी—

के किनारे २ दलदलों के क्षेत्रों में पानी सूख जाने पर ढेलों के रूप में जमा हुआ गन्धक पाया जाता है। यहां के गन्धक के खनिजों में २८% फी सदी स्वतन्त्र गन्धक और ९८ फी सदी निश्चित रूप में गन्धक पाया जाता है।

ट्रावनकोर—

राज्य में मङ्गामलाई (Mangamalai) नामक पहाड़ी पर कान्तमाक्षिक (Pyrrhotite) मिलता है इससे गन्धक निकाला जा सकता है। इसी स्थान के पश्चिमी भाग की ओर कुछ दूरी पर एक दूसरा जमाव भी कान्तमाक्षिक का है।

उत्तरी पश्चिमीय सीमाप्रान्त (North West Frontier Province)

के कोहाट जिले में इन्डस (Indus) नदी के पश्चिमी किनारे पर माक्षिकीय (Pyritous) मिश्रित स्फटिक (Alum) के खपड़े सुधा पाषाण के नीचे जमे पाये जाते हैं। इन खपड़ों से गन्धक निकालने का व्यवसाय किया जाता रहा है। गन्धक निकालने के लिये डमरू यन्त्र का उपयोग किया जाता था। इस यन्त्र द्वारा गन्धक उड़ाकर गन्धक के फूल तय्यार किये जाते रहे हैं।

शिरानी (Shirani)

नामक जिले में डोमुन्डा (Domunda) के पास में रौप्यमाक्षिक के परिवर्तन से गन्धक जमा होता हुआ देखा गया है।

पञ्जाब—

में डेरागाजी खान के सोरीपास नामक स्थान पर गन्धक निकालने का कारोबार चलता था। यहां पर गन्धक गोदन्ती के साथ उष्ण स्रोतों में जमा हुआ दिखाई देता है। गोदन्ती के अन्दर पीत गन्धक के रेशे या शिरायें मिली पाई जाती हैं। कोहाटा की भांति डमरू यन्त्र से उड़ाकर शुद्ध गन्धक एकत्रित करने का व्यवहार यहां भी चालू था। गन्धारी पहाड़ के दक्षिणी किनारे पर सफेद क्षेत्रों में भी गन्धक पाया जाता है।

झङ्ग (Jhang) राज्य में किराना पहाड़ो के पाषाणों में कान्त माक्षिक (Pyrrhotite) के ढेले पाये गये हैं। हुन्डी वाला नामक स्थान की खान में भी रेलवे स्टेशन के पास विमल के नमूने प्राप्त हुये हैं।

मियां वाला (Mian wala) जिले में पेट्रोलियं प्राप्ति की जमीन में गन्धक

पाया जाता है । बोरिङ्ग (Bowring) नामक स्थान के पास पेट्रोलियं के स्रोत के समीप समीप मीलों तक पहाड़ी भूमि पर गोदन्तीके साथ गन्धक पाया जाता है। किन्तु यहां पर व्यापारोपयोगी गन्धक की मात्रा मिलने में सन्देह है ।

रावल पिंडी के जिले में मशालापास के पूर्वी ओर की पहाड़ी पर गन्धक की खान में काम होता रहा है ।

संयुक्त प्रान्त—

के देहरादून, जोन्सार जिलें में मेवार (Maiwar) नामक स्थान की सीसक (Lead) की खान की परिधि में गन्धक पाया जाता है और उसका इतना निकास होता है कि जिससे सीसक निकालने का सारा व्यय प्राप्त हो जाया करता है ।

कुमायूँ—

जिले के उष्ण स्रोतों से अल्प मात्रा में गन्धक जमा पाया जाता है । कुमायूँ प्रान्त के नीचे लिखे स्थानों का गन्धक प्राप्ति के विषय में विशेषतः उल्लेख है—

(१) राम गङ्गा और गर्जिया नदी के तटवर्ती उष्णस्रोत ।

(२) नन्द प्रयाग के पास मन्सियारी मुल्ला, दसोली और मुल्लानागपुरा ।

उक्त स्थानों के अतिरिक्त अनेक उष्ण स्रोतों के आसपास में न्यूनाधिक मात्रा में गन्धक पाया जाता है उसको शैलोदक (Mineral waters) कहते हैं ।

आज कल माक्षिक का (गन्धक युक्त होने के कारण) गन्धकाम्ल बनाने के लिये अधिकतया व्यवहार किया जाता है। इसलिये गन्धक प्रसङ्ग में गन्धकाम्ल (Sulphuric acid) का संक्षिप्त व्योरा जानना आवश्यक है। संसार व्यापी योरोपियन युद्ध के कुछ ही पूर्व युनाइटेड स्टेटस में लगभग ३६००,००० छोटे टन (Short tons) गन्धकाम्ल बनता था । युद्ध की दशा में विस्फोटक (Explosive) पदार्थों के निर्माण के लिये इसकी मांग अधिक हो गई । सन् १९१६ में ६२६०००० टन गन्धकाम्ल बनाया गया और १९१८ में ८०००००० टन तय्यार किया गया । सन् १९१६ ई० में ४० फी सदी गन्धकाम्ल स्पेनिश माक्षिक ले कर बनाया गया था । शेष ६ फी सदी केनाडियन माक्षिक, १३ फी सदी अमेरिकन माक्षिक, २२ फी सदी ताम्र और यशद के खनिज गलाने से उत्पन्न गन्धकीय वाष्प और शेष १९ फी सदी प्राकृतिक गन्धक लेकर बनाया जाता है। युद्ध के पूर्व प्राकृतिक गन्धक का उपयोग इस कार्य के लिये नहीं किया जाता रहा है । इस लेख से यह स्पष्ट है कि माक्षिक अन्य गन्धक के खनिजों के साथ या स्वतन्त्र ही गन्धकाम्ल बनाने के लिये प्रधानता से उपयोग किया जा रहा है । इस काम के लिये अनेक देश, विशेष कर स्पेन, नारवे (Norway) पोर्च्युगाल (Portugal), फ्रान्स, युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका, जर्मनी २,००००० टन से अधिक माक्षिक की प्रतिवर्ष निकासी करते हैं ।

युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका में गन्धक प्राप्ति के मुख्य खनिज माक्षिक और विमल (Pyrite marcasite pyrrhotite) ५३.३% व ३८.४% फी सदी वाले क्रमशः समझे जाते हैं।

इसी प्रकार पाश्चात्य वैज्ञानिक साहित्य में ज्वलन शक्ति के कारण इसको सल्फर (Sulphur) अर्थात् ज्वलन-शील-लवण के अभिधान से सम्बोधित किया है।

अथ गैरिकम्—

गैरिकभेदाः—

पाषाणगैरिकं चैकं द्वितीयं स्वर्णगैरिकम् ॥ ४६ ॥

गैरिक दो प्रकार का होता है एक को पाषाण गैरिक तथा दूसरे को स्वर्ण गैरिक कहते हैं ॥ ४६ ॥

विमर्शः—गैरिक को साधारणतया हीमोटाइट (Heamotite) कहते हैं। इसके दो भेद हैं प्रथम पाषाणगैरिक तथा द्वितीय स्वर्णगैरिक (Kidney Iron ore) है। यह द्वितीय प्रकार का खनिज भारत वर्ष में अल्पमात्रा में मिलता है किन्तु अमेरीका और जर्मन में अधिक मात्रा में मिलता है इसको गैरिक का मणि समझना चाहिए। जहां तक हो सके औषध कर्म में स्वर्ण गैरिक का ही प्रयोग करना चाहिए। गैरिक लौहका प्रधान खनिज है। यह रेड आयर्न आक्साइड (Red Iron oxide) है। ताता (टाटा) के कारखाने में इससे लोह (Iron) निकाला जाता है।

पाषाणस्वर्णगैरिकयोर्लक्षणम्—

पाषाणगैरिकं प्रोक्तं कठिनं ताम्रवर्णकम्।
अत्यन्तशोणितं स्निग्धं मसृणं स्वर्णगैरिकम् ॥ ४७ ॥
स्वादु स्निग्धं हिमं नेत्र्यं कषायं रक्तपित्तनुत्।
हिक्कावमिविषघ्नं च रक्तघ्न स्वर्णगैरिकम्।
पाषाणगैरिकं चान्यत्पूर्वस्मादल्पकं गुणे ॥ ४८ ॥

पाषाण गैरिक स्पर्श में कठिन तथा ताम्रवर्ण का होता है, स्वर्ण गैरिक अत्यन्त रक्तवर्ण तथा स्निग्ध और कोमल होता है। यह स्वर्ण गैरिक स्वादु, स्निग्ध, शीतल, नेत्रहितकर, कसैला और रक्तपित्त को नष्ट करता है और हिचकी, वमन, विष इन का नाशक है, रक्तस्राव को नष्ट करता है। पाषाणगैरिक स्वर्णगैरिक से कुछ कम गुणवाला होता है ॥ ४७–४८ ॥

अथ गैरिकशोधनम्—

गैरिकं तु गवां दुग्धैर्भावितं शुद्धिमृच्छति ॥ ४६ ॥
गैरिकं सत्त्वरूपं हि नन्दिना परिकीर्तितम् ॥ ५० ॥
कैश्चिदुक्तं पतेत्सत्त्वं क्षाराम्लस्विन्नगैरिकात् ।
उपतिष्ठति सूतेन्द्रमेकत्वं गुणवत्तरम् ॥ ५१ ॥

गैरिक गोदुग्ध से भावना देने पर शुद्ध हो जाता है । नन्दी नामक सिद्ध ने गैरिक को सत्त्व स्वरूप ही बताया है । कुछ लोगों का मत है कि क्षार और अम्ल में स्वेदन करने से गैरिक से सत्त्व निकलता है। गैरिक सत्त्व पारद में मिल जाता है और अधिक गुणकर होता है ॥ ४९-५१ ॥

अथ कासीसरसायनम्—

तत्रादौ कासीसभेदाः—

कासीसं वालुकाद्येकं पुष्पपूर्वमथापरम् ॥ ५२ ॥

कासीस दो तरह का होता है । एक को बालु काकासीस तथा द्वितीय को पुष्प कासीस कहते हैं । बालु कासीस को धातु कासीस भी कहते हैं ॥ ५२ ॥

विमर्शः—कासीस को साधारणतया आजकल फेराइ सल्फ (Ferri Sulph) अथवा फेरस सल्फेट (Ferrous Sulphate) कहते हैं। यह लौह और गन्धक का यौगिक है । यह आजकल प्रायः कृत्रिम ही मिलता है तथा लौह पर गन्धक के तेजाब ग़न्धकाम्ल (Sulphuric Acid) के प्रयोग से तैय्यार किया जाता है। प्रायः प्राकृतिक या कृत्रिम कासीस हरे क्रिस्टलीय रूप में पाया जाता है । यह अङ्कुर होता है तथा जल में विलेय (Soluble) है तथा उस में घुल कर विलयन (Solution) बनता है । इसको अग्नि पर गरम करने से इसमें से जल निकलता है इस जल को क्रिस्टलीकरण का जल (Water of Crystallisation) कहते हैं । इसी जल के कारण यह क्रिस्टल के रूप में प्राप्त होता है । इस प्रकार तपाने से जल निकल जाने पर जो चूर्ण अवशेष रह जाता है वह सफेद रङ्गका हो जाता है । अतः जल ही के कारण यह क्रिस्टल के रूप में प्राप्त होता है। इसको ज्यादा गरम करने से इससे प्रथम जल निकलता है फिर सफेद रङ्ग का धुआं निकलता है जिसे यदि द्रवीभूत करके परीक्षा करें तो मालूम होता है कि वह तेल (oil) सा गाढा पदार्थ है । इसकी कुछ बूंदे जल में डालकर स्वाद लेने से खट्टा मालूम होता है तथा इस कासीस के द्रवीभूत धूम्र को लकड़ी या कपड़ों पर डालें तो वे झुलस जावेंगे । परीक्षा करने से यह गन्धकाम्ल(Sulphuric

Acid) सिद्ध हुआ है। इस निर्णय के पहिले इसको कसीस का तैल कहते थे। इसके निकल जाने से जो पदार्थ शेष रहता है वह कासीस के गुणधर्मों से भिन्न होता है। इस द्रव्यका रङ्ग कपिल होता है तथा जल में डालने से यह बिलकुल अविलय (In Soluble) है तथा देखने में भी मोरचे के समान प्रतीत होता है। जो क्रिस्टल स्वरूप कासीस है उसे पुष्पकासीस समझना चाहिए और उसका सूत्र यह (Fe Soy TH 20) है। जो आक्साईड के रूप में हो जाता है उसको वालु कासीस समझना चाहिए, तथा उसका सूत्र (Fe Soy) है। प्रायः औषध कर्म में पुष्प कासीस को ही अधिक गुणकर होने से ग्रहण करना चाहिए।

बालुकासीसगुणाः—

क्षाराम्लागुरुधूमाभं सोष्णवीर्यं विषापहम्।
वालुकापूर्वकासीसं श्वित्रघ्नं केशरञ्जनम् ॥ ५३ ॥

बालुकाकासीस क्षार, अम्ल और गुरु होता है तथा वर्ण में धूएं के सदृश होता है और वीर्य में उष्ण और विष विकारों को विनष्ट कर देता है तथा सफेद कुष्ठ को नष्ट करता है और केशों को काले रंग का कर देता है ॥ ५३ ॥

पुष्पकासीसगुणाः—

पुष्पादिकासीसमतिप्रशस्तं सोष्णं कषायाम्लमतीव नेत्र्यम्।
विषानिलश्लेष्मगदव्रणघ्नं श्वित्रक्षयघ्नं कचरञ्जनञ्च ॥५४॥

पुष्प कासीस औषध कर्म में श्रेष्ठ है। यह उष्णवीर्य्य, कषाय और अम्ल होता है। नेत्रों के लिये अत्यन्त हितकर है और विषबाधा, वात और कफ से जन्यरोग, व्रण तथा श्वेतकुष्ठ को नष्ट करता है, शिर के बालों को काला करता है ॥ ५४ ॥

कासीसशोधनम्—

सकृद्भृङ्गाम्बुना क्लिन्नं कासीसं निर्मलं भवेत् ॥ ५५ ॥

कासीस का चूर्ण कर भृङ्गराज के स्वरस या क्वाथ में एक बार भिगो देने से शुद्ध हो जाता है ॥ ५५ ॥

सत्त्वग्रहणनिर्देशः—

तुवरीसत्त्ववत्सत्त्वमेतस्यापि समाहरेत् ॥ ५६ ॥

वक्ष्यमाण तुवरी (फिटकरी) के सत्त्व के निष्कासन की विधि के समान इसका भी सत्त्व निकाल कर ग्रहण करना चाहिए ॥ ५६ ॥

अथ शोधनान्तरम्—

कासीसं शुद्धिमाप्नोति पित्तैश्च रजसा स्त्रियाः ॥ ५७ ॥

कासीस को पञ्चपित्त (वराह, छाग, महिष, मत्स्य, मयूरपित्त,) और स्त्री के मासिक धर्म कालीन शोणित से भिगो देने पर शुद्धि होती है ॥ ५७ ॥

कासीसप्रयोगः—

बलिना हतकासीसं कान्तं कासीसमारितम् ।
उभयं समभागं हि त्रिफलावेल्लसंयुतम् ॥ ५८ ॥
विषमांशघृतक्षौद्रप्लुतं शाणमितं प्रगे ।
सेवितं हन्ति वेगेन श्वित्रं पाण्डुक्षयामयम् ॥ ५९ ॥
गुल्मप्लीहगदं शूलं मूलरोगं विशेषतः ।
रसायनविधानेन सेवितं वत्सरावधि ॥ ६० ॥
आमसंशोषणं श्रेष्ठं मन्दाग्निपरिदीपनम् ।
पलितं बलिभिः सार्धं विनाशयति निश्चितम् ॥ ६१ ॥

इति कासीसाधिकारः ।

गन्धक से मारण की हुई कासीस भस्म और कासीस से मारण की हुई लौह भस्म या वैक्रान्तभस्म इन दोनों को समान भाग लेकर खरल में घोट लें इसमें से एक शाण (चोअन्नी) भर लेकर त्रिफला चूर्ण और वायविडङ्गचूर्ण विषम मात्रा से घृत तथा मधु मिलाकर प्रातःकाल नित्य सेवन करने से श्वेत कुष्ठ, पाण्डु, क्षयरोग, पञ्चप्रकार के गुल्म, प्लीहवृद्धि, शूल, अर्श नष्ट होते हैं। इस योग को रसायन-विधि से एकवर्ष पर्यन्त सेवन करने से आंवरोग सूख जाता है, मन्दाग्नि दीप्त हो जाती है, बालों का श्वेत होना तथा गिरना दोनों रोग निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ५८–६१ ॥

अथ तुवरीनिरूपणम्—

तुवरीपरिचयः—

सौराष्ट्राश्मनि सम्भूता मृत्स्ना सा तुवरी मता ।
वस्त्रेषु लिप्यते यासौ मञ्जिष्ठारागबन्धिनी ॥ ६२ ॥

सोराष्ट्रदेश के पत्थरों की खान से पैदा होने वाली मृत्तिका को तुवरी

(फिटकरी) कहते हैं। यह वस्त्रों को रंग देती है तथा मंजीठ के रंग को पक्का बनाती है ॥ ६२ ॥

विमर्शः—तुवरी वह मृत्तिका है कि जिस का शुद्ध करके फिटकरी बनाते हैं। बङ्गाल केमिकल और फार्मास्यूटिकल कम्पनी कलकत्ता आदि स्थान इसका अधिक निर्माण करते हैं।

तुवरीभेदाः—

फटकी फुल्लिका चेति द्वितीया परिकीर्तिता ॥ ६३ ॥

इसी का द्वितीय भेद फुल्लिका या फूलफिटकरी कहलाता ॥ ६३ ॥

तुवरीलक्षणगुणाः—

ईषत्पीता गुरुः स्निग्धा पीतिकाविषनाशिनी ।
व्रणकुष्ठहरा सर्वकुष्ठघ्नी च विशेषतः ॥ ६४ ॥
निर्भारा शुभ्रवर्णा च स्निग्धा साम्लाऽपरा मता ।
सा फुल्ला तुवरी प्रोक्ता लेपात्ताम्रं चरेद्यः ॥ ६५ ॥
काङ्क्षी कषाया कटुकाम्लकण्ठ्या केश्या व्रणघ्नी विषनाशिनी च ।
श्वित्रापहा नेत्रहिता त्रिदोषशान्तिप्रदा पारदजारणी च ॥ ६६ ॥

फिटकरी कुछ पीत, स्निग्ध और भारी होती है तथा विष, व्रण, कुष्ट को नष्ट करती है। जो फिटकरी श्वेत होती है वह भार में हलकी, स्निग्ध और खट्टी होती है, इसे फूल फिटकरी कहते हैं। ताम्र पर इसका लेप करने से शीघ्र भस्म हो जाती है। फिटकरी कषाय, कटु तथा अम्ल स्वादवाली होती है। यह कण्ठ और केशों को लाभ पहूंचाती है। व्रणविष, श्वेतकुष्ठ को नष्ट करती है तथा त्रिदोष को साम्यावस्था में रखती है। इससे पारद का जारण हो जाता है ॥ ६४-६६ ॥

अथ तुवरीशोधनम्—

तुवरी काञ्जिके क्षिप्ता त्रिदिनाच्छुद्धिमृच्छति ॥ ६७ ॥

फिटकरी को तीन दिन तक काञ्जी में डालकर रखने से शुद्ध हो जाती है॥६७॥

तुवरीसत्त्वपातनविधिः—

क्षाराम्लैर्मर्दिता ध्माता सत्त्वं मुञ्चति निश्चितम् ॥ ६८ ॥
गोपित्तेन शतं वारान् सौराष्ट्रीं भावयेत्ततः ।
धमित्वा पातयेत्सत्त्वं क्रामणं चातिगुह्यकम् ॥ ६९ ॥

इति तुवर्याधिकारः ।

इसको क्षार और अम्ल पदार्थों के साथ घोटकर फूंकने से औषधोपयोगी सत्त्व निकलता है। अथवा गोपित्त (गोरोचन) से सौ भावना देकर फूंक कर सत्त्वपातन करना चाहिए। यह सत्त्व रस तथा उपरसों के बन्धन करने में श्रेष्ठ है तथा गोपनीय है ॥ ६८-६९ ॥

अथ तालकसन्निरूपणम्—

तालकभेदाः—

हरतालं द्विधा प्रोक्तं पत्राद्यं पिण्डसंज्ञकम् ॥ ७० ॥

हरताल दो तरह की होती है, एक पत्र हरताल और दूसरी पिण्डहरताल कहलाती है ॥ ७० ॥

पत्रतालकलक्षणम्—

स्वर्णवर्णं गुरु स्निग्धं तनुपत्रञ्च भासुरम्।
तत्पत्रतालकं प्रोक्तं वहुपुत्रं रसायनम् ॥ ७१ ॥

जो हरताल सुवर्ण के समान पीतवर्ण, भारी, स्निग्ध और छोटे २ पत्रों की रचना वाली तथा चमकती हुई होती है उसे पत्रहरताल कहते हैं। यह पुत्र देने वाली और रसायन गुणदायक होती है ॥ ७१ ॥

पिण्डतालकलक्षणम्—

निष्पत्रं पिण्डसदृशं स्वल्पसत्त्वं तथा गुरु।
स्त्रीपुष्पहरणं तत्तु गुणाल्पं पिण्डतालकम् ॥ ७२ ॥

जो हरताल पत्ररचनारहित, पिण्डसदृश, अल्पसार और भारी होती है उसे पिण्डहरताल कहते हैं। यह स्त्रियों के मासिक धर्म को नष्ट करती है तथा पत्रहरताल से अल्प गुणों वाली होती हैं ॥ ७२ ॥

विमर्शः—हरताल गन्धक और सङ्खिया का यौगिक है। मनःशिला भी गन्धक और सङ्खिया का यौगिक है किन्तु इनके अणुओं के सङ्गठन के कारण गुणों में भेद हो जाता है और इसी लिये ये दोनों पदार्थ पृथक् २ लिखे गये हैं। आजकल प्रायः ये दोनों पदार्थ कृत्रिम ही बजार में मिलते हैं किन्तु भारतवर्ष के अल्मोड़ा के पहाड़ों की खानों में तथा अन्य देशों में प्राकृतिक भी मिलते हैं। हरताल को आर्पिमेण्ट (Arpiment) कहते हैं। इसके शास्त्रों में जो भेद हैं उनका वर्णन मूल में देखिये।

अथ गुणाः—

श्लेष्मरक्तविषवातभूतनुत्केवलञ्च खलु पुष्पहृत्स्त्रियाः।

स्निग्धमुष्णकटुकञ्च दीपनं कुष्ठहारि हरितालमुच्यते ॥ ७३ ॥

हरताल दूषित कफ, रक्तविकार, विष, भूतबाधा (कृमियों का आक्रमण) और वायु के विकारों को दूर करती है। स्त्रियों के मासिकधर्म को नष्ट करती है और स्निग्ध, उष्ण, कड़वी तथा अग्निदीपक और कुष्ठ को नष्ट करती है ॥ ७३ ॥

अथ हरतालशुद्धिः—

स्विन्नं कूष्माण्डतोये वा तिलक्षारजलेऽपि वा ।
तोये वा चूर्णसंयुक्ते दोलायन्त्रेण शुद्ध्यति ॥ ७४ ॥

हरताल को दोलायन्त्रद्वारा कुष्माण्डस्वरस, तिलक्षारोदक या चूने के जल में स्वेदन करने से शुद्ध हो जाती है ॥ ७४ ॥

अशुद्धतालसेवनदोषाः—

अशुद्धं तालमायुघ्नं कफमारुतमेहकृत् ।
तापस्फोटाङ्गसङ्कोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ ७५ ॥

अशुद्ध हरताल आयु को नष्ट करती है, कफ तथा वायु के रोग और प्रमेह उत्पन्न करती है। शरीर में जलन, सङ्कोच और फोड़ा फुन्सी उत्पन्न करती है, इस कारण इसका शोधन करना चाहिये ॥ ७५ ॥

मतान्तरेण तालशोधनम् ।

तालकं कणशः कृत्वा दशांशेन च टङ्कणम् ।
जम्बीरोत्थद्रवैः क्षाल्यं काञ्जिकैः क्षालयेत्ततः ॥ ७६ ॥
वस्त्रे चतुर्गुणे बद्ध्वा दोलायन्त्रे दिनं पचेत् ।
सचूर्णनारनालेन दिनं कुष्माण्डजे रसे ।
स्वेद्यं वा शाल्मलीतोयैस्तालकं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ ७७ ॥

हरताल के टुकड़े २ कर के उसमें दशमांश सुहागा मिलाकर निम्बूरस से सात वार और काञ्जी से भी सातवार घोट के धोकर चारपर्त किए वस्त्र में बांध कर दोलायन्त्र द्वारा एक दिन तक चूनामिली हुई काञ्जी में स्वेदन करें अथवा कुष्माण्ड जल में या शाल्मली रस में स्वेदन करें इस तरह ताल शुद्ध हो जाती है ॥ ७६–७७ ॥

अथ मतान्तरेण शोधनमारणनिरुपणम्—

मधुतुल्ये घनीभूते कषाये ब्रह्ममूलजे ।
त्रिवारं तालकं भाव्यं पिष्ट्वा मूत्रेऽथ माहिषे ॥ ७८ ॥

उपलैर्दशभिर्देयं पुटं रुद्ध्वाथ पेषयेत्।
एवं द्वादशधा पाच्यं शुद्धं योगेषु योजयेत् ॥ ७९ ॥

ढाक (पलाश) की जड़ का शहद् के समान गाढा क्वाथ बनाकर इससे तीन वार शुद्ध हरताल को भावित कर पश्चात् भैंस के मूत्र में घोटकर गोला बनाकर सम्पुट में रख कर कपड़ मिट्टी द्वारा बन्दकर दस जङ्गली उपलों से पुट देना चाहिए। इस तरह द्वादश पुट देने से हरताल शुद्ध तथा मृत हो जाती है। इसको योग बनाने में लेना चाहिये ॥ ७८–७९ ॥

सत्त्वपातनम्—

कुलित्थक्वाथसौभाग्यमहिष्याज्यमधुप्लुतम्।
स्थाल्यां क्षिप्त्वा विदध्याच्च मल्लेन च्छिद्रयोगिना ॥ ८० ॥
सम्यङ् निरुध्य शिखिनं ज्वालयेत्क्रमवर्धितम्।
एकप्रहरमात्रं हि रन्ध्रमाच्छाद्य गोमयैः ॥ ८१ ॥
यामान्ते छिद्रमुद्घाटय दृष्टे धूमे च पाण्डुरे।
शीतां स्थालीं समुत्तार्य सत्त्वमुत्कृष्य चाहरेत् ॥ ८२ ॥
सर्वपाषाणसत्त्वानां प्रकाराः सन्ति कोटिशः।
ग्रन्थविस्तरभीत्याऽत्र लिखिता न मया खलु ॥ ८३ ॥

शुद्ध हरताल तथा सुहागा समान भाग लेकर कुलत्थ क्वाथ, भैंस का घी और शहद के साथ घोटकर गोला बना लें, उस गोले को एक हण्डिका में रख कर मध्यछिद्र युक्त सकोरे से हण्डिका ढक दें। पश्चात् अच्छी प्रकार सन्धि बन्धन कर अग्नि जलानी चाहिए। एक प्रहर तक अग्नि मन्द मध्य तथा तीव्र देनी चाहिये तथा शराव के मध्य छिद्र को आर्द्र गोर्वर से ढक देनी चाहिए। एक प्रहर के अन्त में गोर्वर को हटाकर छिद्र से देखना चाहिए, यदि देखने से श्वेत (पाण्डुर) धूम दिखाई दें तव अग्नि बन्दकर स्वाङ्ग शीत होने पर स्थाली उतारना चाहिए (एक प्रहर अग्नि देना साधारण कहा है) फिर सन्धि तोड़कर हण्डिका में लगे हुए सत्त्व को ग्रहण करें। इसी तरह अन्य खनिज पाषाणपदार्थों के सत्त्व निकालने के अनेक प्रकार हैं उन्हें यहां ग्रन्थ विस्तार के भय से नहीं लिखे हैं ॥ ८०–८३ ॥

अथ मतान्तरम्—

पलालकं रवेर्दुग्धैर्दिनमेकं विमर्दयेत्।

क्षिप्त्वा षोडशिकातैले मिश्रयित्वा ततः पचेत् ॥ ८४ ॥
घनावृतप्रदेशे च सप्तयामावधि ध्रुवम् ।
स्वाङ्गशीतमधःस्थञ्च सत्त्वं श्वेतं समाहरेत् ॥ ८५ ॥
छागलस्याथ बालेन बलिना च समन्वितम् ।
तालकं दिवसद्वन्द्वं मर्दयित्वाऽतियत्नतः ॥ ८६ ॥
युक्तं द्रावणवर्गेण काचकूप्यां विनिःक्षिपेत् ।
त्रिधा ताञ्च मृदा लिप्त्वा परिशोष्य खरातपे ॥ ८७ ॥
ततः खर्परकच्छिद्रे तामर्धां चैव कूपिकाम् ।
प्रवेश्य ज्वालयेदग्निं द्वादशप्रहरावधि ॥
कूपिकण्ठस्थितं शीतं शुद्धं सत्त्वं समाहरेत् ॥ ८८ ॥
पलार्धप्रमितं तालं बद्ध्वा वस्त्रे सिते दृढे ।
बलिनाऽऽलिप्य यत्नेन त्रिवारं परिशोष्य च ॥ ८९ ॥
द्राविते त्रिपले ताम्रे क्षिपेत्तालकपोटलीम् ।
भस्मनाच्छादयेच्छीघ्रं ताम्रेणाऽऽवेष्टितं सितम् ॥
मृदुलं सत्त्वमादद्यात्प्रोक्तं रसरसायने ॥ ९० ॥

इति तालकाधिकारः—

एक पल (चार तोले) भर शुद्ध हरताल को मदार के दुग्ध से एक दिन तक घोटकर एक पल तिल के तैल में मिश्रण कर खुले स्थान में बालुका यन्त्र द्वारा सात प्रहर तक पाक करना चाहिए । स्वाङ्ग शीत होने पर नीचे निकले हुए श्वेत सत्त्व को ग्रहण करें अथवा छाग के पुच्छ के बाल और गन्धक को हरताल के साथ दो दिन तक घोटकर उसमें द्रावक वर्ग के पदार्थ (शहद्, घी, सुहागा) मिलाकर काच कूपी (आतसी शीशी) में भर कर तीन कपड़ मिट्टी करके धूप में सुखालें फिर मध्यछिद्र युक्त मिट्टी के कुण्डे में बालु भर कर आतसी शीशी रख दें (आधी शीशी बालु से ढकी रहनी चाहिए) पश्चात्, २ प्रहर तक अग्नि देना चाहिये । स्वाङ्ग शीत होने पर कूपिकण्ठ में लगे हुए श्वेत सत्त्व को ग्रहण करे । अथवा आधे पल (२ तोला) शुद्ध हरताल को श्वेत मजबूत वस्त्र में बांधकर पोटली बनालें । उस पोटली को तीन बार गोमूत्र में पिसे हुए गन्धक से लेपकर धूप में सुखाले । फिर तीन पल द्रव हुए ताम्र में पोटली रखकर

राख से अच्छी प्रकार पोटली को ढक दें कुछ काल के बाद ताम्र पर निकली हुई। श्वेत और मृदु सत्त्व को रस और रसायन के लिये ग्रहण करें॥ ८४-९०॥

अथ मनःशिलानिरूपणम्—

मनःशिलाया भेदाः—

मनःशिला त्रिधा प्रोक्ता श्यामाङ्गी कणवीरका।
खण्डाख्या चेति तद्रूपं विविच्य परिकथ्यते॥ ९१॥

मनःशिला तीन प्रकार की होती है। (१) श्यामाङ्गी, (२) कणवीरका, (३) खण्डाख्या, ॥ ९१॥

त्रिविधमनःशिलालक्षणानि—

श्यामा रक्ता सगौरा च भाराढ्या श्यामिका मता।
तेजस्विनी च निर्गौरा ताम्राभा कणवीरका॥ ९२॥
चूर्णीभूताऽतिरक्ताङ्गी सभारा खण्डपूर्विका।
उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठा भूरिसत्त्वा प्रकीर्तिता॥ ९३॥

जो काली, लाल तथा गौर (सर्षपवर्ण) वर्ण मिश्रित और भारी होती है उसको श्यामाङ्गी कहते हैं। जो तेज युक्त तथा ताम्र समान चमकदार हो और गौर-वर्ण रहित हो उसको कणवीरका कहते हैं और जो चूर्ण के रूप में हो तथा अत्यन्त रक्त तथा भारयुक्त हो उसको खण्डाख्य मैन शील कहते हैं। इन तीनों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठ तथा ज्यादे सत्त्ववाली होती हैं॥ ९२-९३॥

अथ गुणाः—

मनःशिला सर्वरसायनाग्र्या तिक्ता कटूष्णा कफवातहन्त्री।
सत्त्वात्मिका भूतविषाग्निमान्द्यकण्डूतिकासाक्षयहारिणी च॥ ९४॥

मनःशिला सब रसायनों में श्रेष्ठ तथा तिक्त, कटु, उष्ण और कफ, वात को नष्ट करती है तथा अधिक सत्त्व वाली शिला भूत, विष, अग्निमांद्य, कण्डू, कास और क्षय रोग को नष्ट करती है॥ ९४॥

अशुद्धशुद्धदोषगुणाः—

अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च अशुद्धा कुरुते शिला।
मन्दाग्निं मलबन्धं च शुद्धा सर्वरुजापहा॥ ९५॥

अशुद्ध मनःशिला अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मन्दाग्नि और मलबन्ध करती है, किन्तु शुद्ध करने पर सकल व्याधियों को नष्ट करती है॥ ९५॥

अथ शोधनम्—

अगस्त्यपत्रतोयेन भाविता सप्तवारकम् ।
शृङ्गवेररसैर्वाऽपि विशुद्ध्यति मनःशिला ॥ ९६ ॥

मैन शील को अगस्त्य वृक्ष के पत्र के स्वरस से या अद्रक (आदी) स्वरस से सात वार भावना देने से शुद्ध हो जाती है ॥ ९६ ॥

मतान्तरम्—

जयन्तीभृङ्गराजोत्थरक्तागस्त्यरसैः शिलाम् ।
दोलायन्त्रे पचेद्यामं यामं छागोत्थमूत्रकैः ।
क्षालयेदारनालेन सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ९७ ॥

अथवा जयन्ती, भृङ्गराज, रक्त अगस्त्य इन में से किसी एक के रस से दोला यन्त्र में एक प्रहर स्वेदन करके पश्चात् उसी प्रकार बकरी के मूत्र में पकावे फिर काञ्जी से धोकर सब रोगों में प्रयोग करे ॥ ९७ ॥

अथ सत्त्वपातनम्—

अष्टमांशेन किट्टेन गुडगुग्गुलुसर्पिषा ।
कोष्ठ्यां रुद्ध्वा दृढं ध्माता सत्त्वं मुञ्चेन्मनःशिला ॥ ९८ ॥

शुद्ध मैनशील में अष्टमांश किट्ट (मण्डूर) और गुड़ गुग्गुल तथा घृत मिला कर मूषायन्त्र में बन्दकर खूब फूंकने से सत्त्व निकल जाता है ॥ ९८ ॥

मतान्तरम्—

भूनागधौतसौभाग्यमदनैश्च विमर्दितैः ।
कारवल्लीदलाम्भोभिर्मूषां कृत्वाऽत्र निक्षिपेत् ॥ ९९ ॥
शिलां क्षाराम्लनिष्पिष्टां प्रधमेत्तदनन्तरम् ।
कोकिलाद्वयमात्रं हि ध्मानात्सत्त्वं त्यजत्यसौ ॥ १०० ॥

इति मनःशिलाधिकारः ।

अथवा केचुए (भूनाग) का सत्त्व, सुहागा, मैनफल इनका चूर्ण कर करेले के रस से मूषा का निर्माण कर उसमें क्षार और अम्ल रस में पिसी हुई मनः शिला रख कर कोयलों की आञ्च में फूंकने से सत्त्व निकल जाता है ॥ ९९–१०० ॥

अथाञ्जनानां सन्निरूपणम्—

अञ्जनभेदाः—

सौवीरमञ्जनं प्रोक्तं रसाञ्जनमतः परम् ।

स्रोतोऽञ्जनं तदन्यच्च पुष्पाञ्जनकमेव च।
नीलाञ्जनं च तेषां हि स्वरूपमिह वर्ण्यते ॥ १०१ ॥

अञ्जन पांच प्रकार के होते हैं' जैसे १ सौवीराञ्जन, २ रसांजन (रसौंत), ३ स्रोतोऽञ्जन (कालासुरमा), ४ पुष्पाञ्जन (श्वेतसुरमा), ५ नीलाञ्जन (नील सुरमा) ये पांच भेद हैं ॥ १०१ ॥

विमर्शः—आजकल प्रायः बाजारों में असली अञ्जन नहीं मिलते हैं। इसका कारण प्रथम तो हमारा ही है, क्योंकि हम अच्छी प्रकार से परीक्षा नहीं करते हैं और सिर्फ अज्ञ पंसारी के भरोसे ही पर निर्भर रहते हैं। इसका नतीजा (परिणाम) यह निकलता है कि हमारी औषध शास्त्रोक्त फल नहीं करती है। इस लिये हम नीचे सब प्रकार के अञ्जनों के आधुनिक मत से लक्षण तथा गुण आदि लिख देते हैं। इन लक्षणों से उस द्रव्य की परीक्षा अच्छी प्रकार कर लेनी चाहिए तथा विश्वस्त स्थानों से ही मंगवाने चाहिए। शास्त्र में इनके निम्न पांच भेद किये गये हैं।

"सौवीरमञ्जनं प्रोक्तं रसाञ्जनमतः परम्।
स्रोतोऽञ्जनं तदन्यच्च पुष्पाञ्जनकमेव च।
नीलाञ्जनञ्च तेषां हि पञ्च भेदाः प्रकीर्तिताः ॥

१ सौवीराञ्जन–स्टिबनाइटिस (Stybnitis)
२ रसाञ्जन (यलो अक्साइड आफ़मर्करी Yellow,oxide of mercury)
३ स्रोतोऽञ्जन (अन्टीमनी सल्फाइड Antimony salphide या बरनाग सुरमा)
४ पुष्पाञ्जन (जिन्क आक्साइड Zinc oxide)
५ नीलाञ्जन (गेलेना या लेड सल्फाइड Lead sulphide)

सौवीराञ्जन—यह नेत्र के लिये अच्छा है तथा यह अन्टिमनी (An timony) और गन्धक (Sulphur) का यौगिक है। यह सुरमा बेली आसाम से आता है। शास्त्र में इसका लक्षण यह है वल्मीकशिखराकारं भङ्गे नीलोत्पलद्युति। सौवीराञ्जनमित्याहुरायुर्वेद विदोजनाः ॥

रसाञ्जन—इसको यलो आकसाइड आफ् मर्करी (Yellowoxide of Mercuty) कहते हैं। आजकल प्रायः चिकित्सक रसाञ्जन शब्द से

"दार्वीक्वाथसमं क्षीरं पाद पक्त्वा यदा घनम्।
तदा रसाञ्जनं ख्यातं..................इति॥ इस भावप्रकाशोक्त लक्षण विधि से बने हुए द्रव्य ही को सर्वत्र ग्रहण करते हैं। किन्तु यह उचित नहीं है। जहां रसनिर्माण की प्रक्रिया हो वहां रसाञ्जन शब्द से "रसगर्भं रसाञ्जनम्, अर्थात यलो आक्साइड आफ् मर्करी Yellowoxide of Meroury के नाम से जो खनिज आता

है उसे लेना चाहिए तथा क्वाथ और चूर्णादि प्रक्रिया में भावप्रकाशोक्त रसाञ्जन का ग्रहण करें।

स्रोतोऽञ्जन—यह अन्टीमनी सल्फाइड (Antimony Sulphide) है। बर्मा और मैसूर में थोड़ा अन्टीमनी सल्फाइड प्राप्त होता है। आजकल सफेद सुरमे के नाम से बाजारों में जो द्रव्य मिलता है वह केलसाइट है उसे नहीं लेना चाहिए। वह चूने की जाति का एक पत्थर है स्रोतोऽञ्जन नहीं है।

पुष्पाञ्जन—यह Zinc oxide जिन्क आक्साइड है। इसे सफेदा भी कहते हैं। यह जैपूर में बहुत बनता है तथा आजकल पाश्चात्य चिकित्सक नेत्र के लिये यशद के योगों का अत्यन्त प्रयोग करते हैं।

नीलाञ्जन—यह लेड सल्फाइड (Lead sulphide) या गेलेना है। यह भी नेत्र के लिये हितकर है तथा वर्मा से अधिक आता है।

सौवीराञ्जनगुणाः—

सौवीरमञ्जनं धूम्रं रक्तपित्तहरं हिमम्।
विषहिध्माक्षिरोगघ्नं व्रणशोधनरोपणम्॥ १०२॥

अब प्रत्येक का वर्णन करते हैं-सौवीराञ्जन धूम्र वर्ण का होता है। यह रक्त-पित्त, विष, हिचकी और नेत्र के रोगों को नष्ट करता है तथा शीतल होता है, व्रण का शोधन करके भर देता है॥ १०२॥

रसाञ्जनगुणाः—

रसाञ्जनञ्च पीताभं विषवक्त्रगदापहम्।
श्वासहिध्मापहं वर्ण्यं वातपित्तास्रनाशनम्॥ १०३॥

रसाञ्जन कुछ पीले वर्ण का होता है। यह विषबाधा, मुखरोग, श्वास, हिचकी वातरक्त तथा रक्तपित्त को नष्ट करता है और वर्ण बढाता है॥ १०३॥

स्रोतोऽञ्जनगुणाः—

स्रोतोऽञ्जनं हिमं स्निग्धं कषायं स्वादु लेखनम्।
नेत्र्यं हिध्माविषच्छर्दिकफपित्तास्ररोगनुत्॥ १०४॥

स्रोतोऽञ्जन शीत, स्निग्ध, कषाय, स्वादु तथा लेखन होता है। नेत्रों का हितकारक है और हिचकी, विषबाधा, वमन, कफ, रक्तपित्त इन रोगों को नष्ट करता है॥ १०४॥

लेखनस्वरूपं—

धातून् मलान्वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत्।
लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीर मुष्णं वचा यवाः॥

पुष्पाञ्जनगुणाः—

पुष्पाञ्जनं सितं स्निग्धं हिमं सर्वाक्षिरोगनुत्।
अतिदुर्धरहिध्माघ्नं विषज्वरगदापहम् ॥ १०५ ॥

पुष्पाञ्जन श्वेत, स्निग्ध और शीतल होता है। समग्र नेत्र के रोगों को नष्ट करता है। दुःसाध्य हिचकी, विषबाधा तथा ज्वर को नष्ट करता है ॥ १०५ ॥

नीलाञ्जनगुणाः—

नीलाञ्जनं गुरु स्निग्धं नेत्र्यं दोषत्रयापहम्।
रसायनं सुवर्णघ्नं लोहमार्दवकारकम् ॥ १०६ ॥

नीलाञ्जन गुरु, स्निग्ध, नेत्रहितकारी, दोषत्रयनाशक, रसायन और सुवर्ण भस्म करने में श्रेष्ठ (सहायक) और लोहे को मृदु करता है ॥ १०६ ॥

अथ शोधनम्—

अञ्जनानि विशुध्यन्ति भृङ्गराजनिजद्रवैः ॥ १०७ ॥

सब प्रकार के अञ्जन भृङ्गराज के स्वरस में घोटने से शुद्ध हो जाते हैं ॥१०७॥

अञ्जनसत्त्वाहरणम्—

मनोह्वासत्त्ववत्सत्त्वमञ्जनानां समाहरेत् ॥ १०८ ॥

प्रायःसब अञ्जनों का सत्त्व मनः शिला की सत्त्वपातनविधि से प्राप्त होता है॥१०८॥

स्रोतोऽञ्जनलक्षणम्—

वल्मीकशिखराकारं भङ्गे नीलोत्पलद्युति।
घृष्टं तु गैरिकच्छायं स्रोतोजं लक्षयेद्बुधः ॥ १०९ ॥

जो अञ्जन दीमकगृह के शिखर के स्वरूप का हो और तोड़ने पर नील कमल की प्रभा समान ज्ञात हो तथा घिसने से गैरिक के समान लाल हो वह स्रोतोऽञ्जन कहलाता है ॥ १०९ ॥

अञ्जनरसबन्धनम्—

गोशकृद्रसमूत्रेषु घृतक्षौद्रवसासु च।
भावितं बहुशस्तच्च शीघ्रं बध्नाति सूतकम् ॥ ११० ॥

अञ्जन को गोबर के रस, गोमूत्र, घृत, शहद, वसा इन द्रव्यों में क्रमशः बहुत बार भावना देकर शुद्ध करने से वह शीघ्र ही पारद का बन्धन करता है ॥११०॥

रसाञ्जनस्य विशेषशोधनम्—

सूर्यावर्तादियोगेन शुद्धमेति रसाञ्जनम् ॥ १११ ॥

रसाञ्जन आगे कहे हुए सूर्यावर्तादियोगों से शुद्ध होता है ॥ १११ ॥

स्रोतोऽञ्जनसत्त्वपातनविधिः—

राजावर्तकवत्सत्त्वं ग्राह्यं स्रोतोऽञ्जनादपि ॥ ११२ ॥

इत्यञ्जनाधिकारः ।

स्रोतोऽञ्जन का सत्त्वपातन राजावर्त के सत्त्वपातन की विधि से निकालना चाहिए ॥ ११२ ॥

अथ कङ्कुष्ठनिरूपणम्—

कङ्कुष्ठोत्पत्तिवर्णनं भेदाश्च—

हिमवत्पादशिखरे कङ्कुष्ठमुपजायते ।
तत्रैकं नालिकाख्यं हि तदन्यद्रेणुकं मतम् ॥ ११३ ॥

कङ्कुष्ठ की उत्पत्ति हिमालय पर्वत के समीपवर्ति शिखरों से होती है। यह नालिकाख्य और रेणुक नाम से दो तरह का होता है ॥ ११३ ॥

द्विविधकङ्कुष्ठलक्षणम्—

पीतप्रभं गुरु स्निग्धं श्रेष्ठं कङ्कुष्ठमादिमम् ।
श्यामपीतं लघु त्यक्तसत्त्वं नेष्टं हि रेणुकम् ॥ ११४ ॥

प्रथम नालिक नामक कङ्कुष्ठ पीतवर्ण, भारयुक्त तथा स्निग्ध होता है और वह औषध कार्यमें श्रेष्ठ है। रेणुककङ्कुष्ठ कुछ कृष्ण और पीतवर्ण युक्त, लघु तथा सत्त्वरहित होता है वह औषधकार्य में इष्ट नहीं है ॥ ११४ ॥

कङ्कुष्ठोत्पत्तौ मतान्तराणि—

केचिद्वदन्ति कङ्कुष्ठं सद्योजातस्य दन्तिनः ।
वर्चश्च श्यामपीताभं रेचनं परिकथ्यते ॥ ११५ ॥
कतिचित्तेजिवाहानां नालं कङ्कुष्ठसंज्ञकम् ।
वदन्ति श्वेतपीताभं तदतीव विरेचनम् ॥ ११६ ॥

कुछ लोग कङ्कुष्ठ को हस्ती के सद्य उत्पन्न हुए बच्चे का मल कहते हैं और वह कृष्ण तथा पीत दोनों रंग का होता है तथा दस्तकारक होता है। कुछ लोग तेजस्वी अश्वों से उत्पन्न हुए बच्चे के नाभि नाल को कङ्कुष्ठ मानते हैं, इसका वर्ण कुछ सफेद और पीत होता है और वह अत्यन्त विरेचक होता है॥ ११५-११६ ॥

विमर्शः—कङ्कुष्ठ खनिज द्रव्य नहीं है। यह हिमालय के ऊपर या सन्निकट प्रदेश में उत्पन्न हुए वनस्पति के रस से बनाया जाता है। इस रस को धातु या बांस की

नलियों में सञ्चित करने से कङ्कुष्ठ नलिकाकार मिलता है तथा चूर्ण रूप में भी मिलता है। सम्भव है कि वजन अधिक होने ही के कारण खनिजों के साथ इसका वर्णन किया गया है। अन्य प्रकार से जो मूल में इसकी उत्पत्ति बताई गई है इसकी सत्यता अभी तक प्रमाणित नहीं हुई है।

अथ गुणाः—

रसे रसायनं श्रेष्ठं निःसत्त्वं बहु वैकृतम् ॥ ११७ ॥
कङ्कुष्ठं तिक्तकटुकं वीर्योष्णं चातिरेचनम्।
व्रणोदावर्तशूलार्तिगुल्मप्लीहगुदार्तिनुत् ॥ ११८ ॥

कङ्कुष्ठ रस और रसायन कर्म में अत्यन्त श्रेष्ठ होता है परन्तु जो सत्त्वरहित होता है वह विकार उत्पन्न करता है। कङ्कुष्ठ तिक्त, कटु और उष्णवीर्य होता है तथा अत्यन्त रेचक भी होता है और व्रण, उदावर्त, शूल, गुल्म, प्लीहवृद्धि, अर्श इनका नाशक है ॥ ११७–११८ ॥

रसोपरसानां सामान्यशोधनं सत्त्वपातनविधिश्च—

सूर्यावर्तककदली वन्ध्या कोशातकी च सुरदालो।
शिग्रुश्च वज्रकन्दो नीरङ्कुणाकाकमाची च ॥ ११९ ॥
आसामेकरसेन तु लवणक्षाराम्लभाविता बहुशः।
शुद्ध्यन्ति रसोपरसा ध्माता मुञ्चन्ति सत्त्वानि ॥ १२० ॥

सम्पूर्ण रस तथा उपरसों का शोधन और सत्त्वपातन सुवर्चला, केला, वन्ध्याककोड़ा, कोषातकी (घोषालता), वन्दाल (पीतघोषा), जङ्गलीसूरणकन्द, सहजन, बालक या जलपीपल, मकोय इनमें से किसी एक के रस में और क्षार, लवण तथा अम्ल से भावना देकर रस तथा उपरसों को शुद्ध करते हैं और इन्हीं की भावना देकर फूंकने से इनका सत्त्वपातन होता है ॥ ११९–१२० ॥

कङ्कुष्ठशोधनम्—

कङ्कुष्ठं शुद्धिमायाति त्रिधा शुण्ठ्यम्बुभावितम् ॥ १२१ ॥
सत्त्वाकर्षोऽस्य न प्रोक्तो यस्मात्सत्त्वमयं हि तत् ॥ १२२ ॥

कङ्कुष्ठ को तीन वार सोंठ के क्वाथ से भवित कर देनेसे शुद्ध होजाता है। यह स्वयं सत्त्वस्वरूप होने से इसकी सत्त्वपातनविधि नहीं कही है ॥ १२१–१२२ ॥

रेचकयोगः—

भजेदेनं विरेकार्थं ग्राहिभिर्यवमात्रया।

नाशयेदामपूर्तिं च विरेच्य क्षणमात्रतः ॥१२३ ॥

कङ्कुष्ठ को एक यव के प्रमाण से मलरोधक जीरक सोंठ आदि के साथ विरेचन के लिये सेवन करना चाहिए। इससे दस्त होकर आमदोष नष्ट होजाता है॥ १२३ ॥

ताम्बूलानुपानवर्जनम्—

भक्षितः सह ताम्बूलैर्विरिच्यासून्विनाशयेत् ॥ १२४ ॥

इसको ताम्बूल के साथ सेवन करने से इतने दस्त आते हैं कि प्राणतक के निकलने का भय रहता है ॥ १२४ ॥

अथ विषनाशार्थं कङ्कुष्ठप्रयोगविधिः—

बर्बूरीमूलिकाक्वाथो जीरसौभाग्यकं समम् ।
कङ्कुष्ठविषनाशाय भूयो भूयः पिबेन्नरः ॥ १२५ ॥

इत्युपरसाः ।

अशुद्ध कंकुष्ट के विष को नष्ट करने के लिये या ज्यादा होने वाली दस्तों को रोकने के लिये बबूर की जड़ के क्वाथ में जीरा और टङ्कण समान २ डालकर बार २ पान करना चाहिए या बर्बुरी=वनतुलसी और मूलिका के क्वाथ में समान भाग जीरा और सुहागा डालकर पान करना चाहिए ॥ १२५ ॥

अथ साधारणरसपरिगणनम्—

कम्पिल्लश्चपलो गौरीपाषाणो नवसारकः ।
कपर्दो वह्निजारश्च गिरिसिन्दूरहिङ्गुलौ॥ १२६ ॥
मृद्दारश्रृङ्गमित्यष्टौ साधारणरसाः स्मृताः ।
रससिद्धिकराः प्रोक्ता नागार्जुनपुरःसरः ॥ १२७ ॥

कबीला, सखिया, नौसादर, कौड़ी, अम्बर, सिन्दूर, हिङ्गुल, मृद्दारश्रृङ्ग ये नागार्जुनादिग्रन्थकारों के मत से रससिद्धिप्रदान करने वाले आठ साधारण रस हैं॥१२६-१२७॥

अथ कम्पिल्लः—

इष्टिकाचूर्णसङ्काश्चान्द्रकाढ्योऽतिरेचनः ।
सौराष्ट्रदेशे चोत्पन्नः स हि कम्पिल्लकः स्मृतः ॥ १२८ ॥

कबीला ईंट के चूर्ण की तरह लाल और चमकदार होता है। यह अत्यन्त रेचक होता है। यह सौराष्ट्रदेश में खानों से उत्पन्न होता है ॥ १२८ ॥

विमर्शः—यह भी आजकल के वैज्ञानिकों के मत से खनिज द्रव्य नही है। किन्तु हिमालय की वनस्पतियों के फलों पर जमने वाला (होने वाला) रज (चूर्ण) है।

अथ गुणाः—

पित्तव्रणाध्मानविबन्धहारी श्लेष्मोदरार्तिक्रमिगुल्महारी।
मूलामशोफज्वरशूलहारी कम्पिल्लको रेच्यगदापहारी ॥ १२९ ॥

यह पित्त, व्रण, आध्मान और मलावरोध को नष्ट करता है और कफ, उदररोग (जलोदरादि), कृमि, गुल्म, अर्श, आमदोष, सूजन, ज्वर, शूल इनको नष्ट करता है और विरेचन के योग्य रोगों को नष्ट करता है ॥ १२९ ॥

इति कम्पिल्लाधिकारः—

अथ गौरीपाषाणः।

गौरीपाषाणकः पीतो विकटो हतचूर्णकः।
स्फटिकाभश्च शङ्खाभो हरिद्राभस्त्रयः स्मृताः ॥ १३० ॥

गौरीपाषाण (सङ्खिया) के पीत, विकट और हतचूर्णक ये तीन पर्याय हैं। और यह तीन प्रकार का होता है। एक स्फटिक समान श्वेत, दूसरा शङ्खसमान धूसर, तीसरा हलदी के समान पीला होता है ॥ १३० ॥

विमर्शः-गोरीपाषाण (सङ्खिया) को आर्सेनिक (Arsenic) कहते हैं। इसका सङ्केत As तथा परमाणुभार ७५ है। यह स्वतन्त्र रूप से कम मिलता है। प्रायः अन्य खनिजों के साथ मिलता है। यह रक्त सल्फाइड (As 2 S 3) अर्थात् मैन्सील और पीत सल्फाइड (As 2 S 3) अर्थात् हरताल के रूप में बहुत प्राचीन समय ही से ज्ञात था। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के चित्रल स्थान में खानों से बहुत हरिताल निकलता था। चीन के यूनान प्रान्त से बहुत सल्फाइड आता था और बर्मा वालों के द्वारा वार्निश बनाने में प्रयुक्त होता था। धातुओं के साथ आर्सिनाइड के रूप में यह बहुत फैला हुआ पाया जाता है। इसका सब से महत्त्व का खनिज आर्सेनिकल पीराइटीज़ (Fe As S) है जो आयर्न पीराइटीज़ और अन्य सल्फाइड् खनिजों के साथ मिला हुआ पाया जाता है। गन्धकाम्ल के निर्माण में जब आयर्न पीराइटीज़् जलाया जाता है तब आर्सेनिक भी आक्सी कृत हो बाष्पशील आर्सेनिक आकसाइड बन कर भट्ठी से निकली उष्ण गैसों के साथ निकल कर नल में जो धूल इकट्ठी होती है उसमें वह विद्यमान रहता है। इस आक्साइड् को 'सोमल' कहते हैं इसी से आर्सेनिक के यौगिक तैय्यार होते हैं।

आर्सेनिक की उपलब्धि—आर्सेनिक के आक्साइड् वा सल्फाइड् को लकड़ी के कोयलों के साथ गरम करने से आर्सेनिक प्राप्त होता है। प्राकृतिक खनिज को आक्सिजन् के अभाव में गरम करने से भी आर्सेनिक उद्धनित हो (Sublime) इस्पात के समान भूरे रङ्ग के चूर्ण में प्राप्त होता है।

इस तरह से उद्धनित आर्सेनिक चमकीला इस्पात के सदृश भूरे रङ्ग का धातु सा देख पड़ने वाला पदार्थ है। इसके क्रिस्टल षट्फलकीय होते हैं। इनका विशिष्ट घनत्व ५. ६२ से ५. ९६ तक होता है। यह बहुत भङ्गुर होता है। यह ताप (Heat) और विद्युत् का सुचालक भी होता है। १००० से० पर यह उद्धनित होना आरम्भ करता और धुँधले रक्त ताप पर बहुत शीघ्रता से सीधे बाष्प में बाष्पीभूत होजाता है। इसके बाष्प के घनत्व से मालूम होता है कि इसके अणु चतुर्बन्धक परन्तु उच्च तापक्रम पर यह द्विबन्धक हो जाता है। इसके वाष्प का रङ्ग पीला (Yellow) होता है। इसमें लहसुन सी गन्ध होती है।

आर्सेनिक की पहचान—आर्सेनिक और इसके यौगिक बहुत विषाक्त होते हैं। अतः इसको अल्पमात्रा में पहचानना बहुत आवश्यक होता है। अनेक विधियों से आर्सेनिक अल्प मात्रा में पहचाना जाता है। आर्सेनिक को सल्फाइड के रूप में अवक्षिप्त कर उस अवक्षेप को सूखाकर पोटासियम् साइनाइड् के साथ परख नली (टेस्ट-ट्यूब) में गरम करने से आर्सेनिक का कृष्णवर्ण का निक्षेप प्राप्त होता है। इस निक्षेप को वायु में गरम करने से आर्सिनियस् आक्साइड् का श्वेत क्रिस्टलीय उद्धनित (Sublimate) प्राप्त होता है। इसको जल में घोल कर उस में सिल्वर नाइटेट् के विलयन को डालने से सिल्व् आर्सेनाइट् का पीत अवक्षेप (यलोडियो जिट) प्राप्त होता है। आर्सेनिक के दो आक्साइड् होते हैं।

१ आर्सिनियस् आक्साइड् वा आर्सेनिक् ट्राइ—आक्साइड् (Asy o6)।

२ आर्सेनिक आक्साइड् वा आर्सेनिक पेण्टाक् साइड् (As2 o5)

आर्सेनिक् के तीन सल्फाइड् होते हैं। दो प्राकृतिक हैं तथा तीनों कृत्रिम भी होते हैं।

१ आर्सेनिक् डाइ—सल्फाइड् (मन्सील, रीअलगर्) As 2 S 2

२ आर्सेनिक् ट्राइ—सल्फाइड् (हरिताल, ओरपीमेण्ट) As 2 S 3

३ आर्सेनिक् पेण्टा—सल्फाइड् As 2 S 5

अथ शोधनम्—

पूर्वः पूर्वो गुणैः श्रेष्ठः कारवल्लीफले क्षिपेत्।
स्वेदयेद्धण्डिकामध्ये शुद्धो भवति मूषकः॥ १३१॥

इन में पूर्व २ क्रम से श्रेष्ठ माने जाते हैं। सङ्खिया को छोटेछोटे टुकड़े कर

करेलेको चीर कर उस के बीच में रखदे या करेले के रस में दोलायन्त्रद्वारा स्वेदन करके शुद्धकरना चाहिए ॥ १३१ ॥

अथ सत्त्वग्रहणम्—

तालवद्ग्राहयेत्सत्त्वं शुद्धं शुभ्रं प्रयोजयेत् ॥ १३२ ॥

इसका सत्त्व हरताल के समान निकालना चाहिए यह सत्त्व श्वेतवर्ण का होता है ॥१३२॥

अथ गुणाः—

रसबन्धकरः स्निग्धो दोषघ्नो रसवीर्यकृत् ॥ १३३ ॥

इति गौरीपाषाणधिकारः।

संखिया का सत्त्व स्निग्ध, दोषत्रयनाशक होता है तथा पारद का बन्धन करता है और गुण बढाता है ॥ १३३ ॥

अथ नवसारनिरूपणम्—

अथ नवसारोत्पत्तिः—

करीरपीलुकाष्ठेषु पच्यमानेषु चोद्भवः।
क्षारोऽसौ नवसारः स्याच्चुल्लिकालवणाभिधः ॥ १३४ ॥

करीर और पीलु काष्ठ की लकड़ियों को जलाकर भस्म को पानी में घोलकर छाने हुए पानी को क्षारनिर्माण विधि से जलाने पर जो श्वेत भाग कड़ाही में शेष रह जाता है उसे नौसादर कहते हैं, चुल्लिकालवण भी उसी का नाम है ॥ १३४ ॥

विमर्शः—नवसार को नौसादर करते हैं। इसको सेल अमोनियक, Sal Ammoniac तथा अमोनियम् क्लोराइड Ammonium chloride कहते हैं। इसका सूत्र Nhycl है।

परिचय-नौसादर नमक के समान सफेद क्रिस्टलीय चूर्ण होता है। इसके क्रिस्टल का आकोर आंखों से ठीक २ नहीं देखा जा सकता ह। साधारणतः ये क्रिस्टल बहुत छोटे और रेशेदार होते हैं। छूने से रूक्ष प्रतीत होते हैं तथा भङ्गुर होते हैं। इन में कोई गन्ध (Odour) नहीं होती है। नौसादर स्वाद में नमकीन होता है। यह जल में बहुत अधिक विलेय है। इसको गरम करने से सफेद धुआं निकलता है। यह पिघलने के पहिले ही उड़ जाता है जिस बर्तन में यह गरम किया जाता हो उस बर्तन पर यदि कोई बर्तन पेंदी की ओर से ढक दिया जाय और उसके अन्दर जल भर देने से नौसादर उड़कर उस ठन्डे बर्तन की पेंदी में लगकर जम जावेगा।

मतान्तरेणोत्पत्तिः—

इष्टिकादहने जातं पाण्डुरं लवणं लघु ।
तदुक्तं नवसाराख्यं चूल्लिकालवणञ्च तत् ॥ १३५ ॥

ईंटों के भट्टों में ईंटों के जलने के समय जो पाण्डुर और हलका लवण प्राप्त होता है उसको नौसादर या चूल्लिकालवण भी कहते हैं ॥ १३५ ॥

अथ गुणाः—

रसेन्द्रजारणं लोहद्रावणं जठराग्निकृत् ।
गुल्मप्लीहास्यशोषघ्नं भुक्तमांसादिजारणम् ।
विडाख्यश्च त्रिदोषघ्नं चूल्लिकालवणं मतम् ॥ १३६ ॥

नौसादर पारद के जारण और सम्पूर्ण धातुओं के द्रवण करने में उपयुक्त होता है । जठराग्नि को बढाता है तथा गुल्म, प्लीहवृद्धि और मुखशोष को नष्ट करता है, खाये हुए मांसादि गुरूपदार्थों को पचाता है । कुछ लोगों के मत से विड्नामक लवण भी नौसादर कहलाता है और वह त्रिदोषनाशक होता है ॥१३६॥

अथ वराटिकावर्णनम्—

अथ वराटिकालक्षणम्—

पीताभा ग्रन्थिका पृष्ठे दीर्घवृत्ता वराटिका ।
रसवैद्यैर्विनिर्दिष्टा सा चराचरसंज्ञिका ॥ १३७ ॥

कोडी कुछ पीतवर्ण युक्त और पीठ पर गांठ युक्त और लम्बी तथा गोल आकार की होती है उसे वराटिका कहते हैं तथा उसे रसवैद्य चराचर नाम से भी पुकारते हैं ॥ १३७ ॥

उत्तमादिवराटिका—

सार्धनिष्कभरा श्रेष्ठा निष्कभारा च मध्यमा ।
पादोननिष्कभारा च कनिष्ठा परिकीर्तिता ॥ १३८ ॥

डेढनिष्क (६ मासे) वजन की कौड़ी श्रेष्ठ होती है और एक निष्क वजन की मध्यम होती है और तीन मासे वजन की कौड़ी कनिष्ठ मानी गई है ॥१३८॥

अथ गुणाः—

परिणामादिशूलघ्नी ग्रहणीक्षयनाशिनी ।
कटूष्णा दीपनी वृष्या नेत्र्या वातकफापहा ।

रसेन्द्रजारणे प्रोक्ता बिडद्रव्येषु शस्यते ॥ १३९ ॥
तदन्ये तु वराटाः स्युर्गुरवः श्लेष्मपिच्छलाः ॥ १४० ॥

भोजन पचने पर उत्पन्न शूल (परिणाम शूल) तथा ग्रहणी और क्षय को कौड़ी नष्ट करती है। यह कटु, उष्ण, दीपनी और वृष्य होती है । नेत्रों के लिये हितकर है, वात और कफ को नष्ट करती है, पारद के जारण में श्रेष्ठ है और विड द्रव्यों में प्रशस्त है, इससे विपरीत लक्षण वाली वराट कौड़ी कहलाती है, वह वजन में भारी और वातपित्त को पैदा करती है ॥ १३९–१४० ॥

अथ शोधनम्—

वराटाः काञ्जिके स्विन्ना यामाच्छुद्धिमवाप्नुयुः ॥ १४१ ॥

इति वराटिकाधिकारः।

वराटों को काञ्जी में स्वेदन करने से शुद्ध हो जाती हैं ॥ १४१ ॥

अथाग्निजारनिरूपणम्—

अथाग्निजारपरिचयः—

समुद्रेणाग्निनक्रस्य जरायुर्बहिरुज्झितः ।
संशुष्को भानुतापेन सोऽग्निजार इति स्मृतः ॥ १४२ ॥

समुद्र ने अग्निनक्रनामक जलचर के जरायु (गर्भ कोष) को बाहर फेंक दिया, पश्चात् वह सूर्य की धूप से सूख गया उसी को अग्निजार या अम्बर कहते हैं॥१४२॥

अथ गुणाः—

अग्निजारस्त्रिदोषघ्नो धनुर्वातादिवातनुत् ।
वर्धनो रसवीर्यस्य दीपनो जारणस्तथा ॥ १४३ ॥

अग्निजार त्रिदोष को नष्ट करता है, धनुर्वात आदि वातरोगों को दूर करता है, रस वीर्य्य को बढ़ाता है, अग्नि दीपक और धातुओं का जारण करता है ॥१४३॥

अथ तस्य स्वभावतः शुद्धत्वनिर्देशः—

यदब्धिक्षारसंशुद्धस्तस्माच्छुद्धिर्न हीष्यते ॥ १४४ ॥

इत्यग्निजाराधिकारः।

यह समुद्रक्षार के सम्पर्क में रहने से शुद्ध ही होता है अतः इसकी शुद्धि करना नहीं इष्ट है ॥ १४४ ॥

अथ गिरिसिन्दूरनिरूपणम्—

महागिरिषु चाल्पीयः पाषाणान्तः स्थितो रसः ।
शुष्कशोणः स निर्दिष्टो गिरिसिन्दूरसंज्ञया ॥ १४५ ॥

हिमालय, विन्ध्याचल आदि बड़े २ पहाड़ों की चट्टानों के बीच में जो लाल वर्ण का रस सूख जाता है उसको गिरि सिन्दूर नाम से कहते हैं ॥ १४५ ॥

गिरिसिन्दूरगुणाः—

त्रिदोषशमनं भेदी रसबन्धनमग्रिमम् ।
देहलोहकरं नेत्र्यं गिरिसिन्दूरमीरितम् ॥ १४६ ॥

यह त्रिदोष की शान्ति करता है, दस्तावर है और रसबन्धन करने वाले द्रव्यों में श्रेष्ठ है तथा देह को लौह सदृश दृढ करता है और नेत्र हितकर है॥१४६॥

अथ हिङ्गुलनिरूपणम्—

हिङ्गुलभेदाः—

हिङ्गुलः शुकतुण्डाख्यो हंसपादस्तथापरः ॥ १४७ ॥

हिङ्गुल दो तरह का होता है, एक को शुकतुण्ड और दूसरे को हंसपाद, कहते हैं ॥ १४७ ॥

शुकतुण्डकस्य परिचयः—

प्रथमोऽल्पगुणस्तत्र चर्मारः स निगद्यते ॥ १४८ ॥

इन दोनों में जो शुक तुण्ड हिङ्गुल होता है वह अल्प गुणप्रद होता है इसको चर्मार भी कहते हैं ॥ १४८ ॥

हंसपादलक्षणम्—

श्वेतरेखः प्रवालाभो हंसपादः स ईरितः ॥ १४९ ॥

जिस हिंगुल का रंग प्रवाल के समान होता है तथा श्वेत रेखाएं पड़ी होती हैं उसे हंसपाक (द) कहते हैं ॥ १४९ ॥

हिङ्गुलगुणाः—

हिङ्गुलः सर्वदोषघ्नो दीपनोऽतिरसायनः ।
सर्वरोगहरो वृष्यो जारणायातिशस्यते ॥ १५० ॥
एतस्मादाहृतः सूतो जीर्णगन्धसमो गुणैः ॥ १५१ ॥

हिङ्गुल सब दोषों को नष्ट करता है, अग्नि दीपक और रसायन गुण को करता

है, सर्व रोगों को हरता है, वृष्य है, धातुओं के जारण में श्रेष्ठ है, इससे निकाला हुआ पारद गुणों में गन्धकजीर्ण पारद के समान होता है ॥१५०-१५१॥

अथ शोधनम्—

सप्तकृत्वाऽऽर्द्रकद्रावैर्लकुचस्याम्बुनाऽपि वा।
शोषितो भावयित्वा च निर्दोषो जायते खलु ॥ १५२ ॥
किमत्र चित्रं दरदः सुभावितः क्षीरेण मेष्या बहुशोऽम्लवर्गैः।
एवं सुवर्णं बहुघर्मतापितं करोति साक्षाद्वरकुङ्कुमप्रभम् ॥१५३॥

हिङ्गुल को अद्रक के रस की सात भावना देने से वह शुद्ध हो जाता है अथवा बडहल के रस की सात भावना से भी शुद्ध हो जाता है। अथवा हिङ्गुल को भेड़ के दुग्ध से और अम्ल वर्ग के पदार्थों के रस से बहुत वार भावना देकर सेवन करने से मनुष्य को कुङ्कुम (केशर) के समान कान्तिमान् और अच्छे वर्ण युक्त कर देता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। अथवा इस प्रकार भावित हिङ्गुल बहुत वार अग्नि में तप्त हुए सुवर्ण तथा केशर के समान देह को कान्ति युक्त कर देता है ॥१५२-१५३॥

हिङ्गुलसत्त्वाकर्षणविधिः—

दरदः पातनायन्त्रे पातितश्च जलाश्रये।
तत्सत्त्वं सूतसङ्काशं जायते नात्र संशयः ॥ १५४ ॥

हिङ्गुल को शुद्ध कर अधःपातन यन्त्र की ऊर्ध्व हण्डि में लेपकर नीचे की हण्डिका में जलभर कर एक हस्त परिमित गड्ढे में उस यन्त्र को रख दें ऊपर फिर से अग्नि जलाने से पारद के समान सत्त्व नीचे के जल में गिर जायगा। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १५४ ॥

अथ मृद्दारश्टङ्गकम्—

परिचयः—

सदलं पीतवर्णं च भवेद्गुर्जरमण्डले।
अर्बुदस्य गिरेः पार्श्वे जातं मृद्दारश्टङ्गकम् ॥ १५५ ॥

गुजरात प्रान्त में आबु पहाड़ के समीप की खानों से पत्र रचना युक्त और पीतवर्ण की वस्तु प्राप्त होती है उसको मुरदासंग कहते हैं ॥ १५५ ॥

अथ गुणाः—

सीससत्त्वं गुरु श्लेष्मशमनं पुङ्गदापहम्।

रसबन्धनमुत्कृष्टं केशरञ्जनमुत्तमम् ॥ १५६ ॥

यह गुरू होता है, कफ के विकारों को शान्त करता है, मनुष्यों के उपदंशादि रोगों को नष्ट करता है, यह बन्धन में उत्कृष्ट है, केशों पर लगाने से उन्हें काला कर देता है ॥ १५६ ॥

साधारणशोधननिर्देश:—

साधारणरसाः सर्वे मातुलुङ्गार्द्रकाम्बुना ।
त्रिरात्रं भाविताः शुष्का भवेयुर्दोषवर्जिताः ॥ १५७ ॥

उपर्युक्त सब प्रकार के साधारण रस बिजौरे निम्बू के रस और अद्रक के रस से तीन दिन तक भावना देकर सुखा लेने से शुद्ध हो जाते हैं ॥ १५७ ॥

अथ सत्त्वानां सामान्यशोधनम्—

यानि कानि च सत्त्वानि तानि शुध्यन्त्यशेषतः ।
ध्मातानि शुद्धिवर्गेण मिलन्ति च परस्परम् ॥ १५८ ॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये उपरससाधारणरसानां शुद्ध्यादिनिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इसी तरह सम्पूर्ण सत्त्वों को शुद्धिवर्ग के पदार्थों के साथ घोटकर फूंकने से शुद्ध हों जाते हैं और परस्पर मिलने के योग्य हो जाते हैं ॥ १५८ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्य-भाषाटीकायामुपरस-साधारणरसनिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः।

अथ रत्ननिरूपणम्—

अथ मणयः—

मणयोऽपि च विज्ञेयाः सूतबन्धनकारकाः ॥ १ ॥

सर्व प्रकार के रत्न भी पारद का बन्धन करते हैं तथा अन्य भी उनके अनेक अद्भुत गुण हैं ॥ १ ॥

अथ मणीनां नामानि—

वैक्रान्तः सूर्यकान्तश्च हीरकं मौक्तिकं मणिः।
चन्द्रकान्तस्तथा चैव राजावर्तश्च सप्तमः ॥ २ ॥
गरुडोद्गारकश्चैव ज्ञातव्या मणयस्त्वमी।
पुष्परागो गोमेदश्च पद्मरागो प्रवालकम् ॥ ३ ॥
वैदूर्यं च तथा नील एतेऽपि मणयो मताः।
यत्नतः सङ्ग्रहीतव्या रसबन्धस्य कारणात् ॥ ४ ॥

रत्नों के नाम–वैक्रान्त, सूर्य्यकान्त, हीरा, मोती, मणि, चन्द्रकान्त, राजावर्त, मरकत (पन्ना) ये आठ रत्न हैं और पुखराज, गोमेद, पद्मराग, प्रवाल, वैदूर्य और नीलम ये भी मणि या रत्न हैं। ये रत्न पारद का बन्धन करते हैं इसलिये इन्हें सावधानी से इकट्ठा करना चाहिए ॥ २–४ ॥

अथ श्रेष्ठमणीनां नामानि—

पद्मरागेन्द्रनीलाख्यौ तथा मरकतोत्तमः।
पुष्परागः सवज्राख्यः पञ्च रत्नवराः स्मृताः ॥ ५ ॥

पद्मराग, इन्द्रनील, मरकत, पुखराज और हीरा ये पांच उत्तम रत्न हैं ॥५॥

अथ ग्रहप्रसादकरत्नानि—

माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि तार्क्ष्यं च पुष्पं भिदुरं च नीलम्।
गोमेदकं चाथ विदूरकं च क्रमेण रत्नानि नवग्रहाणाम् ॥ ६ ॥

पद्मराग, मोती, मूंगा, मरकत (पन्ना), पुखराज, हीरा, नीलम, गोमेद,

वैदूर्य्य, ये नवग्रहों की गणनानुसार उनके नौरत्न हैं अर्थात् इन रत्नों के धारण करने से या दान करने से वे ग्रह शान्त रहते हैं ॥ ६ ॥

सूर्य, पद्मराग	चन्द्र मोती	मंगल मूंगा	बुध पन्ना	गुरु पुखराज	शुक्र हीरा	शनि, नीलम	राहु गोमेद	केतु वैदूर्य्य

ग्रहानुसारेण रत्नपरिगणनम्—

ग्रहानुमैत्र्या कुरुविन्दपुष्पप्रवालमुक्ताफलतार्दयवज्रम् ।
नीलाख्यगोमेदविदूरकं च क्रमेण मुद्राधृतमिष्टसिद्ध्यै ॥७॥

पद्मराग, पुखराज, प्रवाल, मोती, मरकत, हीरा, नीलम, गोमेद, वैदूर्य्य इन नवरत्नों की क्रम से सूर्यादि ग्रहों के साथ मित्रता होने से इनकी मुद्रा बनाकर धारण करना इष्टसिद्धि के लिये श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

रत्नप्रयोगविषयः—

रसे रसायने दाने धारणे देवताऽर्चने ।
सुलक्ष्याणि सुजातीनि रत्नान्युक्तानि सिद्धये ॥ ८ ॥

उत्तम जाति और उत्तम लक्षण वाले रत्न रस, रसायन, दान, धारण, देवार्चन और इष्टसिद्धि के लिये उत्तम कहे गये हैं ॥ ८ ॥

अथ माणिक्यम्—

द्विविधमाणिक्यनिर्देशः—

माणिक्यं पद्मरागाख्यं द्वितीयं नीलगन्धि च ॥ ९ ॥

मणिक्य नाम का रत्न दो तरह का होता है, एक पद्मराग और दूसरा नीलगन्धि कहलाता है ॥ ९ ॥

श्रेष्ठमाणिक्यलक्षणम्—

कुशेशयदलच्छायं स्वच्छं स्निग्धं गुरु स्फुटम् ।
वृत्तायतं समं गात्रं माणिक्यं श्रेष्ठमुच्यते ॥ १० ॥

जो माणिक्य लालवर्ण के कमल के पत्रों के समान लाल वर्ण का हो तथा स्वच्छ, स्निग्ध, भारी, दीप्तिमान, गोल और विस्तृत तथा समानावयव युक्त हो वह श्रेष्ठ होता है और ये लक्षण पद्मराग माणिक्य में होते हैं ॥ १० ॥

श्रेष्ठनीलमाणिक्यलक्षणम्—

नीलं गङ्गाम्बुसम्भूतं नीलगर्भारुणच्छवि ।

पूर्वमाणिक्यवच्छ्रेष्ठं माणिक्यं नीलगन्धि तत् ॥ ११ ॥

नीलमाणिक्य गङ्गा से उत्पन्न और बाहर से नीलवर्ण का तथा भीतर (मध्य) रक्त वर्ण का होता है, इसी को नीलगन्धि माणिक्य कहते हैं। यह भी पद्मराग-माणिक्य के समान ही उत्तम है ॥ ११ ॥

निकृष्टमाणिक्यलक्षणम्—

रन्ध्रकार्कश्यमालिन्यरौक्ष्यावैशद्यसंयुतम् ।
चिपिटं लघु वक्रं च माणिक्यं दुष्टमष्टधा ॥ १२ ॥

जो छिद्रयुक्त, स्पर्श में कर्कश, मलिन, रुक्ष, अपारभासक, चिपटा, हलका और टेढा इन आठ दोषों से युक्त हो वह त्याज्य है ॥ १२ ॥

माणिक्यगुणाः—

माणिक्यं दीपनं वृष्यं कफवातक्षयार्तिनुत् ।
भूतवेतालपापघ्नं कर्मजव्याधिनाशनम् ॥ १३ ॥

माणिक्य दीपन तथा वृष्य होता है और कफ, वात एवं क्षय रोग को नष्ट करता है, भूत से और वेताल की बाधाओं कों दूर करता है। पाप और दुष्टकर्म से जन्य व्याधियों को नष्ट करता है ॥ १३ ॥

अथ मौक्तिकनिरूपणम्—

प्रशस्तमौक्तिकलक्षणम्—

ह्लादि श्वेतं लघु स्निग्धं रश्मिवन्निर्मलं महत् ।
ख्यातं तोयप्रभं वृत्तं मौक्तिकं नवधा शुभम् ॥ १४ ॥

जो मोती अवलोकन से चित्त प्रसन्न करता हो, श्वेत, लघु, स्निग्ध, चन्द्रकिरणसदृश किरणयुक्त, निर्मल, आकार में बडा, जल के समान स्वच्छ और गोल इन नव लक्षणों से युक्त हो वह सब कार्यों में शुभ माना जाता हैं ॥ १४ ॥

मौक्तिकशुक्त्योर्गुणाः—

मुक्ताफलं लघु हिमं मधुरं च कान्ति-
दृष्ट्यग्निपुष्टिकरणं विषहारि भेदि ।
वीर्यप्रदं जलनिधेर्जनिता च शुक्ति-
र्दीप्ता च पक्तिरुजमाशु हरदेवश्यम् ॥ १५ ॥

मौक्तिक लघु, शीतल, मधुर, कान्तिवर्धक, आंख की ज्योति को बढाने वाला,

अग्नि दीपक, शरीरपुष्टिकारक, विषनाशक, भेदक और वीर्य्य वर्द्धक होता है। समुद्र में पैदा हुई शुक्ति अग्नि को दीप्त करती है तथा परिणामशूल को अवश्य ही दूर करती है ॥ १५ ॥

हेयमौक्तिकम्—

रूक्षाङ्गं निर्जलं श्यावं ताम्राभं लवणोपमम् ।
अर्धशुभ्रं च विकटं ग्रन्थिलं मौक्तिकं त्यजेत् ॥ १६ ॥

जो मौक्तिक स्पर्श में रूक्ष, शीतलगुणरहित, मटमैला, ताम्र के स्वरूप का और नीमकसदृश धूसर, अर्धश्वेत, विषमाकार और गांठदार हो वह औषधकार्य में त्याज्य है ॥ १६ ॥

मौक्तिकगुणान्तरम्—

कफपित्तक्षयध्वंसि कासश्वासाग्निमान्द्यनुत् ।
पुष्टिदं वृष्यमायुष्यं दाहघ्नं मौक्तिकं मतम् ॥ १७ ॥

मोती (मुक्ताभस्म) कफ, पित्त, क्षय, कास, श्वास, अग्निमांद्य तथा दाह को नष्ट करता है, आयुष्य हितकर, वृष्य और शरीर पुष्टि कारक माना गया है॥१७॥

अथ प्रवालनिरूपणम्—

ग्राह्यप्रवालस्वरूपः—

पक्वबिम्बफलच्छायं वृत्तायतमवक्रकम् ।
स्निग्धमव्रणकं स्थूलं प्रवालं सप्तधा शुभम् ॥ १८ ॥

जो मूंगा पके हुए कुन्दरु (तुण्डी) के समान रक्त वर्णवाला गोल, लम्बा, वक्रतारहित, स्निग्ध, छिद्रशून्य और मोटा ऐसे नव(नो)लक्षणों से युक्त हो वह सर्वकार्यों में शुभ माना गया है ॥ १८ ॥

हेयप्रवालस्वरूपम्—

पाण्डुरं धूसरं रूक्षं सव्रणं कोटरान्वितम् ।
निर्भारं शुभ्रवर्णं च प्रवालं नेष्यतेऽष्टधा ॥ १९ ॥

जो मूंगा पाण्डुर (श्वेतपीतमिश्रवर्ण), धूसर (श्वेतकृष्णमिश्रवर्ण), रूक्ष, सच्छिद्र, कोटर (खात) युक्त, भाररहित, श्वेत, सूक्ष्म (पतला) इन आठ लक्षणों से युक्त हो वह अभीष्ट नहीं है ॥ १९ ॥

प्रवालगुणाः—

क्षयपित्तास्रकासघ्नं दीपनं पाचनं लघु ।
विषभूतादिशमनं विद्रुमं नेत्ररोगनुत् ॥ २० ॥

प्रवालगुण—प्रवाल क्षय, रक्तपित्त और कास को नष्ट करती है और पाचकाग्नि को दीप्त करती है, भोजन को पचाती है, लघु है, विष, भूतबाधा तथा नेत्ररोग को दूर करती है ॥ २० ॥

अथ तार्क्ष्यम्—

प्रशस्ततार्क्ष्यलक्षणम्—

हरिद्वर्णं गुरु स्निग्धं स्फुरद्रश्मिचयं शुभम् ।
मसृणं भासुरं तार्क्ष्यं गात्रं सप्तगुणं मतम् ॥ २१ ॥

जो पन्ना हरे रङ्ग का, भारी, स्निग्ध, उज्वलकिरण युक्त, दीप्तियुक्त, मसृण (कोमल) और स्थूल इन सात लक्षणों से युक्त हो वह शुद्ध है ॥ २१ ॥

अप्रशस्ततार्क्ष्यलक्षणम्—

कपिलं कर्कशं नीलं पाण्डु कृष्णं मलान्वितम् ।
चिपिटं विकटं रूक्षं लघु तार्क्ष्यं न शस्यते ॥ २२ ॥

जो पीतवर्ण, खुरदरा, नील, पाण्डु (श्वेतपीतमिश्रितवर्ण), काला, मैल युक्त, रूक्ष, चपटा, विषमाकार और लघु हो वह श्रेष्ठ नहीं है ॥ २२ ॥

तार्क्ष्यगुणाः—

ज्वरच्छर्दिविषश्वाससन्निपाताग्निमान्द्यनुत् ।
दुर्नामपाण्डुशोफघ्नं तार्क्ष्यमोजोविवर्धनम् ॥ २३ ॥

पन्ना के गुणः—यह ज्वर, वमन, विषबाधा, श्वास, सन्निपात, अग्निमांद्य, अर्श, पाण्डु, सूजन इन रोगों को नष्ट करता है और ओज (बल) को बढ़ाता है ॥ २३ ॥

अथ पुष्परागः—

श्रेष्ठपुष्परागलक्षणम्—

पुष्परागो गुरुः स्निग्धः स्वच्छः स्थूलः समो मृदुः ।
कर्णिकारप्रसूनाभो मसृणश्च शुभोऽष्टधा ॥ २४ ॥

जो पुखराज गुरु, स्निग्ध, स्वच्छ, मोटा, समानाकार, कोमल, कर्णिकार

(अमलताल) के पुष्प के समान कान्ति युक्त और मसृण इन आठ लक्षणों से सम्पन्न हो वह शुभ है ॥ २४ ॥

हेयपुष्परागलक्षणम्—

निष्प्रभं कर्कशं रूक्षं पीतश्यामं नतोन्नतम् ।
कपिशं कपिलं पाण्डु पुष्परागं परित्यजेत् ॥ २५ ॥

जो तेज हीन, खुरदरा, रुखा, पीला और काला, ऊंचा या नीचा विषमाकार, कालापन लिये भूरे वर्ण का और पाण्डुर हो वह त्याज्य है ॥ २५ ॥

पुष्परागगुणाः—

पुष्परागं विषच्छर्दिकफवाताग्निमान्द्यनुत् ।
दाहकुष्ठास्रशमनं दीपनं पाचनं लघु ॥ २६ ॥

पुखराज विषबाधा, वमन, कफ और वायु जन्यरोग, मन्दाग्नि, जलन, कुष्ठ और दूषितरक्त के विकारों को शान्त करता है और अग्नि को दीप्त करता है तथा पाचक और लघु होता हैं ॥ २६ ॥

अथ वज्रम्—

वज्रभेदाः—

वज्रं च त्रिविधं प्रोक्तं नरो नारी नपुंसकम् ।
पूर्वं पूर्वमिह श्रेष्ठं रसवीर्यविपाकतः ॥ २७ ॥

हीरा तीन प्रकार का होता है, १ नरजाति, २ नारी जाति, और ३ नपुंसक जाति । इन में पूर्व से पूर्व रस वीर्य्य और विपाक में श्रेष्ठ होता है ॥ २७ ॥

अथ पुंवज्रलक्षणम्—

अष्टास्रं वाऽष्टफलकं षट्कोणमतिभासुरम् ।
अम्बुदेन्द्रधनुर्वारितरं पुंवज्रमुच्यते ॥ २८ ॥

जो हीरा आठकोण या आठ धार वाला हो अथवा छः कोणवाला हो और तेज युक्त तथा इन्द्र के धनुष के समान प्रकाशमान और लघु हो वह नर जाति का हीरा होता है ॥ २८ ॥

स्त्रीनपुंसकवज्रयोर्लक्षणानि—

तदेव चिपिटाकारं स्त्रीवज्रं वर्तुलायतम् ।
वर्तुलं कुण्ठकोणाग्रं किञ्चिद्गुरु नपुंसकम् ॥ २९ ॥

जो हीरा लम्बा, गोल और चपटा हो वह स्त्री जाति का है। जो हीरा गोल मुड़े कोण वाला और भारी हो वह नपुंसक जाति का होता है॥ २९॥

जातिभेदेनाधिकारीभेदकथनम्—

स्त्रीपुन्नपुंसकं वज्रं योज्यं स्त्रीपुन्नपुंसके।
व्यत्यासान्नैव फलदं पुंवज्रेण विना क्वचित्॥ ३०॥

जो पुरुष जाति का हीरा हो उसका पुरुष के औषधि के लिये प्रयोग करें और स्त्री जाति का हीरा स्त्री जाति के लिये और नपुंसक जाति के हीरे को नपुंसक जाति के मनुष्य के लिए औषधार्थ प्रयोग करना चाहिये। पुरुष जाति हीरे को छोड़कर अन्य जाति के हीरों का प्रयोग भिन्न २ जाति में करने से लाभ नहीं होता है॥ ३०॥

वर्णभेदेनाधिकारीभेदकथनम्—

श्वेतादिवर्णभेदेन तदेकैकं चतुर्विधम्।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रं स्वस्ववर्णफलप्रदम्॥ ३१॥
उत्तमोत्तमवर्णं हि नीचवर्णफलप्रदम्।
न्यायोऽयं भैरवेणोक्तो पदार्थेष्वखिलेष्वपि॥ ३२॥

प्रत्येक जाति का हीरा श्वेत, पीत, लाल, काला इन वर्ण भेदों से चार प्रकार का होता है और ये चारों वर्ण के हीरे क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार जातियों के कहलाते हैं। इनका उपयोग भी अपनी २ जाति में करना चाहिए। उत्तम वर्ण का हीरा नीच वर्ण के पुरुषों में प्रयोग करने से भी फलप्रद होता है किन्तु नीच वर्ण के हीरे को उत्तमवर्ण के पुरुषों में प्रयोग करने से निष्फल होता है। यह न्याय भैरव नाम के आचार्य के द्वारा सम्पूर्ण पदार्थों के विषय में बतलाया गया है॥ ३२॥

अथ वज्रगुणाः—

आयुष्प्रदं झटिति सद्गुणदं च वृष्यं
दोषत्रयप्रशमनं सकलामयघ्नम्।
सूतेन्द्रबन्धवधसद्गुणकृत्प्रदीपनं
मृत्युञ्जयं तदमृतोपममेव वज्रम्॥ ३३॥

हीरे के गुणः—यह आयु को बढ़ाता है, तत्काल ही शरीर में अनेक गुणों को

उत्पन्न करता है, वृष्य है, वात-पित्त और कफ की शान्ति करता है, समग्र रोगों का नाश करता है, हीरक भस्म पारद के बन्धन, मारण और उसके गुणों को बढ़ाती है, अग्नि को दीप्त करती है, हीरा मृत्यु को नष्ट करता है। यह एक प्रकार का अमृत ही है ॥ ३३ ॥

रत्नदोषाः—

ग्रासस्त्रासश्च बिन्दुश्च रेखा च जलगर्भता ।
सर्वरत्नेष्वमी पञ्च दोषाः साधारणा मताः ॥
क्षेत्रतोयभवा दोषा रत्नेषु न लगन्ति ते ॥ ३४ ॥

सब प्रकार के रत्नों में ग्रास, त्रास, बिन्दु, रेखा, जलगर्भता ये पांच दोष स्वाभाविक ही होते हैं, परन्तु खान और जल के दोष रत्नों में नहीं होते हैं ॥ ३४ ॥

अथ वज्रशोधनम्—

कुलत्थक्वाथके स्विन्नं कोद्रवक्वथितेन वा ।
एकयामावधि स्विन्नं वज्रं शुध्यति निश्चितम् ॥ ३५ ॥

हीरे को एक प्रहर तक दोलायन्त्र द्वारा कुलथी या कोदोधान के क्वाथ में स्वेदन करने से वह शुद्ध हो जाता है ॥ ३५ ॥

अथ वज्रमारणम्—

वज्रं मत्कुणरक्तेन चतुर्वारं विभावितम् ।
सुगन्धिमूषिकामांसैर्वर्तितैः परिवेष्ट्य च ॥ ३६ ॥
पुटेत्पुटैर्वराहाख्यैस्त्रिंशद्वारं ततः परम् ।
ध्मात्वा ध्मात्वा शतं वारान्कुलत्थक्वाथके क्षिपेत् ।
अन्यैरुक्तःशतं वारान्कर्तव्योऽयं विधिः क्रमात् ॥ ३७ ॥

शुद्ध हीरे को खटमल के रक्त से चार वार भावित कर छछूंदर के मांस में लपेट कर मूषा में बन्दकर ऊपर से कपड़ मिट्टी कर वाराह पुट की विधि से ३० पुट देवें पश्चात् पुट से निकाल कर अग्नि में प्रतप्त कर कुलत्थ के काढ़े में १०० वार बुझावें। कुछ लोगों का मत है कि मत्कुण रक्त की भावना से लेकर प्रतप्त कर कुलत्थ क्वाथ में बुझाने तक जो विधि है उसे क्रम से सौ वार करना चाहिए॥ ३७॥

मतान्तरेण मारणम्—

कुलत्थक्वाथसंयुक्तलकुचद्रवपिष्टया ।

शिलया लिप्तमूषायां वज्रं क्षिप्त्वा निरुध्य च ॥ ३८ ॥
अष्टवारं पुटेत्सम्यग्विशुष्कैश्च वनोत्पलैः ।
शतवारं ततो ध्मात्वा निक्षिप्तं शुद्धपारदे ॥
निश्चितं म्रियते वज्रं भस्म वारितरं भवेत् ॥ ३९ ॥
सत्यवाक् सोमसेनानिरेतद्वज्रस्य मारणम् ।
दृष्टप्रत्ययसंयुक्तमुक्तवान् रसकौतुकी ॥ ४० ॥

अथवा कुलत्थ क्वाथ और बड़हल के फलों के रस में मनःशिला को घोटकर पिष्टि बनालें, पश्चात् उस पिष्टि से मूषा को भीतर से लिप्तकर उसमें हीरे को रख कर मूषा का मुख बन्द कर के सुखा कर जंगली कण्डों की अग्नि में पुट देना चाहिए। इस तरह आठ पुट देकर हीरे को निकाल कर प्रतप्त करके शुद्ध पारद में १०० बार बुझाने से निश्चय ही वज्र की जल में तैरने लायक भस्म हो जाती है। यह हीरे की मारणविधि सत्य बोलने वाले और प्रत्यक्ष अनुभवी, रसक्रिया कौतुकी सोमसेनानी ने कही है ॥ ३८ ॥

मतान्तरेण मारणम्

विलिप्तं मत्कुणस्यास्रैः सप्तवारं विशोषितम् ।
कासमर्दरसापूर्णे लोहपात्रे निवेशितम् ॥ ४१ ॥
सप्तवारं परिध्मातं वज्रभस्म भवेत्खलु ।
ब्रह्मज्योतिर्मुनीन्द्रेण क्रमोऽयं परिकीर्तितः ॥ ४२ ॥
नीलज्योतिर्लताकन्दे घृष्टं घर्मे विशोषितम् ।
वज्रं भस्मत्वमायाति कर्मवज्ज्ञानवह्निना ॥ ४३ ॥

अथवा सात वार हीरे को खट्मल के रुधिर से लिप्तकर सुखा लें, पश्चात् हीरे को अत्यन्त तप्त कर कसौंदी के रस से पूर्ण लौहपात्र में बुझाना चाहिए। इस तरह सात वार तप्त कर बुझाने से हीरे की भस्म हो जाती है यह विधि ब्रह्मज्योति नाम के मुनियों के स्वामी ने कही है। अथवा केवल नीलापराजिता या ज्योतिष्मती या क्षीरकाकोली के कन्द के साथ हीरे को घोट कर धूप में सुखाने से जिस प्रकार सत्यज्ञान रूप वन्हि से कर्म नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार हीरे की भस्म हो जाती है, ॥ ४१–४३ ॥

मतान्तरेण मारणम्—

मदनस्य फलोद्भतरसेन क्षोणिनागकैः ।
कृतकल्केन संलिप्य पुटेद्विंशतिवारकम् ॥
वज्रचूर्णं भवेद्वर्य्यं योजयेच्च रसादिषु ॥ ४४ ॥
तद्वज्रं चूर्णयित्वाथ किञ्चिट्टङ्कणसंयुतम् ।
खरभूनागसत्त्वेन विंशेनावर्तयेद्ध्रुवम् ॥
तुल्यस्वर्णेन तद्ध्मातं योजनीयं रसादिषु ॥ ४५ ॥

अथवा मैन फल के रस में केंचुओं को पीसकर उनका हीरे पर लेपकर पुट देना चाहिए। इस तरह २० पुट देने से रसादि कार्यों में उपयोग करने लायक श्रेष्ठ भस्म हो जाती है। इस हीरक भस्म में थोड़ा सुहागा और बीसवें भाग की मात्रा में केंचुओं का सत्त्व मिलाकर घोट लें, फिर समान भाग सुवर्ण मिलाकर मूषा यन्त्र में फूंकने से हीरे का उत्तम रस तैय्यार हो जाता है, इसका रसादि कार्यों में प्रयोग करना चाहिए ॥ ३४–४५ ॥

अथ प्रयोगविशेषेण गुणविशेषकथनम्—

त्रिगुणेन रसेनैव सम्मर्द्य गुटिकीकृतम् ।
मुखे धृतं करोत्याशु चलद्दन्तविबन्धनम् ॥ ४६ ॥

हीरे की भस्म में त्रिगुण शुद्ध पारद मिलाकर घोट लें, फिर उसकी गोली वनाकर मुख में धारण करने से हिलते हुए दांत मजबूत हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

अथ वज्ररसायनम्—

त्रिंशद्भागमितं हि वज्रभसितं स्वर्णं कलाभागिकं ।
तारं चाष्टगुणं सिताऽमृतवरं रुद्रांशकं चाभ्रकम् ।
पादांशं खलु ताप्यकं वसुगुणं वैक्रान्तकं षड्गुणं
भागोऽप्युक्तरसे रसोऽयमुदितः षाड्गुण्यसंसिद्धये ॥ ४७ ॥

इति वज्राधिकारः,

३० भाग हीरे की भस्म, १६ भाग सुवर्णभस्म, ८ भाग चांदीभस्म, ११ भाग शुद्ध मीठा विष या श्वेत पारद भस्म, ४ भाग अभ्रकभस्म, ८ भाग सुवर्णमाक्षिक भस्म और ६ भाग वैक्रान्त भस्म इन सबको खरल में कसोञ्जी आदि भेषज रसों के साथ घोट कर मात्रापूर्वक सेवन करने से षाड्गुण्य सिद्धि प्राप्त होती है ॥४७॥

अथ नीलनिरूपणम्-नीलभेदाः—

जलनीलेन्द्रनीलं च शक्रनीलं तयोर्वरम् ॥ ४८ ॥

नीलम के जलनील और इन्द्रनील ये दो भेद हैं इन दोनों में इन्द्रनील उत्तम होती है, ॥ ४८ ॥

जलशक्रनीलयोःस्वरूपम्—

श्वैत्यगर्भितनीलाभं लघु तज्जलनीलकम् ।
कार्ष्ण्यगर्भितनीलाभं सभारं शक्रनीलकम ॥ ४९ ॥

जो नील बीच में श्वेत हो और बाहर से नीलवर्ण युक्त हो और हलकी हो वह जलनील कहलाती है और जो मध्य में काले रङ्ग की हो और बाहर से अत्यन्त नील वर्ण युक्त हो तथा भारी हो वह इन्द्रनील कहलाती है ॥ ४९ ॥

श्रेष्ठनीललक्षणम्—

एकच्छायं गुरु स्निग्धं स्वच्छ पिण्डितविग्रहम् ।
मृदु मध्ये लसज्ज्योतिः सप्तधा नीलमुत्तमम् ॥ ५० ॥

जो नील एक सी छायावाली या अपने में अन्य वस्तु का प्रतिविम्ब न बना सके, भारी, स्निग्ध, स्वच्छ, आकार में पिण्डस्वरूप हो और मृदु तथा दीप्त तेज युक्त इन सात लक्षणों से युक्त हो वह इन्द्रनील श्रेष्ठ है ॥ ५० ॥

श्रेष्ठनीललक्षणम्—

कोमलं विहितं रूक्षं निर्भारं रक्तगन्धि च ।
चिपिटाभं ससूक्ष्मं च जलनीलं हि सप्तधा ॥ ५१ ॥

जो नील कोमल, रुक्ष, भार रहित, लालवर्णयुक्त या रक्त की गन्ध आती हो, चपटी हो तथा अत्यन्त सूक्ष्म हो, तथा आधी में एक रङ्ग और आधी में अन्य रङ्ग हो, इस तरह सात लक्षण जिसमें हों वह जलनील कहलाती है ॥ ५१ ॥

अथ गुणाः—

श्वासकासहरं वृष्यं त्रिदोषघ्नं सुदीपनम् ।
विषमज्वरदुर्नामपापघ्नं नीलमीरितम् ॥ ५२ ॥

नीलम—श्वास, कास, त्रिदोष, विषमज्वर और अर्श को नष्ट करती है तथा

---

४७ वें श्लोक में कहे हुए षड्गुण—

गुणाः-विद्या वितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परताक्रिया ।
यस्यैते षड्गुणास्तस्य न साध्यमति वर्तते ॥ इति चरकः

वृष्य और अग्निदीपक है। नील को शरीर में धारण करने से पाप भी नष्ट होते हैं॥५२॥

अथ गोमेदः—गोमेदनिरुक्तिः—

गोमेदः समरागत्वाद्गोमेदं रत्नमुच्यते ॥ ५३ ॥

गायके भेद के समान वर्ण होने से या रत्नों के समान वर्ण होने से गोमेद को गोमेदरत्न कहते हैं ॥ ५३ ॥

प्रशस्तगोमेदलक्षणम्—

सुस्वच्छगोजलच्छायं स्वच्छं स्निग्धं समं गुरु ।
निर्दलं मसृणं दीप्तं गोमेदं शुभमष्टधा ॥ ५४ ॥

जो अत्यन्त स्वच्छ और गोमूत्र के समान कान्ति युक्त हो, स्निग्ध तथा समानाकार हो, पत्ररचना रहित, मसृण, तोल में भारी तथा प्रकाशमान हो इस तरह आठ लक्षणों वाली गोमेद शुभ होती है ॥ ५४ ॥

हेयगोमेदलक्षणम्—

विच्छायं लघु रूक्षाङ्गं चिपिटं पटलान्वितम् ।
निष्प्रभं पीतकाचाभं गोमेदं न शुभावहम् ॥ ५५ ॥

जो गोमेद तेज रहित, लघु, स्पर्श में रूक्ष, चिपटाकार, पत्र रचना युक्त, प्रभारहित और पीले काच के समान हो वह अशुभ है ॥ ५५ ॥

अथ गुणाः—

गोमेदं कफपित्तघ्नं क्षयपाण्डुक्षयङ्करम् ।
दीपनं पाचनं रुच्यं त्वच्यं बुद्धिप्रबोधनम् ॥ ५६ ॥

गोमेद कफ, पित्त, पाण्डु, तथा क्षय को नष्ट करती है और दीपन, पाचन, रुचिवर्द्धक, बुद्धिप्रबोधक तथा चर्म हितकर है ॥ ५६ ॥

अथ क्षेपकश्लोकाः—

रत्नमारणनिषेधः—

रत्नानां शोधनं श्रेष्ठं मारणं न गुणप्रदम् ।
भस्मना वीर्यहानिः स्यात्तस्मात्तानि च शोधयेत् ॥ १ ॥

कुछ विद्वानों का मत है कि रत्नों का शोधन कर गुलाब पुष्पों के स्वरस (गुलाबजल) में घोट कर पिष्टि बनाकर प्रयोग करना चाहिए । इनकी भस्म करने से विशेष लाभ नहीं होता है अपि तु इन की भस्म बनाने से इन के प्रभाव की हानि होती है ॥ १ ॥

रत्नप्रयोगः—

रसे रसायने दाने धारणे देवतार्चने।
सुलक्ष्याणि सुजातीनि सर्वाण्युक्तानि शोधयेत्॥ २॥

रत्नों का प्रयोग रस, रसायन, दान, धारण, देवताओं की पूजन में श्रेष्ठजाति और शुभलक्षणों वाले रत्नों का शोधन कर प्रयोग करना चाहिये॥ २॥

रत्नानां साधारणशोधनम्—

शुद्धिं चरन्ति रत्नानि निम्बवम्बुनि तुषाम्बुनि।
विशुध्यन्ति त्रिदिवसैर्विधृतानि च सर्वशः॥ ३॥

प्रायः सर्व प्रकार के रत्नों को निम्बू के स्वरस या काञ्जी में तीन दिन तक भींगों देने से वे अच्छी तरह शुद्ध हो जाते हैं॥ ३॥

अथ वैदूर्यम्—श्रेष्ठवैदूर्यलक्षणम्—

वैदूर्यं श्यामशुभ्राभं समं स्वच्छं गुरु स्फुटम्।
अभ्रशुभ्रोत्तरीयेण गर्भितं शुभमीरितम्॥ ५७॥

जो वैदूर्य्यमणि कालापन लिये हुए श्वेत, समानाकार, निर्मल, तौल में भारी, तेज युक्त और जिसके भीतर श्वेतरंग की रेखाएं हो वह उत्तम होती है॥५७॥

हेयवैदूर्यलक्षणम्—

श्यामं तोयसमच्छायं चिपिटं लघुकर्कशम्।
रक्तगर्भोत्तरीयं च वैदूर्यं नैव शस्यते॥ ५८॥

जो वैदूर्य काली, जल के समान छाया वाली (प्रभाहीन), चिपटी, वजन रहित, स्पर्श में खुरदरी और मध्य में जिसके लाल रेखाएं हो वह अशुभ है॥५८॥

अथ गुणाः—

वैदूर्यं रक्तपित्तघ्नं प्रज्ञायुर्बलवर्धनम्।
पित्तप्रधानरोगघ्नं दीपनं मलमोचनम्॥ ५९॥

वैदूर्य्यमणि रक्तपित्त और पित्त के प्रधान (मुख्य) रोगों (अम्लपित्त) को शान्त करती है। बुद्धि, आयु और बल को बढ़ाती है, मलावरोध को नष्ट करती है तथा पाचकाग्नि को दीप्त करती है॥ ५९॥

अथ रत्नशुद्धिः—

शुद्धयत्यम्लेन माणिक्यं जयन्त्या मौक्तिकं तथा।

विद्रुमं क्षारवर्गेण तार्क्ष्यं गोदुग्धकैस्तथा ॥ ६० ॥
पुष्परागं च सन्धानैः कुलत्थक्वाथसंयुतैः ।
तन्दुलीयजलैर्वज्रं नीलं नीलीरसेन च ।
रोचनाभिश्च गोमेदं वैदूर्यं त्रिफलाजलैः ॥ ६१ ॥

माणिक्य अम्ल(१)वर्ग के द्रव्यों के रस से, मोती जयन्तीपत्र स्वरस से, प्रवाल क्षार(२)वर्ग के पदार्थों से, पन्ना गोदुग्ध से, पुष्पराग कुलत्थ क्वाथमिश्रित काञ्जी से, हीरा कांटेदार चौलाई के रस से, नीलम नीलवृक्ष (नीलापराजिता) के रस से, गोमेद गोरोचन से, वैदूर्य्य त्रिफला के क्वाथ से, एक प्रहर तक दोलायन्त्र द्वारा पकाने से शुद्ध होता है ॥ ६०–६१ ॥

अथ रत्नभस्मक्रमः—

लकुचद्रावसंपिष्टैः शिलागन्धकतालकैः ।
वज्रं विनान्यरत्नानि म्रियन्तेऽष्टपुटैः खलु ॥ ६२ ॥

हीरे को छोड़कर शेष समग्र रत्नों में से प्रत्येक को समान मनःशिला, शुद्ध गंधक और हरताल के साथ मिलाकर बड़हल के रस से घोट कर मूषा में बन्द कर आठ वार फूंकने से भस्म हो जाती है ॥ ६२ ॥

अथ रत्नानां द्रावणम्—

रामठं पञ्चलवणं क्षाराणां त्रितयं तथा ।
मांसद्रवोऽम्लवेतश्च चूल्लिकालवणं तथा ॥ ६३ ॥
स्थूलं कुम्भीफलं पक्कं तथा ज्वालामुखी शुभा ।
द्रवन्ती च रुदन्ती च पयस्या चित्रमूलकम् ॥ ६४ ॥
दुग्धं स्नुह्यास्तथाऽर्कस्य सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः ।

---

(१) अम्लवेतसजम्बीरलुङ्गाम्लचणकाम्लकाः ।
नागरङ्गं तिन्तिड़ी च चिञ्चापत्रञ्च निम्बुकम् ॥
चाङ्गेरी दाड़िमञ्चैव करमर्दं तथैव च ।
एष चाम्लगणः प्रोक्तो वेतसाम्लसमायुतः ॥ १ ॥

(२) सुधापलाशशिखरीचिञ्चार्कतिलनालजाः ।
स्वर्जिका यावशूकश्च क्षाराष्टकमुदाहृतम् ॥ २ ॥

गोलं विधाय तन्मध्ये प्रक्षिपेत्तदनन्तरम् ॥ ६५ ॥
गुणवन्नवरत्नानि जातिमन्ति शुभानि च।
भूर्जे तं गोलकं कृत्वा सूत्रेणावेष्ट्य यत्नतः ॥ ६६ ॥
पुनर्वस्त्रेण संवेष्ट्य दोलायन्त्रे निधाय च।
सर्वाम्लयुक्तसन्धानपरिपूर्णघटोदरे ॥ ६७ ॥
अहोरात्रत्रयं यावत्स्वेदयेत्तीव्रवह्निना।
तस्मादाहृत्य संक्षाल्य रत्नजां द्रुतिमाहरेत्।
रत्नतुल्यप्रभा लघ्वी देहलोहकरी शुभा ॥ ६८ ॥

हींग, पाँचो (१)लवण (सैन्धव, सामुद्र, विड़, सौवर्चल, रोमक) तीनों (२)क्षार, (सज्जीखार, यवक्षार, सुहागा) मांसद्रव=मांसरस या अम्लवेत का भेद और अम्लवेत, नौसादर, कायफल या पक्कजैपालबीज, उत्तम कलिहारी, गोरोचन, मूषाकानी या चीरितपत्र की दन्ती, रुदन्ती, दुग्धी, चित्रकजड़, सेंहुड़ और मदार का दुग्ध इन सबको घोट कर गोला बना लेवें, फिर उस गोले में जिस रत्न की द्रुति करना हो उसको (जो कि शुभ जाति का हो, नवीन हो) रख कर बन्द कर दें, फिर गोले को भोज पत्र में रखकर धागे से अच्छी तरह बांधकर और फिर ऊपर से वस्त्र लपेटकर दोला-यन्त्र की विधि से सर्व प्रकार के अम्लवर्ग के पदार्थों के साथ तीन रात दिन तक तीव्र अग्नि से स्वेदन करें। चौथे दिन पोटली को यन्त्र से बाहर निकाल कर धो डालें और उसमें से रत्न की द्रुति को ग्रहण करें। यह रत्नद्रुति रत्नों के समान तेज वाली, लघु और शरीर की सिद्धि करने वाली तथा शुभ है ॥ ६३-६८ ॥

अथ मुक्काद्रावणे विशेषक्रमः—

मुक्काचूर्णं तु सप्ताहं वेतसाम्लेन मर्दितम्।
जम्बीरोदरमध्ये तु धान्यराशौ विनिक्षिपेत्।

---

(१) सैन्धवञ्चाथ सामुद्रं विड़ं सौवर्चलं तथा।
रोमकञ्चेति विज्ञेयं बुधैर्लवणपञ्चकम् ॥

(२) स्वर्जिजक्षारो यवक्षारः क्षारद्वयमुदाहृतम्।
सौभाग्येन समायुक्तं क्षारत्रिकमुदाहृतम् ॥

सप्ताहादुद्धृतं चैव पुटं दत्वा द्रुतिं हरेत् ॥ ६९ ॥

मोती चूर्ण को सात दिन तक अम्लवेत के रस से घोटकर गोला बनाकर बड़े निम्बू के बीच में चीर कर रख दें, फिर उस निम्बू को डोरे से बांधकर धान के ढेर में गाड़ दें, सात दिन के बाद जम्बीर को निकाल कर मूषायन्त्र में बन्द करके गजपुट दे देवें। फिर द्रुति ग्रहण करें ॥ ६९ ॥

वज्रद्रावणविशेषविधिः—

वज्रवल्यन्तरस्थं च कृत्वा वज्रं निरोधयेत् ।
अम्लभाण्डगतं स्वेद्यं सप्ताहाद्द्रवतां व्रजेत् ॥ ७० ॥

शुद्ध हीरे को अस्थिसंहारी (हड़जोड़) के जड़के बीच में गढा (खात)कर रख दें और डोरे से अच्छी प्रकार बन्द कर दें, और दोला यन्त्र में अम्लवर्ग के पदार्थों का रस भरकर सात दिन तक स्वेदन करें तो हीरे का द्रव हो जाता है ॥ ७० ॥

अथ वैक्रान्तद्रावणे विशेषक्रमः—

श्वेतवर्णं तु वैक्रान्तमम्लवेतसभावितम् ।
सप्ताहान्नात्र सन्देहः खरघर्मे द्रवत्यलम् ॥ ७१ ॥

श्वेत वैक्रान्त के चूर्ण को अम्लवेत के रस की भावना देकर घोट कर तीव्र धूप में सुखावें। इस तरह सात दिन भावना देकर सुखाने से वैक्रान्त की द्रुति हो जाती है ॥ ७१ ॥

अन्यविधिः—

केतकीस्वरसं ग्राह्यं सैन्धवं स्वर्णपुष्पिका ।
इन्द्रगोपकसंयुक्तं सर्वं भाण्डे विनिक्षिपेत् ।
सप्ताहं स्वेदयेत्तास्मन्वैक्रान्तं द्रवतां व्रजेत् ॥ ७२ ॥

अथवा केवड़े का स्वरस, सेंधानीमक, स्वर्ण क्षीरी या कटेरी और इन्द्रगोप (वीर बहूटी) इन को पीस कर भाण्ड में भर दें फिर उसमें वैक्रान्त डालकर सात दिन तक स्वेदन करने से वैक्रान्त की द्रुति हो जाती है ॥ ७२ ॥

अन्यविधिः—

लोहाष्टके तथा वज्रे वापनात्स्वेदनाद्द्रुतिः ।
जायते नात्र सन्देहो योगस्यास्य प्रभावतः ॥ ७३ ॥
कुरुते योगराजोऽयं रत्नानां द्रावणं परम् ॥ ७४ ॥

इस उपर्युक्त द्रुति को लोहाष्टक (स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, वङ्ग, सीस, पित्तल, कान्तलौह, तीक्ष्ण लोह) में या हीरे की भस्म में डालकर स्वेदन करने से उन लोहों का तथा हीरे का द्रवण हो जाता है । यह इस वैक्रान्त द्रुति का प्रभाव है और यह द्रुति अन्य रत्नों का भी द्रवण कर देती है ॥ ७३–७४ ॥

अथ राजावर्तः—उत्तममध्यमराजावर्तलक्षणम्—

राजावर्तोऽल्परक्तोरुर्नीलिकामिश्रितप्रभः ।
गुरुश्च मसृणः श्रेष्ठस्तदन्यो मध्यमः स्मृतः ॥ ७५ ॥

राजावर्त कुछ लाल और अधिक नीले रंग का होता है जो राजावर्त वजन में भारी और कोमल या स्निग्ध हो वह श्रेष्ठ है विपरीत मध्यम होता है ॥ ७५ ॥

अथ गुणाः—

प्रमेहक्षयदुर्नामपाण्डुश्लेष्मानिलापहः ।
दीपनः पाचनो वृष्यो राजावर्तो रसायनः ॥ ७६ ॥

यह बीस प्रकार के प्रमेह, क्षय, अर्श, पाण्डु और वात तथा कफ के विकारों को नष्ट करता है तथा दीपन, पाचन, वृष्य और रसायन होता है ॥ ७६ ॥

राजावर्तादिसामान्यशोधनम्—

निम्बुद्रवैः सगोमूत्रैः सक्षारैः स्वेदिता खलु ।
द्वित्रिवारेण शुद्ध्यन्ति राजावर्तादिधातवः ॥ ७७ ॥

निम्बूके रस में यवक्षार और गोमूत्र मिलाकर दोलायन्त्र द्वारा राजावर्त तथा अन्यधातुओं को दो या तीन वार एक २ प्रहर तक स्वेदन करने से वे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ७७ ॥

अथ राजावर्तशोधनम—

शिरीषपुष्पार्द्ररसैः राजावर्तं विशोधयेत् ॥ ७८ ॥

राजावर्त शिरीषपुष्प और अद्रक के स्वरस में स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है ॥ ७८ ॥

अथ राजावर्तमारणम्—

लुङ्गाम्बुगन्धकोपेतो राजावर्तो विचूर्णितः ।
पुटनात्सप्तवारेण राजावर्तो मृतो भवेत् ॥ ७९ ॥

राजावर्तभस्म–राजावर्त को समान भाग गन्धक के साथ निम्बू के रस से घोटकर शराव में सम्पुटकर सात वार पुट देने से मृत हो जाता है ॥ ७९ ॥

अथ सत्त्वपातनम्—

राजावर्तस्य चूर्णन्तु कुनटी घृतमिश्रितम् ।
विपचेदायसे पात्रे महिषीक्षीरसंयुतम् ॥ ८० ॥
सौभाग्यपञ्चगव्येन पिण्डीबद्धन्तु जारयेत् ।
ध्मापितं खदिराङ्गारैः सत्त्वं मुञ्चति शोभनम् ॥ ८१ ॥

इति राजावर्ताधिकारः ।

शुद्ध राजावर्त का चूर्ण कर समान मनःशिला मिला कर घृत के साथ घोट ले, पश्चात् लौहे के पात्र (कड़ाही) में भैंस का दुग्ध डालकर राजावर्त को पकाना चाहिए । दुग्ध के अत्यन्त गाढ़ा होने के बाद उसमें सुहागा और पञ्चगव्य मिलाकर द्रवांश का जारण कर गोला बना लेवे पश्चात् खदिर (खैर) के कोयलों की अग्नि में फूंकने से सत्त्व निकल आता है ॥ ८०–८१ ॥

अथ द्रुतीनां दीर्घकालरक्षणोपायः—

कुसुम्भतैलमध्ये तु संस्थाप्या द्रुतयः पृथक् ।
तिष्ठन्ति चिरकालं तु प्राप्ते कार्यं नियोजयेत् ॥ ८२ ॥

अथ द्रुतीनां दीर्घकालरक्षणोपायः–सब द्रुतियों को पृथक् २ काच के पात्र में कुसुम्भ का तैल डाल कर रखने से वे बहुत समय तक गुणहीन नहीं होती हैं । समय पर औषधिकार्य में उनका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८२ ॥

रत्नधारणगुणाः—

सूर्यादिग्रहनिग्रहापहरणं दीर्घायुरारोग्यदं
सौभाग्योदयभाग्यवश्यविभवोत्साहप्रदं धैर्यकृत् ।
दुश्छायाचलधूलिसंगतिभवाऽलक्ष्मीहरं सर्वदा
रत्नानां परिधारणं निगदितं भूतादिभिर्नाशनम् ॥ ८३ ॥

उपर्युक्त नवरत्नों की ग्रहों के नामानुसार अङ्गूठी बनाकर धारण करने से उन ग्रहों से उत्पन्न बाधाएं दूर होती हैं और दीर्घायु तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है तथा सौभाग्य (स्त्रीप्रियत्व) और भाग्य का उदय होता है, वशीकरण सिद्धि की प्राप्ति होती है, ऐश्वर्य और उत्साह बढ़ता है, धैर्य्य प्राप्त होता है, तथा भूतप्रेतों की अशुभछाया, वायु से बहने वाली धूलि समूह से उत्पन्न अशोभा, और भूत प्रेतों की बाधा आदि उपद्रव दूर होते हैं ॥ ८३ ॥

अथ गौरिकम्–गैरिकस्य शोधनं सत्त्वपातनञ्च—

अनेन क्रमयोगेन गैरिकं विमलं भवेत्।
क्रमात् पीतश्च रक्तश्च सत्त्वं पतति शोधनम् ॥ ८४ ॥

इति श्री वैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये रत्नानां शुद्ध्यादिनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इसी तरह गैरिक की शुद्धि और सत्त्वपातन भी होता है। पाषाणगैरिक का सत्त्व पीतवर्ण और स्वर्ण गैरिक का सत्त्व लाल वर्ण का होता है ॥ ८४ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्य–भाषाटीकायामुपरस-साधारणरसनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः।

अथ पञ्चमोऽध्यायः।

अथ लोहानि–लोहजातिपरिगणनम्—

शुद्धं लोहं कनकरजतं भानुलोहाश्मसारम्।
पूतीलोहं द्वितयमुदितं नागवङ्गाभिधानम्।
मिश्रं लोहं त्रितयमुदितं पित्तलं कांस्यवर्तम्।
धातुर्लोहे लुह इति मतः सोऽप्यनेकार्थवाची ॥ १ ॥

जिन खनिज धातुओं के लिये लोह शब्द का प्रयोग होता है वे लोह धातु तीन प्रकार की होती हैं, जैसे १ शुद्ध लोह, २ पूति लोह, ३ मिश्रलोह, सोना, चांदी, ताम्बा और लोहा (मुण्ड, तीक्ष्ण, कान्त) ये चार शुद्ध लोह हैं और नाग (सीस), वङ्ग (राङ्गा) ये दोनों पूती लोह हैं और पित्तल, कासां, भरत या

रुक्मलोह ये तीनों तृतीय जाति के मिश्र लोह हैं। लुह धातु को लोह अर्थ (कनकरजत के लिये) में या आकर्षण अर्थ में प्रयोग करते हैं क्योंकि सप्त या अष्ट लोह (कनकादिक) भी दोषों को खींच कर निकाल देते हैं और लोह शब्द भी अगुरूलोहित सुवर्णादि अनेक अर्थों का वाचक है ॥ १ ॥

अथ स्वर्णम्–स्वर्णभेदाः—

प्राकृतं सहजं वह्निसम्भूतं खनिसम्भवम् ।
रसेंद्रवेधसञ्जातं स्वर्णं पञ्चविधं स्मृतम् ॥ २ ॥

सुवर्ण १ प्राकृत, २ सहज, ३ वन्हि से उत्पन्न, ४ खनिज से उत्पन्न, रसेन्द्र के वेध (खेदनादिक) से उत्पन्न, इस प्रकार यह पाँच तरह का होता है ॥ २ ॥

अथ प्राकृतस्वर्णस्योत्पत्तिः—

ब्रह्माण्डं संवृतं येन रजोगुणभुवा खलु ।
तत्प्राकृतमिति प्रोक्तं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ३ ॥

रजोगुण से उत्पन्न हुए जिस सुवर्ण से ब्रह्माजी का आधारभूत स्वर्णमय अण्ड(१)या ब्रह्माण्ड (संसार) पैदा हुआ वह प्राकृत सुवर्ण है और वह देवताओं के लिये भी दुर्लभ है ॥ ३ ॥

अथ सहजस्वर्णोत्पत्तिः—

ब्रह्मा येनाऽवृता जातः सुवर्णेन जरायुणा ।
तन्मेरुरूपतां यातं सुवर्णं सहजं हि तत् ॥ ४ ॥

जिस सुवर्ण की जरायु से वेष्टित ब्रह्माजी उत्पन्न हुये वह सुवर्ण मेरूपर्वत के रूप में परिणत हुआ, उसी को स्वाभाविक (सहज) सुवर्ण कहते हैं ॥ ४ ॥

वह्निजस्वर्णोत्पत्तिः—

विसृष्टमग्निना शर्वं तेजः पीतं सुदुःसहम् ।
अभूत्सर्वसमुद्दिष्टं सुवर्णं वाह्नसम्भवम् ॥ ५ ॥

---

(१) सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अत एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥

महादेवजी के वीर्य को अग्निदेवता ने पान कर असह्य होने के कारण बाहर निकाल दिया वही वन्हि से उत्पन्न सुवर्ण कहलाया ॥ ५ ॥

स्वर्णत्रयगुणाः—

एतत्स्वर्णत्रयं दिव्यं वर्णैः षोडशभिर्युतम् ।
धारणादेव तत्कुर्याच्छरीरमजरामरम् ॥ ६ ॥

ये तीनों प्रकार के सुवर्ण दिव्य शक्तियों से युक्त और सोलह कलाओं से सम्पन्न हैं, इनके केवल धारण करने से शरीर अजर अमर हो जाता है ॥ ६ ॥

खनिजस्वर्णोत्पत्तिस्तल्लक्षणगुणाश्च—

तत्र तत्र गिरीणां हि जातं खनिषु यद्भवेत् ।
तच्चतुर्दशवर्णाढ्यं भक्षितं सर्वरोगहृत् ॥ ७ ॥

विन्ध्य सुमेरू हिमालयादि पर्वतों की खानों में उत्पन्न हुआ सुवर्ण खनिज सुवर्ण कहलाता है। वह चौदह कलाओं से युक्त होता है तथा सेवन करने से सब रोगों को नष्ट करता है ॥ ७ ॥

वेधजस्वर्णोत्पत्तिर्गुणाश्च—

रसेन्द्रवेधसम्भूतं तद्वेधजमुदाहृतम् ।
रसायनं महाश्रेष्ठं पवित्रं वेधजं हि तत् ॥ ८ ॥

पारद के वेधन कर्म से उत्पन्न सुवर्ण रसेन्द्रवेधसञ्जात सुवर्ण कहलाता है। यह रसायन है, औषध कर्म में उत्तम तथा पवित्र है ॥ ८ ॥

स्वर्णरौप्ययोस्सामान्यगुणाः—

आयुर्लक्ष्मीप्रभाधीस्मृतिकरमखिलव्याधिविध्वंसि पुण्यं
भूतावेशप्रशान्तिस्मरभरसुखदं सौख्यपुष्टिप्रकाशि ।
गाङ्गेयं चाथ रूप्यं गदहरमजराकारि मेहापहारी
क्षीणानां पुष्टिकारि स्फुटमतिकरणं वीर्यवृद्धिप्रकारि ॥ ९ ॥

यह स्वर्ण आयु, शोभा, कान्ति, बुद्धि और स्मृति को उत्पन्न करता है, सम्पूर्ण व्याधियों को नष्ट करता है, पवित्र है, भूत प्रेतों के आवेश को दूर करता है, भोग शक्ति को बढाता है, सौख्य और पुष्टि करता है। गाङ्गेय सुवर्ण की तरह चांदी भी रोगों को हरती है, शरीर को अजर (बुढापारहित) करती है और

प्रमेह को नष्ट करती है, क्षीण पुरुषों को पुष्ट करती है, बुद्धि को स्फुट करती है और वीर्य्य को बढाती है ॥ ९ ॥

स्वर्णगुणाः—

स्निग्धं मेध्यं विषगदहरं बृंहणं वृष्यमग्र्यं
यक्ष्मोन्मादप्रशमनपरं देहरोगप्रमाथि ।
मेधाबुद्धिस्मृतिसुखकरं सर्वदोषामयघ्नं
रुच्यं दीप्तिप्रशमितरुजं स्वादुपाकं सुवर्णम् ॥ १० ॥

सुवर्ण स्निग्ध, वृष्य, बृंहण, मेध्य है और विषबाधा को नष्ट करता है, वन्हि का दीपक, यक्ष्मा का नाशक और शरीर के रोगों का नाशक, मेधा, (स्मरण शक्ति) बुद्धि, स्मृति, सुख का उत्पादक सम्पूर्ण दोष और रोगों का नाशक, रुचिकारक है और वन्हि को दीप्तकर रोगों की शान्ति करता है तथा स्वादुपाक होता है ॥१०॥

अशोधितामारितस्वर्णदोषाः—

सौख्यं वीर्यं बलं हन्ति रोगवर्गं करोति च ।
अशुद्धममृतं स्वर्णं तस्माच्छुद्धं च मारयेत् ॥ ११ ॥

अशुद्ध और विना भस्म किया हुआ सुवर्ण सेवन करने से सौख्य, वीर्य और बल का नाश होता है तथा रोग समूह को उत्पन्न करता है इसलिये प्रथम शोधन कर भस्म करना चाहिए ॥ ११ ॥

स्वर्णशोधनम्—

कर्षप्रमाणं तु सुवर्णपत्रं शरावरुद्धं पटुधातुयुक्तम् ।
अङ्गारसंस्थं प्रहरार्धमानं ध्मातेन तत्स्यान्ननु पूर्णवर्णम् ॥ १२ ॥

एक कर्ष (एक तोला) सुवर्ण के पत्र (वर्क) में गन्धक या सेंधा नमक और गेरू समान भाग मिलाकर शराव में बन्दकर आधे प्रहर तक धोंकनी से तेज अग्नि में फूकने से सुवर्ण शुद्ध होकर श्रेष्ठ वर्ण का हो जाता है ॥ १२ ॥

लोहमारणार्थमुत्तमद्रव्यकथनम्—

लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसभस्मना ।
मूलीभिर्मध्यमं प्राहुः कनिष्ठं गन्धकादिभिः ।
अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम् ॥ १३ ॥

स्वर्णादि आठ प्रकार के लोहों का पारद भस्म के साथ मारण करना श्रेष्ठ है

और औषधिओं के साथ धातुओं का मारण मध्यम होता है तथा गन्धक मनः शिला आदि के साथ धातुओं (लोह) का मारण कनिष्ठ होता है और हरताल के साथ से मारण करने से लोहों में अवगुण उत्पन्न होते हैं ॥ १३ ॥

अथ स्वर्णमारणम्—

कृत्वा कण्टकवेध्यानि स्वर्णपत्राणि लेपयेत् ।
लुङ्गाम्बुभस्मसूतेन म्रियते दशभिः पुटैः ॥ १४ ॥

शुद्ध किये सोने के सूई से छेदन करने लायक पत्र बनाकर निम्बू के रस में घोटे हुए पारद का मर्दनविधि से उन पर लेप कर देना चाहिये। इस तरह दस पुट देने से भस्म हो जाती है ॥ १४ ॥

अन्यविधिः—

द्रुते विनिक्षिपेत्स्वर्णे लोहमानं मृतं रसम् ।
विचूर्ण्य लुङ्गतोयेन दरदेन समन्वितम् ॥
जायते कुङ्कुमच्छायं स्वर्णं द्वादशभिः पुटैः ॥ १५ ॥

अथवा स्वर्ण को पिघला कर समान पारे की भस्म मिलाकर बिजौरे निम्बू के रस से घोटकर स्वर्ण के समान हिङ्गुल मिलाकर घोटकर १२ पुट देने से स्वर्ण की केशर के समान लाल भस्म हो जाती है ॥ १५ ॥

अन्यविधिः—

हेम्नः पादं मृतं सूतं पिष्टमम्लेन केनचित् ।
पत्रे लिप्त्वा पुटैः पश्चादष्टभिर्म्रियते ध्रुवम् ॥ १६ ॥

अथवा सुवर्ण से चतुर्थांश पारद भस्म को किसी अम्ल में घोट कर सुवर्ण के पत्रों पर लेप कर दें, फिर पुट देवें। इस तरह आठ पुट देने से निश्चय ही सुवर्ण भस्म हो जाती है। प्रत्येक पुट में चतुर्थांश पारद भस्म डालनी चाहिये ॥ १६ ॥

स्वर्णद्रावणम्—

मण्डूकास्थिवसाटङ्कहयलालेन्द्रगोपकैः ।
प्रतिवापेन कनकं सुचिरं तिष्ठति द्रुतम् ॥ १७ ॥

सुवर्णद्रुतिः—सुवर्ण को गलाकर मेंढक की हड्डी का चूर्ण और चर्बी, सुहागा, घोड़े की लाला (लार), वीर बहूटी इनके साथ घोट कर फिर अग्नि पर फूंकने से सुवर्ण की बहुत समय तक ठहरने लायक द्रुति हो जाती है ॥ १७ ॥

अन्यविधिः—

चूर्णं सुरेन्द्रगोपानां देवदालीफलद्रवैः ।
भावितं सदृशं हेम करोति जलवद्द्रुतम् ॥ १८ ॥

अथवा इन्द्रगोप के चूर्ण को देवदाली (बन्दाल) के रस से भावित कर इसको सोने में मिलाकर फूंकने से वह जल के समान द्रुत हो जाता है ॥ १८ ॥

स्वर्णभस्मप्रयोगविधिः—

एतद्भस्म सुवर्णजं कटुघृतोपेतं द्विगुञ्जोन्मितं
लीढं हन्ति नृणां क्षयाग्निसदनं श्वासं च कासारुचिम् ।
ओजोधातुविवर्धनं बलकरं पाण्डूवामयध्वंसनं
पथ्यं सर्वविषापहं गरहरं दुष्टग्रहण्यादिनुत् ॥ १९ ॥

सुवर्णभस्मसेवनविधि—दो रत्ती सुवर्ण भस्म को त्रिकटु और घृत के साथ सेवन करने से मनुष्यों के श्वास, कास, अरुचि, क्षय, अग्निमांद्य, पाण्डु, सर्पविष बाधा, सर्वविषबाधा, दुष्ट ग्रहणी आदि अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं तथा ओज(१) बल और सप्त (२)धातुओं की वृद्धि होती है और यह अत्यन्त हितकर है ॥ १९ ॥

अशुद्धामारित स्वर्णदोषाः—

बलं च वीर्यं हरते नराणां रोगव्रजं कोपयतीव काये ।
असौख्यकारं च सदैव हेमापक्वं सदोषं मरणं करोति ॥२०॥

इति स्वर्णधिकारः—

अशुद्धस्वर्णदोषः—

अशुद्ध और उत्तमविधि से अपक्व सुवर्ण के सेवनकरने से मनुष्यों के बल

---

(१) हृदि तिष्ठति यच्छुद्धमीषद्रक्तं सपीतकम् ।
ओजः शरीरे सङ्ख्यातं तन्नाशान्ना विनश्यति ॥
अष्टबिन्दुप्रमाणं तदीषद्रक्तं सपीतकम् ।
अग्निषोमात्मकत्वेन द्विरूपं वर्णितञ्च तत् ॥
ओजश्च तेजोधातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम् ।
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबन्धनम् ॥

(२) रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ।

और वीर्य्य का हरण होता है, शरीर में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं तथा बेचैनी और मरण करता है ॥ २० ॥

अथ रजतम्—रजतभेदाः—

सहजं खनिसञ्जातं कृत्रिमं त्रिविधं मतम् ।
रजतं पूर्वपूर्वं हि स्वगुणैरुत्तरोत्तरम् ॥ २१ ॥

चान्दी सहज, खनिज और कृत्रिम भेद करके तीन तरह की होती है। तीनों में पूर्व पूर्व की चांदी अपने २ गुणों में उत्कृष्ट होती है ॥ २१ ॥

सहजरौप्योत्पत्तिर्गुणाश्च—

कैलासाद्यद्रिसम्भूतं सहजं रजतं भवेत् ।
तत्स्पृष्टं हि सकृद्व्याधिनाशनं देहिनां भवेत् ॥ २२ ॥

कैलासादि पर्वत में उत्पन्न होने वाली चान्दी सहज होती है। इसके स्पर्शमात्र से मनुष्यों की व्याधियां तुरन्त नष्ट हो जाती हैं ॥ २२ ॥

खनिजरौप्योत्पत्ति र्गुणाश्च—

हिमालयाद्रिकूटेषु यद्रूप्यं जायते हि तत् ।
खनिजं कथ्यते तज्ज्ञैः परमं हि रसायनम् ॥ २३ ॥

हिमालय आदि पर्वतों के शिखरों की खानों से उत्पन्न चान्दी को विद्वान् लोग खनिज चान्दी कहते हैं और वह उत्तम रसायन है ॥ २३ ॥

कृत्रिमरौप्योत्पत्तिर्गुणाश्च—

श्रीरामपादुकान्यस्तं वङ्गं यद्रूप्यतां गतम् ।
तत्पादरूप्यमित्युक्तं कृत्रिमं सर्वरोगनुत् ॥ २४ ॥

श्रीरामचन्द्रजी के चरणों के स्पर्श से जो वङ्ग चान्दी के रूप में परिणत हुआ उसको रामचन्द्रजी के चरण की कृत्रिम चान्दी कहते हैं। यह सर्वरोगों को नष्ट करती है॥ २४॥

उत्तमरौप्यलक्षणम्—

घनं स्वच्छं गुरु स्निग्धं दाहे छेदे सितं मृदु ।
शङ्खाभं मसृणं स्फोटरहितं रजतं शुभम् ॥ २५ ॥

श्रेष्ठ रजत के लक्षण–जो चान्दी वजनदार, स्वच्छ, भारी, स्निग्ध जलाने और काटने पर श्वेत, कोमल, मसृण, शङ्ख के समान और खातों से रहित हो वह औषधि में श्रेष्ठ है ॥ २५ ॥

निकृष्टरौप्यलक्षणम्—

दाहे रक्तं च पीतं च कृष्णं रूक्षं स्फुटं लघु ।
स्थूलाङ्गं कर्कशाङ्गं च रजतं त्याज्यमष्टधा ॥ २६ ॥

जो चान्दी तपाने से लाल, पीत और कृष्ण मालूम हो तथा रूक्ष, हलकी, खात युक्त, मोटे अङ्ग वाली और कठोर हो वह त्याज्य है ॥ २६ ॥

अथ रौप्यगुणाः—

रूप्यं विपाकमधुरं तुवराम्लसारं
शीतं सरं परमलेखनकं च रूप्यम् ।
स्निग्धं च वातकफजिज्जठराग्निदीपि
बल्यं परं स्थिरवयस्करणञ्च मेध्यम् ॥ २७ ॥

चांदी के गुण—

चांदी पाक में मधुर, कषाय, अम्लरस वाली और शीतल, दस्तावर, शरीर के भेद को नष्ट करने वाली, स्निग्ध वात और कफ के रोग को नष्ट करने वाली, जठराग्नि की दीपक, बलदायक, अत्यन्त बुद्धिवर्द्धक और अवस्था बढ़ाने वाली होती है ॥ २७ ॥

अथ गुणान्तरम्—

रौप्यं शीतं कषायाम्लं स्निग्धं वातहरं गुरु ।
रसायनविधानेन सर्वरोगापहारकम् ॥ २८ ॥

चान्दी शीतल, कषाय, अम्ल, स्निग्ध, वातहर, गुरू और रसायन विधि से सब रोगों का नाश करने वाली है ॥ २८ ॥

स्वर्णादिशोधनम्—

तले तक्रे गवां मूत्रे ह्यारनाले कुलत्थजे ।
क्रमान्निषेचयेत्तप्तं द्रावे द्रावे तु सप्तधा ॥
स्वर्णादिलोहपत्राणां शुद्धिरेषा प्रशस्यते ॥ २९ ॥

स्वर्णादि लोह पत्रों को प्रतप्त कर तिलतैल, मट्ठा, गोमूत्र, काञ्जी, कुलत्थक्काथ इन में से प्रत्येक में सात २ वार बुझाना चाहिए । इस तरह सोना और चान्दी के पत्रों की शुद्धि करना श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥

अथाशोधितमारितलोहस्य दोषाः—

आयुः शुक्रं बलं हन्ति तापविड्बन्धरोगकृत्।
अशुद्धं न मृतं तारं शुद्धं मार्यमतोबुधैः ॥ ३० ॥

अशुद्ध और भस्म न की हुई चान्दी अवस्था, बल तथा शुक्र को नष्ट करती है और मलावरोध, जलन आदि रोग पैदा करती है, इसलिये विद्वानों को चाहिये कि चांदी को शुद्ध कर भस्म करें ॥ ३० ॥

अथ रौप्यस्य विशेषशोधनम्—

नागेन टङ्कणेनैव वापितं शुद्धिमृच्छति।
तारं त्रिवारं निक्षिप्तं तैले ज्योतिष्मतीभवे ॥ ३१ ॥

चांदी को समान सीस भस्म और सुहागे के साथ पीसकर प्रतप्त कर के ज्योतिष्मती (मालकांगनी) के तैल में तीन वार बुझाने से इसकी शुद्धि होती है ॥३१॥

अन्यविधिः—

खर्परे भस्मचूर्णाभ्यां परितः पालिकां चरेत्।
तत्र रूप्यं विनिक्षिप्य समसीससमन्वितम् ॥ ३२ ॥
जातसीसक्षयं यावद्धमेत्तावत्पुनः पुनः।
इत्थं संशोधितं रूप्यं योजनीयं रसादिषु ॥ ३३ ॥

अथवा किसी मिट्टी के पात्र में भस्म (राख) और सुहागे के चूर्ण का आलवाल (क्यारी) बनाकर उसमें समान सीसभस्म और सुहागे के साथ पिसी हुई चांदी को रखकर धोंकनी से चांदी में सीसभस्म नहीं मिले तब तक धमन करना चाहिये इस तरह शुद्ध हुई चांदी का सब कार्यों में प्रयोग करना चाहिये ॥ ३२-३३ ॥

अथ रौप्यमारणम्—

लकुचद्रवसूताभ्यां तारपत्रं प्रलेपयेत्।
ऊर्ध्वाधो गन्धकं दत्त्वा मूषामध्ये निरुध्य च ॥ ३४ ॥
स्वेदयेद्वालुकायन्त्रे दिनमेकं दृढाग्निना।
स्वाङ्गशीतां च तां पिष्टिं साम्लतालेन मर्दिताम्।
पुटेद्द्वादशवाराणि भस्मीभवति रूप्यकम् ॥ ३५ ॥

बड़हल वृक्ष के फल के रस में पारद को घोटकर चांदी के पत्रों पर मर्दन-विधि से लेप कर के ऊपर और नीचे गन्धक का चूर्ण रखकर मूषा यन्त्र

में बन्दकर दें फ़िर कपड़मिट्टीकर वालुकायन्त्र द्वारा तीव्र अग्नि में एक दिन तक पकावें। स्वाङ्ग शीत होने पर चांदीके पत्रों को निकाल कर घोट लें फिर उसमें समान शुद्ध हरताल डालकर निम्बू के रस में घोट कर सम्पुट में रख फूंक दे, इस तरह १२ पुट देने से चांदी की भस्म हो जाती है ॥ ३४-३५ ॥

अन्यविधिः—

माक्षीकचूर्णलुङ्गाम्लमर्दितं पुटितं शनैः ।
त्रिंशद्वारेण तत्तारं भस्मसाज्जायतेतराम् ॥ ३६ ॥

अथवा चांदी का चूर्ण और समान शुद्ध सुवर्णमाक्षिक चूर्ण इन दोनों को निम्वू के रस में घोट कर सम्पुट कर के ३० पुट देने से उत्तम भस्म हो जाती है॥३६॥

रौप्यस्य निरुत्थभस्मीकरणम्—

भाव्यं ताप्यं स्नुहीक्षीरैस्तारपत्राणि लेपयेत् ।
मारयेत्पुटयोगेन निरुत्थं जायते ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

अथवा थूहर के दुग्ध से सोनामाखी को पीसकर चांदी के पत्रों पर लेप कर दें फिर पुट के विधान से फूंकने पर चांदी की निरुत्थ भस्म हो जाती है ॥३७॥

अन्यविधिः—

तारपत्रं चतुर्भागं भागैकं शुद्धतालकम् ।
मर्द्यं जम्बीरजद्रावैस्तारपत्राणि लेपयेत् ॥ ३८ ॥
शोधयेदन्धयन्त्रे च त्रिंशदुत्पलकैः पचेत् ।
चतुर्दशपुटैरेवं निरुत्थं जायते ध्रुवम् ॥ ३९ ॥

अथवा चार भाग चांदी के पत्रों पर एक भाग शुद्ध हरताल को जम्बीर के रस से घोट कर लेप कर दें, फिर उन्हें अन्धमूषा में रख कर तीस उपलों की आंच में पुट देवे, इस तरह १४ पुट देने से निश्चय ही चांदी की निरुत्थ भस्म हो जाती है ॥ ३८-३९ ॥

स्वर्णरौप्ययोर्द्रावणम्—

सप्तधा नरमूत्रेण भावयेद्देवदालिकाम् ।
तच्चूर्णवापमात्रेण द्रुतिः स्यात्स्वर्णतारयोः ॥ ४० ॥

सुवर्णरजतद्रुतिः—देवदाली (वन्दाल) को मनुष्य के मूत्र में सात वार घोट कर अग्नि में पिघले सुवर्ण या रजत के अन्दर डालने से दोनों की द्रुति हो जाती है ॥ ४० ॥

अथ रौप्यप्रयोगः—

भस्मीभूतं रजतममलं तत्समौ व्योमभानू
सर्वैस्तुल्यं त्रिकटु सवरं सारघाज्येन युक्तम् ॥
लीढं प्रातः क्षपयतितरां यक्ष्मपाण्डूदरार्शः
श्वासं कासं नयनजरुजः पित्तरोगानशेषान् ॥ ४१ ॥

इति रजताधिकारः।

रजतभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म इन तीनों को समान |समान भाग की मात्रा में लेकर तीनों के बराबर त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पिप्पल) का चूर्ण लेकर घोट लें, पश्चात् इस योग में से उचित मात्रा (दो रत्ती) लेकर शहद और घृत के साथ प्रातः सेवन करने से यक्ष्मा, पाण्डु, अर्श, श्वास, कास, नेत्रविकार। तथा समग्र पित्तजन्य रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

अथ ताम्रम्—

ताम्रभेदाः—

म्लेच्छं नेपालकं चेति तयोर्नैपालकं वरम्।
नेपालादन्यखन्युत्थं म्लेच्छमित्यभिधीयते ॥ ४२ ॥

ताम्र के म्लेच्छ और नेपाल ये दो भेद हैं। इन दोनों में नेपाल संज्ञक ताम्र श्रेष्ठ होता है। नेपाल देश की खानों के अतिरिक्त जिन खानों से ताम्र निकलता है वह म्लेच्छ कहलाता है ॥ ४२ ॥

अथ म्लेच्छताम्रस्य लक्षणम्—

सितकृष्णारुणच्छायमतिवामि कठोरकम्।
क्षालितं च पुनः कृष्णमेतन्म्लेच्छकताम्रकम् ॥ ४३ ॥

जो ताम्र श्वेत, कृष्ण तथा कुछ लाल हो और अत्यन्त वमन कारक तथा कठोर हो और खूब धोने पर भी काला ही रहे वह म्लेच्छ ताम्र है ॥ ४३ ॥

अथ नेपालताम्रलक्षणम्—

सुस्निग्धं मृदुलं शोणं घनाघातक्षमं गुरु।
निर्विकारं गुणश्रेष्ठं ताम्रं नेपालमुच्यते ॥ ४४ ॥

जो ताम्र स्निग्ध, कोमल, लालवर्ण, भारी, चोट मारने पर चूर्ण न होकर

बढ़ता हो, वह नेपाल संज्ञक ताम्र है। यह वमनादि विकारों से रहित तथा औषध कार्य में श्रेष्ठ होता है ॥ ४४ ॥

अथ रसकर्मानर्हताम्रलक्षणम्—

पाण्डुरं कृष्णशोणं च लघुस्फुटनसंयुतम् ।
रूक्षाङ्गं सदलं ताम्रं नेष्यते रसकर्मणि ॥ ४५ ॥

जो ताम्र पाण्डुर (श्वेतपीतवर्णमिश्रित), लालिमा लिये हुए काला, वजन में हलका, पीटने से चूर्ण होने वाला और रूक्षस्पर्शवाला तथा पत्रों की रचना-युक्त हो वह रस क्रिया में वर्जित है ॥ ४५ ॥

अथ गुणाः—

ताम्रं तिक्तकषायकं च मधुरं पाकेऽथ वीर्योष्णकं
साम्लं पित्तकफापहं जठररुक्कुष्ठामजन्त्वन्तकृत् ॥
ऊर्ध्वाधः परिशोधनं विषयकृत् स्थौल्यापहं क्षुत्करं
दुर्नामक्षयपाण्डुरोगशमनं नेत्र्यं परं लेखनम् ॥ ४६ ॥

ताम्र तीता, कसैला, पाक होने पर मधुर, उष्णवीर्य्य, स्वाद में अम्ल, पित्त और कफ का नाशक, और उदरव्याधि, कुष्ठ, आमदोष, कृमिसमूह, स्थौल्य, अर्श, क्षय, पाण्डु इन रोगों को नष्ट करता है और नेत्रों के लिये हितकर, शरीर की मेदा का नाशक, भूख को बढानेवाला, ऊर्ध्व और अधः शरीर के भागों का (वमन तथा विरेचन द्वारा) शोधक और विष बाधा तथा यकृत् वृद्धि को दूर करता है॥ ४६ ॥

अथ ताम्रस्य दोषाः—

अशुद्धं ताम्रमायुघ्नं कान्तिवीर्यबलापहम् ।
वान्तिमूर्च्छाभ्रमोत्क्लेदं कुष्ठं शूलं करोति तत् ॥ ४७ ॥
उत्क्लेदभेदभ्रमदाहमोहास्ताम्रस्य दोषाः खलु दुर्धरास्ते ।
विशोधनात्तद्विगतस्त्रदोषं सुधासमंस्याद्रसवीर्यपाके ॥ ४८ ॥

अशुद्ध ताम्र आयुको नष्ट करता है तथा शरीर के बल, वीर्य्य और कान्ति को नष्ट करता है तथा वमन, मूर्च्छा, भ्रम, उत्क्लेद (चित्तग्लानि), कुठ तथा शूल को उत्पन्न करता है किन्तु शुद्ध कर मृत ताम्र से उपर्युक्त दोष नहीं होते हैं। तथा और भी ताम्र के उत्क्लेद, भेद, भ्रम, जलन, मूच्छा ये दोष हैं जोकि बहुत प्रयत्न से दूर किये जाते हैं। यथाविधि शोधन करने से ताम्र सर्वदोषों से रहित होकर रस वीर्य और विपाक में अमृत के समान गुण करता है ॥ ४७–४८ ॥

अथ ताम्रशुद्धिः—

ताम्रं क्षाराम्लसंयुक्तं द्रावितं दत्तगैरिकम् ।
निक्षिप्तं महिषीतक्रे छगणे सप्तवारकम् ।
पञ्चदोषविनिर्मुक्तं भस्मयोग्यं हि जायते ॥ ४९ ॥

ताम्र के अन्दर यवक्षार, काञ्जी या निम्बूरस और गैरिक मिला कर घोटें फिर उसे उपलों की अग्नि में द्रवित कर भैंस की तक्र (मठ्ठा) में बुझावें । इस तरह सात वार द्रवकर बुझाने से पञ्चदोष (उत्क्लेदभेदभ्रमदाहमोहाः) से रहित भस्म हो जाती है ॥ ४९ ॥

मतान्तरम्—

ताम्रनिर्मलपत्राणि लिप्त्वा निम्बम्बुसिन्धुना ।
ध्मात्वा सौवीरकक्षेपाद्विशुध्यत्यष्टवारतः ॥ ५० ॥

अथवा शुद्ध ताम्र के पत्रों पर निम्बू के रस में नीमक पीसकर लेप कर दें पश्चात् उन्हें प्रतप्त कर निर्गुण्डी (मेउड़ी) के स्वरस या क्वाथ में बुझावें, इस तरह आठ वार बुझाने से शुद्धि हो जाती है ॥ ५० ॥

मतान्तरम्—

निम्बम्बुपटुलिप्तानि तापितान्यष्टवारकम् ।
विशुध्यन्त्यर्कपत्राणि निर्गुण्डया रसमज्जनात् ॥ ५१ ॥

अथवा ताम्र के स्वच्छ पत्रों पर निम्बूरस से पिष्टलवण का लेप करके प्रतप्त कर उन्हें निर्गुण्डी के रस में बुझावें, इस तरह आठ वार करने से उनकी शुद्धि होती है ॥ ५१ ॥

मतान्तरम्—

गोमूत्रेण पचेद्यामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना ।
शुद्ध्यते नात्र सन्देहो मारणं चाप्यथोच्यते ॥ ५२ ॥

अथवा ताम्र पत्रों को गोमूत्र में डालकर तीव्र अग्नि पर एक प्रहर तक पकाने से निश्चय ही वे शुद्ध हो जाते हैं, अब आगे ताम्र मारण बतलाते हैं ॥५२॥

ताम्रभस्म—

जम्बीररससम्पिष्टरसगन्धकलेपितम् ।
शुल्वपत्रं शरावस्थं त्रिपुटैर्याति पञ्चताम् ॥ ५३ ॥

ताम्र पत्रों पर निम्बू रस में पिसे हुए समान पारद और गन्धक का लेप कर शराव में रखकर तीन पुट देने से उनकी भस्म हो जाती है ॥ ५३ ॥

अन्यविधिः—

अथवा मारितं ताम्रमम्लेनैकेन मर्दितम् ।
तद्गोलं सूरणस्यान्ता रुद्ध्वा सर्वत्र लेपयेत् ॥ ५४ ॥
शुष्कं गजपुटे पच्यात्सर्वदोषहरं भवेत् ।
वान्तिं भ्रान्तिं विरेकं च न करोति कदाचन ॥ ५५ ॥

अथवा ताम्र भस्म को निम्बू के रस से घोट कर गोला बना लेवें पश्चात् इस गोले को सूरणकन्द के बीच में खात कर के रख दें फिर सूरण कन्द का मुख बन्दकर ऊपर कपड़मिट्टि करदें, सूखजाने पर इसको गजपुट में रखकर फूंक दे । इस विधि से की हुई ताम्रभस्म सर्व दोषों को नष्ट करती है और उसके सेवन करने से वमन, भ्रम, दस्त आदि दोष भी नहीं होते हैं ॥ ५४–५५ ॥

अथ मारणान्तरम्—

ताम्रपत्राणि सूक्ष्माणि गोमूत्रे पञ्च यामकम् ।
क्षिप्त्वा रसेन भाण्डे तद्द्विगुणं देहि गन्धकम् ॥ ५६ ॥
अम्लपर्णीं प्रपिष्याथ ह्यभितो देहि ताम्रकम् ।
सम्यङ् निरुध्य भाण्डे तमग्निं ज्वालय यामकम् ॥
भस्मीभवति ताम्रं तद्यथेष्टं विनियोजयेत् ॥ ५७ ॥

ताम्र के छोटे २ पत्रों को पाञ्च प्रहर तक गोमूत्र में पड़े रहने दें या पका-लेवें, पश्चात् उन्हें गोमूत्र से निकाल कर समान पारद और द्विगुण गन्धक से घोट लें, फिर चाङ्गेरी को पीसकर ताम्र के चारों ओर लेपकर गोला बनाकर किसी हण्डिका में बन्द कर दें, पश्चात् एक प्रहर तक अग्नि देकर उतार कर के भस्म हुए ताम्र का निःशङ्क औषधकार्य में प्रयोग करें ॥ ५६–५७ ॥

सोमनाथीताम्रभस्म—

शुल्वतुल्येन सूतेन बलिना तत्समेन च ।
तदर्धांशेन तालेन शिलया च तदर्धया ॥ ५८ ॥
विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां भिन्नकज्जलसन्निभाम् ।
यन्त्राध्यायविनिर्दिष्टगर्भयन्त्रोदरान्तरे ॥ ५९ ॥

कज्जलीं ताम्रपत्राणि पर्यायेण विनिक्षिपेत् ।
प्रपचेद्यामपर्यन्तं स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥ ६० ॥

पारद से द्विगुण ताम्रपत्र लेकर दोनों को घृतकुमारी के रस से घोटकर एक हण्डिका में ताम्र के बराबर गन्धक डालकर उस गन्धक के बीच में ताम्र पत्र रख दें पश्चात् एक सकोरे से उस ताम्र को कपड़ मिट्टि द्वारा बन्दकर हण्डी के शेष भाग को नमक से भरकर हण्डिका का मुख दूसरे सकोरे से कपड़ मिट्टी द्वारा बन्द कर दें पश्चात् चूल्हे पर चार प्रहर तक पकाके निकाल कर ताम्र का चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को पिप्पली और शहद् के साथ एक रत्ती की मात्रा से सब रोगों के लिये प्रयोग करें ॥ ५८–६० ॥

ताम्रभस्मगुणाः—

तत्तद्रोगहरानुपानसहितं ताम्रं द्विवल्लोन्मितं
संलीढं परिणामशूलमुदरं शूलं च पाण्डुज्वरम् ।
गुल्मप्लीहयकृत्क्षयाग्निसदनं मेहं च मूलामयं
दुष्टां च ग्रहणीं हरेद् ध्रुवमिदं श्रीसोमनाथाभिधम् ॥ ६१ ॥

इति ताम्राधिकारः ।

ताम्रभस्म के गुण—यह भस्म श्वास, कास, क्षय, पाण्डु, मन्दाग्नि, अग्निमांद्य, अरुचि, गुल्म, प्लीह, यकृत्, मूर्च्छा, शूल, परिणामशूल सप्तधातुगत ज्वर और वातादिदोषत्रय प्रकोप से उत्पन्न समस्त रोगों को अनुकूल अनुपान के साथ सेवन करने से नष्ट करती है तथा रस और रसायन कार्य के लिये भी उचित मात्रा से ताम्र का प्रयोग करना चाहिये ॥ ६१ ॥

ग्रन्थान्तरोक्तताम्रप्रयोगः—

सूताद् द्विगुणितं ताम्रपत्रं कन्यारसैः प्लुतम् ।
पिष्ट्वा तुल्येन बलिना भाण्डमध्ये विनिक्षिपेत् ॥ ६२ ॥
छन्नं शरावकेणैतत्तदूर्ध्वं लवणं त्यजेत् ।
मुखे शरावकं दत्त्वा वह्निं यामचतुष्टयम् ॥ ६३ ॥
अवचूर्ण्यैव तच्छुल्वं वल्लमात्रं प्रयोजयेत् ।
पिप्पलीमधुना सार्धं सर्वरोगेषु योजयेत ॥ ६४ ॥
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुमग्निमांद्यमरोचकम् ।

गुल्मप्लीहयकृन्मूर्च्छाशूलपक्त्यर्थमुत्तमम् ॥ ६५ ॥
दोषत्रयसमुद्भूतानामयाञ्जयति ध्रुवम् ।
रोगानुपानसहितं जयेद्धातुगतं ज्वरम् ।
रसे रसायने ताम्रं योजयेद्युक्तमात्रया ॥ ६६ ॥

ताम्र के बराबर पारद और उतना ही गन्धक तथा ताम्र की आधी हरताल और हरताल की आधी मनःशिला इन चारों की उत्तम कज्जली बना कर एक शराव में नीचे आधी कज्जली रखकर ताम्र पत्र रख दें तथा ऊपर से फिर कज्जली रख-कर गर्भयन्त्र के अन्दर एक प्रहर तक पकावें । स्वाङ्गशीत होने पर पक्व ताम्र निकालकर चूर्ण करलें । इस विधि से बनी हुई ताम्रभस्म को सोमनाथोक्तताम्रभस्म कहते हैं । इसके सेवन के गुण—इस भस्म को भिन्न २ रोगहरण करने वाले अनु-पानों के साथ दो रत्ती की मात्रा के रूप में सेवन करने से परिणामशूल, उदररोग (जलोदर) पाण्डु, ज्वर, गुल्म, प्लीह, यकृत , वृद्धि, क्षय, मन्दाग्नि, प्रमेह, अर्श और दुष्टसंग्रहणी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६२-६६ ॥

अथ लौहम्—

लौहभेदाः—

मुण्डं तीक्ष्णं च कान्तं च त्रिप्रकारमयः स्मृतम् ॥ ६७ ॥

मुण्ड, तीक्ष्ण, कान्त, इन भेदों से लौह तीन प्रकार का होता है ॥ ६७ ॥

मुण्डलौहभेदाः—

मृदु कुण्ठं कडारं च त्रिविधं मुण्डमुच्यते ॥ ६८ ॥

मुण्डलौह भी तीन प्रकार का है यथा—मृदु, कुण्ठ, कडार ॥ ६८ ॥

मृदुमुण्डलक्षणम्—

द्रुतद्रावमविस्फोटं चिक्कणं मृदु तच्छुभम् ॥ ६९ ॥

जो लौह अग्नि में तपाने से शीघ्र गल जायं और हथौड़े या घन से पीटने पर चूर्ण होकर बिखरे नहीं तथा मृदु और कोमल हो उसको मृदुलौह कहते हैं॥६९॥

कुण्ठमुण्डलक्षणम्—

हतं यत्प्रसरेद् दुःखात्तत्कुण्ठं मध्यमं स्मृतम् ॥ ७० ॥

जो लौह घन से पीटने पर बहुत देर में कठिनता से बढ़े या चूर्ण हो जाय उसको कुण्ठ लौह कहते हैं । यह मध्यम होता है ॥ ७० ॥

कडारमुण्डलक्षणम्—

यद्धतं भज्यते भङ्गे कृष्णं स्यात्तत्कडारकम् ॥ ७१ ॥

जो लौह घन से पीटने पर जल्दी चूर्ण हो जाय और तोड़ने पर भीतर से काले रंग का हो वह कडारक लौह कहलाता है ॥ ७१ ॥

मुण्डगुणाः—

मुण्डं परं मृदुलकं कफवातशूलमूलाममेहगदकामलपाण्डुहारि ।
गुल्मामवातजठरार्तिहरं प्रदीपि शोफापहं रुधिरकृत्खलु कोष्ठशोधि॥७२॥

मुण्ड लौह के तीन भेदों में जो अत्यन्त मृदु लौह होता है वह कफ, वात, शूल, अर्श या शिरो रोग, आम, प्रमेह, कामला, पाण्डु, गुल्म, आमवात, उदर-रोग, शोथ इन रोगों को नष्ट करता है, जठराग्नि को पदीप्त करता है, रुधिर को बढ़ाता है और कोष्ठ की शुद्धि करता है ॥ ७२ ॥

अथाशुद्धलौहस्य दोषाः—

अशुद्धलोहं न हितं निषेवणादायुर्बलं कान्तिविनाशि निश्चितम् ॥
हृदि प्रपीडां तनुते ह्यपाटवं रुजं करोत्येव विशोध्य मारयेत् ॥ ७३ ॥

अशुद्ध लौह सेवन करना अहितकर है। इसके सेवन से आयु, वल और कान्ति नष्ट होती है। यह हृदय में अत्यन्त वेदना और रोग तथा शरीर में शिथिलता उत्पन्न करता है इसलिये इसको शुद्ध कर के पश्चात् इसकी भस्म करनी चाहिये॥७३॥

अथ तीक्ष्णलौहम्—

तीक्ष्णलौहभेदाः—

खरं सारं च हृन्नालं तारावट्टं च वाजिरम् ।
काललोहाभिधानं च षड्विधं तीक्ष्णमुच्यते ॥ ७४ ॥

खर, सार, हृन्नाल, तारावट्ट, वाजिर और काललौह ये तीक्ष्ण लौह के छ भेद हैं ॥ ७४ ॥

खरलौहलक्षणम्—

परुषं पोगरोन्मुक्तं भङ्गे पारदवच्छवि ।
नमने भङ्गुरं यत्तत्खरलोहमुदाहृतम ॥ ७५ ॥

जो लौह कठोर, तरङ्गसदृश रेखाओं से रहित तथा तोड़ने पर पारद के समान चमकदार तथा मोड़ने से भङ्गुर हो वह खर लौह कहलाता है ॥ ७५ ॥

सारलौहलक्षणम्—

वेगभङ्गुरधारं यत्सारलोहं तदीरितम् ।
पोगराभासकं पाण्डुभूमिजं सारमुच्यते ॥ ७६ ॥

जिस लौह की धार प्रबल आघात से टूट या मुड़ जाय उसे सार लौह कहते हैं। इसमें टेढ़ी रेखाएं स्पष्ट प्रतीत होती हैं तथा यह पीली भूमि से उत्पन्न होता है ॥ ७६ ॥

हृन्नाललौहलक्षणम्—

कृष्णपाण्डुवपुश्चञ्चुबीजतुल्योरुपोगरम् ।
छेदने चातिपरुषं हृन्नालमिति कथ्यते ॥ ७७ ॥

जो लौह कुछ अथवा पूर्ण कृष्णता लिये पाण्डुवर्ण का हो तथा एरण्ड (रेंड़ो) के बीज के छिलके की रेखाओं के समान स्पष्ट रेखाओं से युक्त हो और तोड़ने पर अत्यन्त कठिन हो उसको हृन्नाल लौह कहते हैं ॥ ७७ ॥

सपर्यायपोगरलक्षणम्—

अङ्गक्षया च वङ्गं च पोगरस्याभिधात्रयम् ।
चिकुरं भङ्गुरं लोहात्पोगरं तत्परं मतम् ॥ ७८ ॥

उपर्युक्त पोगर के अङ्ग, क्षय (छाया) और वङ्ग ये तीन पर्याय वाचक शब्द हैं। लौह में पोगर टूटने वाला और चमकदार होता है ॥ ७८ ॥

वाजीरलौहलक्षणम्—

पोगरैर्वज्रसङ्काशैः सूक्ष्मरेखैश्च सान्द्रकैः ।
निचितं श्यामलाङ्गं च वाजीरं तत्प्रकीर्त्यते ॥ ७९ ॥

जिस लौह में पोगर वज्र के समान कठिन, चमकदार और सान्द्र (अत्यन्त मिली हुई) छोटी २ रेखाओं से युक्त हो और जिसका वर्ण श्याम हो उसको वाजिर लौह कहते हैं ॥ ७९ ॥

काललौहलक्षणम्—

नीलकृष्णप्रभं सान्द्रं मसृणं गुरु भासुरम् ।
लोहाघातेऽप्यभङ्गात्मधारं कालायसं मतम् ॥ ८० ॥

जो लौह नीलिमा लिये काले वर्ण का हो तथा भारी, चिकना, कान्ति युक्त और लौह के घन के आघात से भी जिसकी धार न टूटे उसको काल लौह कहते हैं ॥ ८० ॥

खरलौहगुणाः—

रूक्षं स्यात्खरलोहकं समधुरं पाकेऽथ वीर्ये हिमं
तिक्तोष्णं कफपित्तकुष्ठजठरप्लीहामपाण्डूवर्तिनुत् ।
सद्यः शूलयकृद्दरक्षयजरामेहामवातापहं
दीप्तं चातिरसायनं बलकरं दुर्नामदाहापहम् ॥ ८१ ॥

खर लौह के गुण—यह रूक्ष, पाक में मधुर, शीतवीर्य, तिक्त और उष्ण होता है तथा कफ, पित्त, कुष्ठ, उदररोग, प्लीहा, आम, पाण्डु, शूल, यकृत् , राजयक्ष्मा, जरा, प्रमेह, आमवात, अर्श और दाह को नष्ट करता है तथा यह अत्यन्त रसायन, अग्नि दीपक और बल कारक होता है ॥ ८१ ॥

अन्यसारादितीक्ष्णलौहगुणाः—

खरलोहात्परं सर्वमेकैकस्माच्छतोत्तरम् ॥ ८२ ॥

तीक्ष्ण लौह के अन्यभेद खरसंज्ञक लौह की अपेक्षा क्रमशः सौ सौ गुना अधिक गुणप्रद होते हैं ॥ ८२ ॥

कान्तलौहभेदाः—

भ्रामकं चुम्बकं चैव कर्षकं द्रावकं तथा ।
एवं चतुर्विधं कान्तं रोमकान्तं च पञ्चमम् ॥ ८३ ॥
एकद्वित्रिचतुष्पञ्चसर्वतामुखमेव तत् ।
पीतं कृष्णं तथा रक्तं त्रिवर्णं स्यात्पृथक् पृथक् ।
क्रमेण देवतास्तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ८४ ॥

भ्रामक, चुम्बक, कर्षक, द्रावक ये कान्तलोहे के चार भेद हैं तथा पांचवां भेद रोमक है । किसी के एक मुख, किसी के दो मुख, किसी के तीन मुख और किसी के चार तथा पाँच मुख होते हैं और किसी के सबमुख होते हैं । इस तरह मुखभेद से कान्त लौह के छ भेद हैं और प्रत्येक पीत, कृष्ण, रक्त वर्ण भेद से तीन तीन तरह का होता है और क्रम से पीत वर्ण के लौह के ब्रह्मा, कृष्णवर्ण लोहे के विष्णु और रक्तवर्ण लोहे के महेश्वर अधिष्ठातृ देवता हैं ॥ ८३–८४ ॥

वर्णानुसारकार्यभेदाः—

स्पर्शवेधि भवेत्पीतं कृष्णं श्रेष्ठं रसायने ।
रक्तवर्णं तथा चापि रसबन्धे प्रशस्यते ॥ ८५ ॥

पीतवर्ण का लौह स्पर्शमात्र से पारद का वेधाख्यसंस्कार कर देता है तथा रसायन में कृष्णवर्ण का लौह श्रेष्ठ है और रक्तवर्ण का कान्त लौह पारद के बन्धन में श्रेष्ठ है ॥ ८५ ॥

अधमादिकथनम्—

भ्रामकं तु कनिष्ठं स्याच्चुम्बकं मध्यमं तथा ।
उत्तमं कर्षकं चैव द्रावकं चात्तमोत्तमम् ॥ ८६ ॥

ऊपर कहे हुए कान्त लौह के भेदों में भ्रामकसंज्ञक लौह औषध कर्म में कनिष्ठ (त्याज्य) है, चुम्वक मध्यम है, कर्षक उत्तम है तथा द्रावक संज्ञक कान्त लौह सर्वोत्तम कहा गया है ॥ ८६ ॥

भ्रामककान्तलक्षणम्—

भ्रामयेल्लोहजातं यत्तत्कान्तं भ्रामकं मतम् ॥ ८७ ॥

जो लौह अपने प्रभाव से अन्य लौह समूह को भ्रमाता (चञ्चल या गति-युक्त करता) है उसे भ्रामककान्त लौह कहते हैं ॥ ८७ ॥

चुम्बककर्षकलक्षणम्—

चुम्बयेच्चुम्बकं कान्तं कर्षयेत्कर्षकं तथा ॥ ८८ ॥

जो अपने प्रभाव से अन्य लौह को खींचकर चुम्बित कर लेता है वह चुम्बक कहा जाता है और जो केवल अन्य लौह को अपनी ओर खींचता है उसे कर्षक कहते हैं ॥ ८८ ॥

द्रावककान्तलक्षणम्—

साक्षाद्यद्द्रावयेल्लोहं तत्कान्तं द्रावकं भवेत् ॥ ८९ ॥

और जो अपने संयोगसे अन्य लौह को द्रवित कर देता है उस कान्त लौह को द्रावक कहते हैं ॥ ८९ ॥

रोमकान्तलक्षणम्—

तद्रोमकान्तं स्फुटिताद्यतो रोमोद्गमो भवेत् ॥ ९० ॥

तथा जिस कान्त लौह के तोड़ने पर बालों के समान रेखाओं का अविर्भाव हो वह रोमकान्त कहलाता है ॥ ९० ॥

सुखभेदेन श्रेष्ठाश्रेष्ठत्वकथनम्—

कनिष्ठं स्यादेकमुखं मध्यं द्वित्रिमुखं भवेत् ।
चतुष्पञ्चमुखं श्रेष्ठमुत्तमं सर्वतोमुखम् ॥ ९१ ॥

जिस कान्त लौह में एक मुख हो वह कनिष्ठ है। दो या तीन मुखवाला मध्यम, चार और पाँच मुखोंवाला उत्तम और सर्वमुख वाला अत्यन्त उत्तम है॥९१॥

भ्रामकादिलौहकार्यनिर्देशः—

भ्रामकं चुम्बकं चैव व्याधिनाशे प्रशस्यते।
रसे रसायने चैव कर्षकं द्रावकं हितम्॥ ९२॥

भ्रामक और चुम्बक कान्त लौह व्याधिविनाश के लिये प्रशस्त हैं तथा रसायन के लिये कर्षक और द्रावक हितकर है॥ ९२॥

रसक्रमेण कान्तस्य विशेषता—

मदोन्मत्तगजः सूतः कान्तमङ्कुशमुच्यते॥ ९३॥

जिस तरह मदोन्मत्त हस्ती को अङ्कुश वश में कर लेता है उसी तरह चाञ्चल्यादि मदोन्मत्त पारद के बन्धन के लिये कान्त लौह एक तरह का अङ्कुश है, अर्थात् इससे पारद का बन्धन हो जाता है॥ ९३॥

कान्तलौहस्य ग्राह्याग्राह्यनिर्देशः—

क्षेत्रं ज्ञात्वा गृहीतव्यं तत्प्रयत्नेन धीमता।
मारुताऽऽतपविक्षिप्तं वर्जयेन्नात्र संशयः॥ ९४॥

बुद्धिमान को चाहिए कि उत्तम खान से प्रयत्न पूर्वक कान्त लौह को ग्रहण करें। जो लौह दूषितवायु और धूप से आक्रान्त हुआ हो उसे त्याग दें॥ ९४॥

कान्तलौहलक्षणम्—

पात्रे यस्य प्रसरति जले तैलबिन्दुर्न लिप्तो
गन्धं हिङ्गु त्यजति च तथा तिक्ततां निम्बकल्कः।
पाके दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमौ
कान्तं लौहं तदिदमुदितं लक्षणोक्तं च नान्यत्॥ ९५॥

जल से भरे जिस कान्त लौह के पात्र में तैल डालने पर फैले नहीं और उसी कान्त लौह के पात्र में हींग और नीम्ब के कल्क का लेप करने पर वे अपनी गन्ध और कटुता को त्याग दें और जिसके पात्र में दुग्ध के पकाने पर वह शिखराकृति हो जाय और उबल कर पात्र से बाहर पृथ्वी पर न गिरे, इन्हीं लक्षणों वाले लौह को कान्तलौह कहते हैं अन्य को नहीं॥ ९५॥

अथ कान्तलौहगुणाः—

कान्तायोऽतिरसायनोत्तरतरं स्वस्थे चिरायुःप्रदं
स्निग्धं मेहहरं त्रिदोषशमनं शूलाऽऽममूलापहम्।
गुल्मप्लीहयकृत्क्षयामयहरं पाण्डूदरव्याधिनु-
त्तिक्तोष्णं हिमवीर्यकं किमपरं यागेन सर्वार्तिनुत्॥ ९६॥

कान्त लौह अत्यन्त श्रेष्ठ रसायन है, स्वस्थ शरीर वाले मनुष्य की आयु को बढाता है, स्निग्ध है तथा प्रमेह, त्रिदोष प्रकोप, शूल, आम, बवासीर, गुल्म, प्लीहा, यकृत्, क्षय, पाण्डु तथा उदररोग को नष्ट करता है। यह स्वाद में तिक्त, उष्ण तथा शीतवीर्य्य है और भिन्न २ योगों के साथ मिलाकर सेवन करने से सब रोगों को नष्ट करता है। इससे बढकर दूसरा कोई श्रेष्ठ रसायन नहीं है॥ ९६॥

लौहकल्पश्रेष्ठता—

सम्यगौषधकल्पानां लोहकल्पः प्रशस्यते।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुद्धं लोहं च मारयेत्॥ ९७॥

अच्छे २ औषध कल्पो में लौह कल्प ही प्रशस्त है इसलिये यत्नपूर्वक कान्त लौह की साधारण और विशेष शुद्धि कर के मारण करना चाहिये॥ ९७॥

अथ मारणार्थं लोहस्य परिमाणनिर्देशः—

नायः पचेत्पञ्चपलादर्वागूर्ध्वं त्रयोदशात्॥ ९८॥

पाच पल से कम और तेरह पल से ज्यादा लौह को एक वार में भस्म के लिये नहीं लेना चाहिये॥ ९८॥

अथ लोहमारणे मन्त्रः(१)—

आदौ मन्त्रस्ततः कर्म कर्तव्यं मन्त्र उच्यते॥ ९९॥

लौह मारण के प्रथम मन्त्र का जप कर के फिर मारण कर्म करना चाहिए नीचे मन्त्र कहा जाता है॥ ९९॥

अथ लौहत्रयाणामुत्तरोत्तरगुणाधिक्यम्—

लक्षोत्तरगुणं सर्वं लोहं स्यादुत्तरोत्तरम्।

---

(१) "ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा"
अनेन मन्त्रेण लोहमारणम्।
"ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा" इस मन्त्र का जप कर के लौह का मारण करना चाहिए।

कान्तं कोटिगुणं तत्र तद्ध्येवं गुणोत्तरम् ॥ १०० ॥

मुण्डादि प्रत्येक लौह उत्तरोत्तर एक दूसरे से लक्षाधिक गुणों वाले हैं और उनमें कान्त लौह करोड़ से भी अधिक गुण वाला है। इसमें भी मन्त्रजप पूर्वक मारित कान्त लौह करोड़ गुण से भी अधिक गुण प्रद होता है ॥ १०० ॥

अथ सर्वलौहशुद्धिः

शशक्षतजसंलिप्तं त्रिवारं परितापितम् ।
मुण्डादिसकलं लोहं सर्वदोषान्विमुञ्चति ॥ १०१ ॥

मुण्ड आदि सर्व प्रकार के लौह के छोटे २ टुकडों को खरगोश के रुधिर से लिप्त-कर अग्नि में तपाने से उनकी शुद्धि हो जाती है। यह क्रिया तीन वार करनी चाहिए ॥१०१॥

लोहस्थगिरिजदोषनाशनविधिः—

क्राथ्यमष्टगुणे तोये त्रिफलाषोडशं पलम् ।
तत्क्काथे पादशेषे तु लोहस्य पलपञ्चकम् ॥ १०२ ॥
कृत्वा पत्राणि तप्तानि सप्तवारं निषेचयेत् ।
एवं प्रलीयते दोषोगिरिजो लोहसम्भवः ॥ १०३ ॥

अथवा १६ पल (६७ तो० त्रिफला) (क्राथ्य) को आठगुने (१२८ पल का ५१२ तो० या ६ सेर डेढ पाव २ तोले) जल में उबाल कर चतुर्थांश (३२ पल) शेष रख कर क्वाथ बना लो, पश्चात् ५ पल लौहे के सूक्ष्मपत्र या टुकड़े कर उन्हें प्रतप्त कर उस क्वाथ में बुझा लो। इस तरह सात बार बुझाने से लौहे के सर्व दोष(१) नष्ट हो जाते हैं ॥ १०२–१०३ ॥

ध्यान रहे कि ३२ पल क्वाथ के सात भाग करके उसमें लौह को सात वार बुझाना चाहिए, प्रथम वार बुझाये क्वाथको फेंककर दूसरा क्वाथ लेकर उसमें दूसरी वार बुझाना चाहिए। सात भाग करने पर प्रत्येक भागमें क्वाथ की मात्रा ९ तोले के करीब होती है। किसी आचार्य के मत से एक पल आठ तोले का होता है।

मतान्तरम्—

सामुद्रलवणोपेतं तप्तं निर्वापितं खलु ।
त्रिफलाक्कथिते नूनं गिरिदोषमयस्त्यजेत् ॥ १०४ ॥

---

(१) यथा–गुरुता हृदयोत्क्लेदः कश्मलं दाहकारिता ।
अश्मदोषः सुदुर्गन्धो दोषाः सप्तायसस्य तु ॥

चिञ्चाफलजलक्वाथाद्यो दोषमुदस्यति ॥ १०५ ॥

अथवा लौह के पत्रों को जल से पीसे निमक से लिप्त कर अग्नि में प्रतप्त कर लें, फिर उपर्युक्त विधि से बने हुए त्रिफला क्वाथ में बुझा लें। इस तरह सात वार करने से लौह शुद्ध हो जाता है। अथवा लौह को प्रतप्त कर इमली के पत्तोंके स्वरस या क्वाथमें सात वार बुझाने से भी वह शुद्ध हो जाता है॥१०४-१०५॥

मातान्तरेण शोधनं मारणञ्च—

यद्वा फलत्रयोपेतं गोमूत्रे क्वथितं क्षणम्।
रेचितं घृतसंयुक्तं क्षिप्त्वाऽयःखर्परे पचेत् ॥ १०६ ॥
चालयेल्लौहदण्डेन यावत्क्षिप्तं तृणं दहेत्।
पिष्ट्वा पिष्ट्वा पचेदेवं पञ्चवारमतः परम् ॥ १०७ ॥
धात्रीफलरसैर्यद्वा त्रिफलाक्वथितोदकैः।
पुटेल्लौहं चतुर्वारं भवेद्वारितरं खलु ॥ १०८ ॥

अथवा १६ पल त्रिफला का आठगुने गामूत्र में क्वाथ बनाकर पाञ्च पल लौह को उस क्वाथ में खूब पकाले, फिर उस लौह का रेती से चूर्ण करके उसमें समान या द्विगुण घृत मिलाकर खर्परमें (कड़ाही) पकावें और लौहकी कलच्छी से चलाता रहे। जब पकाते २ लौह पर तृण डालने से वह जलने लगे तब उतार लें। इस तरह लौह को खरल में पीस पीसकर पाञ्च वार पकाना चाहिये। फिर त्रिफला के क्वाथ से या आंवलों के रस में खूब खरल कर चार पुट देने चाहिए। इस तरह करने से लौह की जल में तैरने लायक भस्म हो जाती है ॥ १०६-१०८ ॥

मातान्तरेण मारणञ्चम्—

स्नेहाक्तं लोहरजो मूत्रे स्वरसेऽपि रात्रिधात्रीणाम्।
पृथगेवं सप्तकृत्वो भर्जितमखिलामये योज्यम् ॥ १०९ ॥

अथवा लौह चूर्ण को घृत से लिप्त कर गोमूत्र, हरिद्रास्वरस और आंवले के स्वरस में पृथक् २ सातवार पकाकर पुटविधि से भस्म बना के सम्पूर्ण रोगों में प्रयोग करना चाहिए ॥ १०९ ॥

अथ तीक्ष्णलौहस्य मारणम्—

तीक्ष्णलौहस्य पत्राणि निर्दलानि दृढेऽनले।
ध्मात्वा क्षिपेज्जले सद्यःपाषाणोलूखलोदरे ॥ ११० ॥

कण्डयेतद्दृढनिर्घातैः स्थूलया लोहपारया ।
तन्मध्यात्स्थूलखण्डानि रुद्ध्वा मल्लद्वयान्तरे ॥ १११ ॥
ध्मात्वा क्षिप्त्वा जले सम्यक् पूर्ववत्कण्डयेत्खलु ।
तच्चूर्णं सूतगन्धाभ्यां पुटेद्विंशतिवारकम् ॥ ११२ ॥
पुटे पुटे विधातव्यं पेषणं दृढवत्तरम् ।
एवं भस्मीकृतं लौहं तत्तद्रोगेषु योजयेत् ॥ ११३ ॥

तीक्ष्ण लौह के (जो कि दलरहित हों) छोटे २ पत्रों को तीव्र अग्नि में अत्यन्त प्रतप्त कर पत्थरी की ओंखली में भरे हुए जल में बुझावें, फिर उस जल में से तुरन्त निकालकर लौह की ओंखली (उलूखल या इमामदस्ता) में डालकर स्थूल लौह के दण्ड (वत्थे) से चूर्ण करें। फिर उस चूर्ण में से बड़े २ लौह के पत्रों को सम्पुट में वन्दकर के अत्यन्त लाल कर जल में वुझा लेवें, फिर पूर्ववत् चूर्ण करले इस प्रकार उस लौहचूर्ण में समान भाग पारद और गन्धक की कज्जली मिलाकर सम्पुट में वन्दकर फूंके इस तरह प्रत्येक पुट में समान नवीन कज्जली मिलाकर खूब खरल में घोटकर बीसवार पुट देना चाहिए। इस तरह भस्म किये हुए लौह का सर्व रोगों में प्रयोग करना चाहिए ॥ ११०–११३ ॥

अथ कान्तलौहस्य गुणाः—

कान्तायः कमनीयकान्तिजननं पाण्डूवामयोन्मूलनम् ।
यक्ष्मव्याधिनिबर्हणं गरहरं दोषत्रयोन्मूलनम् ॥
नानाकुष्ठनिबर्हणं बलकरं वृष्यं वयस्तम्भनम् ।
सर्वव्याधिहरं रसायनवरं भौमामृतं नापरम् ॥ ११४ ॥

कान्त लौह शरीर की सुन्दर आकृति को उत्पन्न करता है और पाण्डु, राजयक्ष्मा, विषबाधा, त्रिदोषविकार तथा सर्व प्रकार के कुष्ठ को नष्ट करता है, बल को बढ़ाता है, वृष्य और वयः स्थापक है और यह सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है, अत्यन्त श्रेष्ठ रसायन है, इससे बढकर पृथ्वी पर कोई अन्य अमृत नहीं है ॥ ११४ ॥

लौहस्य मारणान्तरम्—

हिङ्गुलस्य पलान्पञ्च नारीस्तन्येन पेषयेत् ।
तेन लोहस्य पत्राणि लेपयेत्पलपञ्चकम् ॥ ११५ ॥

रुद्ध्वा गजपुटे पच्यात्कषायैस्त्रैफलैः पुनः ।
जम्बीरैरारनालैर्वा विंशत्यंशेन हिङ्गुलम् ॥ ११६ ॥
पिष्ट्वा रुद्ध्वा पचेल्लोहं तद्द्रवैः पाचयेत्पुनः ।
चत्वारिंशत्पुटैरेवं कान्तं तीक्ष्णं च मुण्डकम्
म्रियते नात्र सन्देहो दत्त्वा दत्त्वैव हिङ्गुलम् ॥ ११७ ॥

पाञ्चपल लौह के पत्रोंको स्त्री के दुग्ध में पीसे हुए पाञ्च पल हिङ्गुल से लिप्त कर शरावसम्पुट में बन्दकर गज पुट में फूंक दें, फिर काञ्जी, त्रिफलाक्काथ और निम्बू-रस से २० तोले हिङ्गुल को घोट कर लौह पत्र पर लेपकर फूंकदे, फिर उक्तरसों में लौह को पकाना चाहिए इस तरह वार २ हिङ्गुल डालकर ४० पुट देने से कान्त, मुन्ड, तीक्ष्ण लौहों की भस्म हो जाती है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है॥ ११५-११७॥

अथ तीक्ष्णलौहस्य विशेषमारणम्—

अथ पूर्वोदितं तीक्ष्णं वसुभल्लकवासयोः ।
पुटितं पत्रतोयेन त्रिंशद्वाराणि यत्नतः ॥
शोणितं जायते भस्म कृतसिन्दूरविभ्रमम् ॥ ११८ ॥

तीक्ष्ण लौह को श्वेत पुनर्नवा के रस से भावित कर तथा अडूसे के पत्रों के स्वरस या क्काथ से भावित कर ३० पुट देने से सिन्दूर के समान लाल भस्म हो जाती है ॥ ११८ ॥

मतान्तरम्—

यद्वा तीक्ष्णदलोद्भूतं रजश्च त्रिफलाजलैः ।
पिष्ट्वा दत्त्वौदनं किञ्चिच्चक्रिकां प्रविधाय च ॥ ११९ ॥
शोषयित्वाऽतियत्नेन प्रपचेत्पञ्चभिः पुटैः ।
रक्तवर्णं हि तद्भस्म योजनीयं यथायथम् ॥ १२० ॥

अथवा लौह चूर्ण को त्रिफला क्वाथ से घोटकर कुछ भात मिलाकर टिकिया बना लें, सूख जाने पर सम्पुट में बन्द कर पुट दे दें। इस तरह पांच पुट देने से लाल वर्ण की लौह भस्म हो जाती है, उसको रोगानुसार प्रयोग करना चाहिये ॥ ११९-१२० ॥

मतान्तरे सर्वलौहानां मारणम्—

मत्स्याक्षीगन्धवाह्लीकैर्लकुचद्रवपेषितैः ।
विलिप्य सकलं लोहं मत्स्याक्षीकल्कलेपितम् ॥ १२१ ॥

भस्त्राभ्यां सुदृढं ध्मात्वा त्रिशुलीनिर्गमावधि ।
अथोद्धृत्य क्षिपेत्क्वाथे त्रिफलागोजलात्मके ॥ १२२ ॥
तस्मादाहृत्य सन्ताड्य मृतमादाय लोहकम् ।
पुनश्च पूर्ववद् ध्मात्वा मारयेदखिलायसम् ॥ १२३ ॥
खण्डयित्वा ततो गन्धगुडत्रिफलया सह ।
पुटेत्त्रिंशतिवाराणि निरुत्थं भस्म जायते ॥ १२४ ॥

सर्व प्रकार के लौह चूर्ण को बड़हल के फल के रस से पीसे हुए गण्डदूर्वा, गन्धक, हींग, इन पदार्थों से लिप्तकर, फिर गण्डदूर्वा के कल्क को ऊपर नीचे रखकर लौह का गोला वना कर सुखालें, फिर धौंकनी द्वारा जव तक विविध रंग की ज्वाला न निकले तव तक फूंकता रहे, बाद में पत्रों को निकाल कर त्रिफला क्वाथ और गोमूत्र में उन्हें बुझावें, फिर उसमें से निकालकर चूर्ण करके पूर्वानुसार फूंक के बुझाकर खरल में चूर्ण करलें, पश्चात् लौह चूर्ण के समान गन्धक, गुड़ और त्रिफला चूर्ण ले कर सवको खरल में घोटकर के गोला वनाकर गजपुट में फूंक देवें, इस प्रकार ३० पुट देने से लौह की निरूत्थ भस्म हो जाती है॥ १२१–१२४॥

अन्यविधिः—

समगंधमयश्चूर्णं कुमारीवारिभावितम् ।
पुटीकृतं कियत्कालमवश्यं म्रियते ह्ययः ॥ १२५ ॥

अथवा गन्धक और लौह चूर्ण वरावर २ लेकर घृत कुमारी के स्वरस में घोटकर के सम्पुट में बन्द कर आठ या दस पुट देने से अवश्य ही भस्म हो जाती है ॥१२५॥

अन्यविधिः—

जम्बीररससंयुक्ते दरदे तप्तमायसम् ।
बहुवारं विनिक्षिप्तं म्रियते नात्र संशयः ॥ १२६ ॥

निम्बू के रस में कुछ हिङ्गुल मिलाकर घोल बनालो, फिर इस घोल (विलयन) में लौह को प्रतप्त कर बुझावें, इस तरह २० या २५ वार बुझाने से लौह की भस्म हो जाती है ॥ १२६ ॥

अन्यविधिः—

गोमूत्रस्त्रिफला क्वाथ्या तत्कषायेण भावयेत् ।
त्रिःसप्ताहं प्रयत्नेन दिनकं मर्दयेत्पुनः ॥ १२७ ॥

रुद्ध्वा गजपुटे पच्याद्दिनं क्काथेन मर्दयेत् ।
दिवा मर्द्यं पुटेद्रात्रावेकविंशद्दिनावधि ।
एकविंशत्पुटैरेवं म्रियते त्रिविधं ह्ययः ॥ १२८ ॥

गोमूत्र में त्रिफला का क्काथ बनाकर उससे २१ दिन तक लौह को भावित करें, फिर उसी क्काथ से उस लौह को एक दिन तक खूब घोट करके सम्पुट कर गजपुट द्वारा रात्रि में पुट दे देवें, फिर निकालकर उसी क्काथ से दिन में घोटकर रात्रि में पुट देवें इस तरह २१ पुट देने से तीनों प्रकार के लौह की भस्म हो जाती है ॥ १२७–१२८ ॥

अथ कान्तलोहस्य रामराजीप्रोक्तशोधनम्—

यत्पात्राध्युषिते तोये तैलबिन्दुर्न सर्पति ।
तारेणावर्तते यत्तत्कान्तलोहं तनूकृतम् ॥ १२९ ॥
अयसामुत्तमं सिञ्चेत्तप्तं तप्तं वरारसे ।
एवं शुद्धानि लोहानि पिष्टान्यम्लेन केनचित् ॥ १३० ॥
मृतसूतस्य पादेन प्रलिप्तानि पुटानले ।
पचेत्तुल्यस्य वा ताप्यगन्धाश्महरतेजसा ॥ १३१ ॥
तप्तं क्षाराम्लसंलिप्तं शशरक्तेन भावितम् ।
कान्तलोहं भवेद्भस्म सर्वदोषविवर्जितम् ॥ १३२ ॥

जिस लौह के जल से भरे हुए पात्र में तैल की बूंद छोड़ने पर वह फैले नहीं और जो लौहचूर्ण रजत चूर्ण के साथ मिश्रित हो जाय या उसको चारों ओर घेरले उस सर्वलौहो में उत्तम कान्त लौह के छोटे २ पत्र या टुकड़े बना करके प्रतप्त कर त्रिफला के क्वाथ में सात वार बुझाकर शुद्ध करलें, पश्चात् उसे निम्बू के रस या किसी अम्लरस से घोट करके चतुर्थांश पारदभस्म से मर्दनद्वारा लिप्तकर पुट देने से उसकी भस्म हो जाती है। अथवा लौह चूर्ण या पत्र को अम्लरस में घोटे हुयेक्षार से लिप्त करके तपाकर खरगोश के रुधिर में सातवार बुझालें, पश्चात् लौह के बराबर सुवर्णमाक्षिक, गन्धक और पारद इनके साथ लौह पत्रों को घोटकर सम्पुट में वन्द कर गजपुट में फूंक दें, इस तरह लौह को सर्वदोष रहित भस्म हो जाती है ॥ १२९–१३२ ॥

अन्यविधिः—

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं खल्लेन कृतकज्जलम्।
द्वयोः समं लौहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः॥ १३३॥
यामद्वयात्समुद्धृत्य यद्गोलं ताम्रपात्रके।
आच्छाद्यैरण्डपत्रैश्च यामार्धेऽत्युष्णतां व्रजेत्॥ १३४॥
धान्यराशौ न्यसेत्पश्चात्त्रिदिनान्ते समुद्धरेत्।
सम्पेष्य गालयेद्वस्त्रे सत्यं वारितरं भवेत्।
कान्तं तीक्ष्णं च मुण्डं च निरुत्थं जायते मृतम्॥ १३५॥
स्वर्णादीन्मारयेदेवं चूर्णं कृत्वा च लौहवत्।
सिद्धयोगो ह्ययं ख्यातः सिद्धानां सुमुखागतः॥ १३६॥
अनुभूतं मया सत्यं सर्वरोगजरापहम्।
त्रिफलामधुसंयुक्तं सर्वरोगेषु योजयेत्॥ १३७॥

अन्यविधि—शुद्ध पारद से द्विगुण गन्धक लेकर खरल में कज्जली बनालें, इस कज्जली के बराबर लौह चूर्ण लेकर उसको घृत कुमारी के रस में दो प्रहर तक घोट करके गोला बनालेवें, पश्चात् उस गोले को ताम्र के पात्र में रख कर रेंड़ी के पत्रों से ढककर आधे प्रहर तक अग्नि में या सूर्य की धूप में रहने दें, फिर उस गोले को तीन दिन तक धान्य के ढेर में गाड़ना चाहिए, चौथे दिन निकाल कर लौह चूर्ण को पीसकर वस्त्र से छान लें, इस तरह कान्त, तीक्ष्ण और मुण्ड लौह की जल में तैरने लायक निरुत्थ भस्म हो जाती है। इसी विधि से सुवर्णादि धातुओं की भी भस्म हो जाती है। यह योग सिद्धों के मुख से कहा हुआ है इसलिये उसको सिद्धयोग कहते हैं और मैंने भी इसकी सत्यता का अनुभव किया है। यह सर्व व्याधियों को नष्ट करता है। इसको त्रिफला और शहद के साथ सर्व रोगों में प्रयुक्त करना चाहिए॥ १२३–१३७॥

अथ लौहप्रयोगः—

एतत्स्यादपुनर्भवं हि भसितं लोहस्य दिव्यामृतं
सम्यक् सिद्धरसायनं त्रिकटुकीवेल्लाज्यमध्वन्वितम्।
हन्यान्निष्कमितं जरामरणजव्याधींश्च सत्पुत्रदं
दिष्टं श्रीगिरिशेन कालयवनोद्भूत्यै पुरा तत्पितुः॥१३८॥

लौहभस्म के गुण—यह निरुत्थ लौह भस्म अमृत के समान गुणकारी और सिद्ध रसायन है। इस भस्म को चार मासे की मात्रा में त्रिकटु, वायविडङ्ग, शहद् और घृत के साथ सेवन करने से जरा, मरण तथा सर्व व्याधियां नष्ट हो जाती हैं और सत्पुत्र को देती है। किसी समय महादेवजो ने कालयवन के पिता को पुत्र की प्राप्ति के लिये इस भस्म के सेवन का उपदेश दिया था ॥ १३८ ॥

अथ लौहानां रामराजीप्रोक्तगुणाः—

लोहं जन्तुविकारपाण्डुपवनक्षीणत्वपित्तामय-
स्थौल्यार्शोग्रहणीज्वरार्तिकफजिच्छोफप्रमेहप्रणुत् ।
गुल्मप्लीहविषापहं बलकरं कुष्ठाग्निमान्द्यप्रणुत्
सौख्यालं विरसायनं मृतिहरं किट्टं च कान्तादिवत् ॥१३९॥
मृतानि लोहानि रसीभवन्ति निघ्नन्ति युक्तानि महामयांश्च ।
अभ्यासयोगाद् दृढदेहसिद्धिं कुर्वन्ति रुग्जन्मजराविनाशम् ॥ १४० ॥

लोहभस्म कृमि से उत्पन्न विकार, पाण्डु, वायुरोग, क्षीणता, पित्तजन्यरोग, स्थूलता, ववासीर, संग्रहणी, ज्वर, कफ, शोथ, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, विषबाधा, कुष्ठ और मन्दाग्नि को नष्ट करती है, बल को बढ़ाती है, सुखकारक, उत्तम रसायन है और मृत्यु को नष्ट करती है। लौह का किट्ट भी कान्त लौह के समान गुणकारक होता है।

सर्वप्रकार के मृत लौह रस के समान गुणकारी और बड़े २ भयङ्कर रोगों को नष्ट करते हैं। इनके सेवन करने से देह दृढ और स्थिर हो जाती है और ये लौह रोग की उत्पत्ति और जरा को नष्ट करते हैं ॥ १३९–१४० ॥

अथ श्रेष्ठकान्तलौहस्य लक्षणम्—

पक्वजम्बूफलच्छायं कान्तलोहं तदुत्तमम् ॥ १४१ ॥

जो कान्तलौह पके हुए जामुन के समान वर्णवाला हो वह श्रेष्ठ है ॥१४१॥

अथ लोहद्रुतिः—

त्रिःसप्तकृत्वो गोमूत्रे जालिनीभस्मभावितम् ।
शोषयेत्तस्य वातेन तीक्ष्णं मूषागतं द्रवेत् ॥ १४२ ॥
सुरदालिभस्मगलितं त्रिःसप्तकृत्वोऽथ गोजले शुष्कम् ।
वापेन सलिलसदृशं करोति मूषागतं तीक्ष्णम् ॥ १४३ ॥

कड़वी तरोई की राख को २१ वार गोमूत्र से भवित कर के उसे सुखा लेवें फिर उस राख को मूषा में रखकर लौह भस्म को भर दें, ऊपर से लौह पर फिर शेष राख रखकर बन्द करके अग्नि से धमन करने से लौह का द्रवण हो जाता है। अथवा देवदाली की राख को २१ वार गोमूत्र से भावित कर सुखा लें, पश्चात् मूषा में वह भस्म रख कर के उस में लौहभस्म भर कर ऊपर से फिर लौह को देवदाली भस्म से ढक कर मूषा का मुख बन्दकर अग्नि से तपावें। इस विधि से लौह की जल के सदृश द्रुति हो जाती है ॥ १४२–१४३ ॥

अथ कान्तलौहस्य विशेषमारणम्—

सुरदालिभवं भस्म नरमूत्रेण गालितम्।
त्रिःसप्तवारं तत्क्षारवापात्कान्तद्रुतिर्भवेत् ॥ १४४ ॥

देवदाली की राख को नरमूत्र से २१ वार भावितकर क्षारविधि से देवदाली भस्म का क्षार निकाल करके मूषायन्त्र में इस क्षार को और लौह भस्म को रखकर बन्द करके तीव्र अग्नि देने से कान्तलौह की द्रुति हो जाती है ॥ १४४ ॥

अथाष्टलोहानां द्रावणम्—

गन्धकं कान्तपाषाणं चूर्णयित्वा समं समम्।
द्रुते लोहे प्रतीवापो देयो लोहाष्टकं द्रवेत् ॥ १४५ ॥

सुवर्णादि अष्ट प्रकारके किसी भी लोह को पिघला कर गन्धक और कान्तलौह या चुम्बक पत्थर का चूर्ण डालता जाय तो उन सब की द्रुति होजाती है॥१४५॥

मतान्तरम्—

देवदाल्याद्रवैर्भाव्यं गन्धकं दिनसप्तकम्।
तेन प्रवापमात्रेण लोहं तिष्ठति सूतवत् ॥ १४६ ॥

अथवा गन्धक को सात दिन तक देवदाली (हस्तीघोषक) के रस से भावित करके चूर्ण करलें, फिर लौहों के अग्नि में पिघलते समय इस चूर्ण का प्रतिवाप (प्रक्षेपण) देने से वे पारद की तरह सर्वदा द्रुत अवस्था में ही रहते हैं ॥१४६॥

अशुद्धापक्वलोहदोषाः—

अशुद्धलोहं न हितं निषेवणादायुर्बलं कान्तिविनाशि निश्चितम्।
हृदि प्रपीडां तनुते ह्यपाटवं रुजं करोत्येव विशोध्य मारयेत् ॥१४७॥

अशुद्ध लोह का सेवन करना हितकर नहीं है, यह कान्ति, आयु और बल को

नष्ट करता है और हृदय में पीड़ा उत्पन्न करता है, शरीर को शिथिल कर देता है और रोग उत्पन्न करता है, इसलिये प्रथम लौह का उत्तम शोधनकर पश्चात् मारण करना चाहिए ॥ १४७ ॥

अथोत्तरोत्तरमधिकगुणकरं लोहम्—

किट्टाद्दशगुणं मुण्डं मुण्डात्तीक्ष्णं शतोन्मितम् ।
तीक्ष्णाल्लक्षगुणं कान्तं भक्षणात्कुरुते गुणान् ।
तस्मात्कान्तं सदा सेव्यं जरामृत्युहरं नृणाम् ॥ १४८ ॥
आयुष्प्रदाता बलवीर्यकर्ता रोगप्रहर्ता मदनस्य कर्ता ।
अयःसमानं न हि किञ्चिदन्यद्रसायनं श्रेष्ठतमं हि जन्तोः ॥१४९॥

किट्ट लौह से मुण्ड दसगुना लाभ कारक है और मुण्ड से तीक्ष्ण सौगुना अधिक लाभ करता है और तीक्ष्ण से कान्त लौह के सेवन के करने से लक्षगुणाधिक फल करता है, इसलिये सर्वदा जरा और मृत्यु को हरण करने वाले कान्त लौह का ही मनुष्यों को सेवन करना चाहिए । कान्त लौह आयु को बढाता है, बल, वीर्य और काम शक्ति को उत्पन्न करता है, रोगों को नष्ट करता है, इसलिये प्राणिमात्र के लिये लौह के समान गुणकारी अन्य कोई रसायन नहीं है ॥ १४८–१४९ ॥

अथ मण्डूरम्—

मण्डूरशोधनम्—

अक्षाङ्गारैर्धमेत्किट्टं लोहजं तद्गवां जलैः ।
सेचयेदक्षपात्रान्तः सप्तवारं पुनः पुनः ।
मण्डूरोऽयं समाख्यातश्चूर्णं श्लक्ष्णं प्रयोजयेत् ॥ १५० ॥

लौह से उत्पन्न किट्ट (मल) को बहेड़े की अग्नि में प्रतप्त कर गोमूत्र से भरे हुए बहेड़े के पात्र में सात वार बुझाने से मण्डूर शुद्ध होजाता है पश्चात् इसका महीन चूर्ण करके भस्म बनाकर योगों में प्रयोग करे ॥ १५० ॥

मतान्तरम्—

गोमुत्रैस्त्रिफला क्वाथ्या तत्क्वाथे सेचयेच्छनैः ।
लोहकिट्टं सुसन्तप्तं यावज्जीर्यति तत्स्वयम् ।
तच्चूर्णं जायते पेष्यं मण्डूरोऽयं प्रयोजयेत् ॥ १५१ ॥

अथवा गोमूत्र में त्रिफला का क्वाथ बनाकर इस क्वाथ में मण्डूर को अत्यन्त

प्रतप्त कर तब तक बुझावें जबतक वह स्वयं चूर्ण न हो जाय, बाद में इसे पीस-कर भस्म बनाकर प्रयोग करें, यही मण्डूर भस्म है ॥ १५१ ॥

लौहमण्डूरयोर्गुणसाम्यता—

ये गुणा मारिते मुण्डे ते गुणा मुण्डकिट्टके ।
तस्मात्सर्वत्र मण्डूरं रोगशान्त्यै प्रयोजयेत् ॥ १५२ ॥

इत्ययोऽधिकारः ।

जो गुण भस्म किये हुये मुण्ड लोह के सेवन से होते हैं वे ही गुण मुण्ड के किट्ट (मण्डूरभस्म) के सेवन से होते हैं, इसलिये सब जगह रोग की शान्ति के लिये मण्डूरभस्म का प्रयोग करना चाहिए ॥ १५२ ॥

अथ वङ्गनिरूपणम्—वङ्गस्य द्वैविध्यनिर्देशः—

खुरकं मिश्रकं चेति द्विविधं वङ्गमुच्यते ।
खुरं तत्र गुणैः श्रेष्ठं मिश्रकं न हितं मतम् ॥ १५३ ॥

खुरक और मिश्रक भेद से वङ्ग दो प्रकार का होता है, इन दोनों भेदों में से खुरक नाम का वङ्ग श्रेष्ठ है, किन्तु मिश्रक नाम का वङ्ग औषध कार्य में हित-कर नहीं है ॥ १५३ ॥

अथ खुरकवङ्गस्य मिश्रकवङ्गस्य च लक्षणम्—

धवलं मृदुलं स्निग्धं द्रुतद्रावं सगौरवम् ।
निःशब्दं खुरवङ्गं स्यात्; मिश्रकं श्यामशुभ्रकम् ॥ १५४ ॥

जो वङ्ग श्वेत, कोमल, स्निग्ध, वजन में भारी और अग्नि में तपाने पर शीघ्र द्रवित होने वाला तथा औषधियों के स्वरस में तपाकर बुझाने के समय अधिक शब्द न करे वह खुरक नाम का वङ्ग होता है। जो वङ्ग उक्त लक्षणों से विपरीत और श्वेत तथा काले रङ्ग का हो वह मिश्रक कहलाता है ॥ १५४ ॥

अथ वङ्गगुणाः—

वङ्गं तिक्तोष्णकं रूक्षमीषद्वातप्रकोपनम् ।
मेहश्लेष्मामयघ्नं च मेदोघ्नं कृमिनाशनम् ॥ १५५ ॥

वङ्ग तिक्त, उष्ण, रुक्ष और कुछ वात को कुपित करने वाला है तथा प्रमेह, श्लेष्मा (कफ) के विकार, क्रिमिजन्यरोग और मेदा को नष्ट करता है ॥१५५॥

अथ खुरकवङ्गशोधनम्—

द्रावयित्वा निशायुक्ते क्षिप्तं निर्गुण्डिकारसे ।
विशुद्ध्यति त्रिवारेण खुरवङ्गं न संशयः ॥ १५६ ॥

खुरक वङ्ग को अग्नि पर स्थित कड़ाही के अन्दर पिघला (द्रुत) कर हरिद्रा के चूर्ण से युक्त निर्गुण्डी के रस में तीन वार बुझाने से शुद्ध हो जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १५६ ॥

अथ मिश्रकवङ्गशोधनम्—

अम्लतक्रविनिक्षिप्तं वर्षाभूविषतिन्दुभिः ।
कट्फलाम्बुगतं वङ्गं द्वितीयं परिशुद्ध्यति ॥ १५७ ॥

मिश्रक वङ्ग को कड़ाही में पिगलाकर श्वेत पुनर्नवा और कुचले के चूर्ण से मिले हुए खट्टी तक्र (मट्ठे) में अथवा कायफल के क्वाथ में बुझाने से शुद्ध हो जाता है ॥ १५७ ॥

अथ नागवङ्गकांस्यताम्राणां सामान्यशोधनम्—

शुद्ध्यति नागो वङ्गो घोषो रविरातपेऽपि मुनिसङ्ख्यैः ।
निर्गुण्डीरससेकैस्तन्मूलरजःप्रवापैश्च ॥ १५८ ॥

नाग, वङ्ग, कांसे और ताम्र को निर्गुण्डी के रस से भरे हुए पात्र में डाल कर सात दिन तक धूप में रखना चाहिए अथवा उपर्युक्त नागादिकों को कड़ाही में अग्नि से द्रुत कर निर्गुण्डीचूर्ण में पकावें, इस तरह सात वार करने से वे शुद्ध हो जाते हैं ॥ १५८ ॥

अथ वङ्गभस्म—

सतालेनार्कदुग्धेन लिप्त्वा वङ्गदलानि च ।
बोधिचिञ्चात्वचःक्षारैर्दद्याल्लघुपुटानि च ।
मर्दयित्वा चरेद्भस्म तद्रसादिषु शस्यते ॥ १५९ ॥

शुद्ध वङ्ग के छोटे २ पत्र बनाकर उन्हें मदार के दुग्ध से पीसी हुई हरताल से लिप्त करदें, फिर उन्हें सकोरे में रखकर ऊपर और नीचे पीपल और इमली की छाल का क्षार रखकर दूसरे सकोरे के साथ कपड़ मिट्टी कर पुट देवें फिर इस को निकाल करके चूर्णकर भस्म बनालें, यह भस्म सर्वरसायनादि कार्यों में श्रेष्ठ है॥ १५९॥

मतान्तरम्—

प्रद्राव्य खर्परे वङ्गं षोडशांशं रसं क्षिपेत् ।

स्वल्पस्वल्पाऽऽलकं दत्त्वा भारद्वाजस्य काष्ठतः ।
मर्दयित्वा चरेद्भस्म तद्रसादिषु शस्यते ॥ १६० ॥

अथवा किसी खर्पर (लौहपात्र) में वङ्ग को अग्निद्वारा पिघाल (द्रुत) करके उसमें षोड़शांस शुद्ध पारद डालकर फिर उस में थोड़ा २ शुद्ध हरताल का चूर्ण डालताजाय और जङ्गली कपास के डण्डे से घोटता रहे, भस्म हो जाने पर उसका रसादिकार्यों में प्रयोग करें ॥ १६० ॥

मतान्तरम्—

पलाशद्रवयुक्तेन वङ्गपत्रं प्रलेपयेत् ।
तालेन पुटितं पश्चान्म्रियते नात्र संशयः ॥ १६१ ॥

अथवा वङ्ग के पत्रों को पलाशपुष्प अथवा पलाशजड़ के स्वरस से लिप्त कर समान भाग शुद्ध हरताल का चूर्ण मिलाकर के सम्पुट कर फूंकने से निश्चय ही वङ्ग की भस्म हो जाती है ॥ १६१ ॥

मतान्तरम्—

भल्लाततैलसंलिप्तं वङ्गं वस्त्रेण वेष्टितम् ।
चिञ्चापिप्पलपालाशकाष्ठाग्नौ याति पञ्चताम् ॥ १६२ ॥

अथवा शुद्ध वङ्ग के पत्रों को भिलावां के तैल से लिप्त करके ऊपर से साफ वस्त्र को लपेट दें, फिर उन्हें पीपल, इमली, पलाश, इन में से किसी एक की लकड़ियों की अग्नि में फूकने से भस्म होजाती है ॥ १६२ ॥

अथ वङ्गरसायनम्—

वङ्गभस्मसमं कान्तं व्योमभस्म च तत्समम् ।
मर्दयेत्कनकाम्भोभिर्निम्बपत्ररसैरपि ॥ १६३ ॥
दाडिमस्य मयूरस्य रसेन च पृथक् पृथक् ।
भूपालावर्तभस्माथ विनिक्षिप्य समांशकम् ॥ १६४ ॥
गोमूत्रकशिलाधातुजलैः सम्यग्विमर्दयेत् ॥
ततो गुग्गुलुतायेन मर्दयित्व दिनाष्टकम् ॥ १६५ ॥
विशोष्य परिचूर्ण्याथ समभागेन योजयेत् ।
घृष्टं बन्धुकनिर्यासैर्नाकुलीबीजचूर्णकैः ॥ १६६ ॥
ततः क्षिपेत्करण्डान्तर्विधाय पटगालितम् ।

गोतक्रपिष्टरजनीसारेण सह पाययेत् ॥ १६७ ॥
चतुर्भिर्वल्लकैस्तुल्यं रम्यं वङ्गरसायनम् ।
निश्चितं तेन नश्यन्ति मेहा विंशतिभेदकाः ॥ १६८ ॥
शालयो मुद्गसूपं च नवनीतं तिलोद्भवम् ।
पटोलं तिक्ततुण्डीरं तक्रं पथ्याय शस्यते ॥ १६९ ॥

इति वङ्गाधिकारः ।

वङ्ग भस्म के बराबर कान्त लौहभस्म और उतनी ही अभ्रक भस्म लेकर इन सब को खल्व में डालकर एक २ दिन तक धत्तूर और निम्बपत्र के स्वरस में मर्दन करना चाहिए, फिर इसी तरह दाड़िम के रस और अपामार्ग के रस से क्रमशः भावना देवें, पश्चात् इसमें वङ्ग के बराबर लाजवर्त की भस्म का एक भाग मिला कर के गोमूत्र और शिलाजीत के पानी से घोटें, फिर आठ दिन तक गूगल के पानी (क्वाथ) से घोट करके सुखालें, पश्चात् बन्धूकपुष्प (गुलदुपहरिया) के स्वरस या गोंद से घोट कर भावना दें, फिर इसमें तुल्य रास्ना बीज या सेमल बीज का चूर्ण मिला कर के खल्व में घोटकर वस्त्र से छान शीशी में भर लें। फिर इस सुन्दर वङ्ग रसायन को ४ वल्ल की मात्रा से हलदी के चूर्ण और गाय के तक्र के साथ सेवन करने से निश्चय ही बीस प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं। इस रसायनसेवन के साथ २ साठीचांवलों का भात, मूंग की दाल, नवनीत, (मक्खन) तिलतैल, परवर का शाक, करले का शाक, कड़वी कन्हरी या बिम्बीफल और तक्र ये पथ्य में लेना चाहिए ॥ १६३–१६९ ॥

अथ नागः—

शुद्धसीसकलक्षणम्—

द्रुतद्रावं महाभारं छेदे कृष्णसमुज्ज्वलम् ।
पूतिगन्धं बहिः कृष्णं शुद्धं सीसमतोऽन्यथा ॥ १७० ॥

जो सीस अग्नि में गर्म करने से शीघ्र पिघल (द्रुत) जाय, तोल में भारी, तोड़ने पर चमक लिये हुए कृष्ण वर्ण का हो, कुछ दुर्गन्ध युक्त हो, बाहर से देखने में काला हो वह औषध कार्य में श्रेष्ठ है इन लक्षणों से विपरीतलक्षण का नाग त्याज्य है ॥ १७० ॥

सीसकगुणाः—

अत्युष्णं सीसकं स्निग्धं तिक्तं वातकफापहम् ।
प्रमेहतोयदोषघ्नं दीपनं चामवातनुत् ॥ १७१ ॥

सीसा अत्यन्त उष्ण, स्निग्ध और तिक्तरसयुक्त होता है, तथा वात, कफ, प्रमेह,जल से जन्य रोग अथवा उदकमेह और आमवात को नष्ट करता है तथा अग्नि प्रदीप्त करता है ॥ १७१ ॥

अथ नागशुद्धिः—

सिन्दुवारजटाकौन्तीहरिद्राचूर्णकं क्षिपेत् ।
द्रुते नागेऽथ निर्गुण्ड्यास्त्रिवारं निक्षिपेद्रसे ॥
नागः शुद्धो भवेदेवं मूर्च्छास्फोटदिनाचरेत् ॥ १७२ ॥

नाग को कड़ाही में डालकर अग्नि पर कड़ाही को रख दें, जब नाग द्रवित हो जाय तब उसमें निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण, रेणुका का चूर्ण और हरिद्रा का चूर्ण डालकर कुछ देर तक घोटना चाहिए, पश्चात् निर्गुण्डीपत्र के स्वरस या क्वाथ में बुझावें, इस तरह तीन वार करने से नाग की शुद्धि हो जाती है और वह मूर्च्छा तथा फोड़े फुन्सी आदि विकारों को उत्पन्न नहीं करता है ॥ १७२ ॥

अथ नागभस्म—

तिर्यगाकारचुल्ल्यान्तु तिर्यग्वक्त्रं घटं न्यसेत् ॥
तं च वक्त्रं विना सर्वं गोपयेद्यत्नतो मृदा ॥ १७३ ॥
भ्रष्ट्यन्त्राभिधे तस्मिन् पात्रे सीसं विनिक्षिपेत् ।
पलविंशतिकं शुद्धमधस्तीव्रानलं क्षिपेत् ॥ १७४ ॥
द्रुते नागे क्षिपेत्सूतं शुद्धं कर्षमितं शुभम् ।
घर्षयित्वा क्षिपेत्क्षारमेकैकं हि पलं पलम् ॥ १७५ ॥
अर्जुनस्याक्षवृक्षस्य महाराजगिरेरपि ।
दाडिमस्य मयूरस्य क्षिप्त्वा क्षारं पृथक् पृथक् ॥ १७६ ॥
एवं विंशतिरात्राणि पचेत्तीव्रेण वह्निना ।
विघट्टयन्दृढं दोर्भ्यां लोहदर्व्या प्रयत्नतः ॥ १७७ ॥
रक्तं तज्जायते भस्म कपोतच्छायमेव वा ।
नागं दोषविनिर्मुक्तं जायतेऽतिरसायनम् ॥ १७८ ॥

टेढ़े आकार वाले बने हुए चूल्हे पर एक घड़े को तिर्यक् मुख करके रख दें, फिर उस घड़े के मुख को छोड़कर सर्वाङ्ग पर चिकनी मिट्टी का लेप कर दें, यही भ्राष्ट्रसंज्ञकयन्त्र कहलाता है। इस यन्त्र में २० पल (१ सेर) शुद्ध सीसा डालकर नीचे तेज आंच लगानी चाहिए। जब सीस द्रुत हो जाय तब उस यन्त्र में एक कर्ष श्रेष्ठ तथा शुद्ध पारद डालकर लोहे की कलच्छु से घोटें, कुछ देर बाद उस यन्त्र में अर्जुन वृक्ष की छाल, बहेड़े की छाल, अमलतास या शाकविशेष, दाड़िम (अनार) और अपामार्ग, इन सबका एक २ पल (४ तोला) क्षार डाल कर तीव्र अग्नि से २१ दिन तक पकाना चाहिए। साथ में लोहे की कलच्छू द्वारा दोनों हाथों से खूब घोटते रहना चाहिए। इस विधि से नाग की लाल या कबूतर के वर्ण (धूसर वर्ण) के समान भस्म हो जाती है। इस विधि से नाग सब दोषों से रहित होकर निरुत्थ भस्म के रूप में अत्यन्त गुणकारक रसायन हो जाता है॥ १७३–१७८॥

मतान्तरम्—

हतमुत्थापितं सीसं दशवारेण सिध्यति।
तन्मृतं सीसकं सर्वदोषमुक्तं रसायनम्॥ १७९॥

सीस की उपर्युक्तविधि से भस्म बनाकर ऊर्ध्वपातनयन्त्र में उसका उत्थापन करें, इस तरह दस बार करने से सीस की सब दोषों से रहित रसायन के उपयोगी निरुत्थ भस्म हो जाती है॥ १७९॥

अथ नागस्य निरुत्थभस्मीकरणम्—

अश्वत्थचिञ्चात्वग्भस्म नागस्य चतुरंशतः।
क्षिपेन्नागं पचेत्पात्रे चालयेल्लोहचाटुना॥ १८०॥
यावद्भस्म तदुद्धृत्य भस्मतुल्या मनःशिला।
जम्बीरैरारनालैर्वा पिष्ट्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत्॥ १८१॥
स्वाङ्गशीतं पुनः पिष्ट्वा विंशत्यंशशिलायुतम्।
अम्लेनैव तु यामैकं पूर्ववत्पाचयेत्पुटे॥
एवं षष्टिपुटैः पक्वो नागः स्यात्सुनिरुत्थकः॥ १८२॥

शुद्ध नाग को कड़ाही में द्रवित कर के उसमें नाग से चतुर्थांश पीपल और इमली की त्वचा की राख डालकर लौह दण्ड से एक प्रहर तक खूब घोटना

चाहिए। एक प्रहर के बाद भस्म को निकाल कर, उसमें बराबर शुद्धमनः शिला मिलाकर के जम्बीररस या काञ्जी से घोटकर सम्पुट में बन्दकर के फूंक दें। एक प्रहर के पश्चात् स्वाङ्गशीत होने पर पुट से निकालकर फिर बीसवें भाग की मात्रा में मनःशिला मिला कर किसी अम्ल से घोटकर सम्पुट कर के एक प्रहर तक पकाना चाहिए। इस तरह प्रत्येक पुट में बीसवां भाग मनःशिला मिला कर ६० पुट देने से नाग की अत्यन्त गुणकर निरूत्थ भस्म हो जाती है ॥ १८०–१८२ ॥

अथ मतान्तरम्—

शिलया रविदुग्धेन नागपत्राणि लेपयेत् ।
मारयेत्पुटयागेन निरूत्थं जायते तथा ॥ १८३ ॥

अथवा शुद्धनाग के पत्रों पर मदार के दुग्ध में घोटी हुई मनःशिला की पिष्टी का लेप कर पुटकी विधि से १० या १५ पुट देने से नाग की निरूत्थ भस्म हो जाती है ॥ १८३ ॥

अथ नागरसायनम्—

एवं नागोद्भवं भस्म ताप्यभस्मार्धभागिकम् ।
पादं पादं क्षिपेद्भस्म शुल्वस्य विमलस्य च ॥ १८४ ॥
कान्ताभ्रसत्त्वयोश्चापि स्फटिकस्य पृथक् पृथक् ।
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य पुटेत्त्रिफलवारिणा ॥ १८५ ॥
त्रिंशद्वनगिरिण्डैश्च त्रिंशद्वारं विचूर्णयेत्तत ।
व्योषवेल्लकचूर्णैश्च समांशैः सह मेलयेत् ॥ १८६ ॥
मध्वाज्यसहितं हन्ति प्रलीढं वल्लमात्रया ।
अशीतिवातजान्रोगान्धनुर्वातं विशेषतः ॥ १८७ ॥
कफरोगानशेषांश्च मूत्ररोगांश्च सर्वशः ।
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुंश्वयथुं शीतकज्वरम् ॥ १८८ ॥
ग्रहणीमामदोषं च वह्निमान्द्यं सुदुर्जरम् ।
सर्वानुदकदोषांश्च तत्तद्रोगानुपानतः ॥ १८९ ॥

उपर्युक्तविधि से बनाई हुई सीसे की भस्म एक भाग तथा सुवर्णमाक्षिकभस्म अर्द्धभाग तथा ताम्रभस्म, विमलभस्म कान्तलोहभस्म, अभ्रकसत्व, स्फटिकभस्म, ये प्रत्येक सीस भस्म से चतुर्थांश लेना चाहिए इन सबको खरल में एकत्र कर

त्रिफला के क्काथ से घोटकर तीस जंगली उपलों के अन्दर पुट देना चाहिए, फिर स्वाङ्गशीत होने के बाद निकालकर खरल में त्रिफलाकाथ से घोटकर पुट देवें। इस तरह तीस वार पुट देकर भस्म बनाले, फिर इसभस्म की एक वल्ल (दो रत्ती) की मात्रा में समानभाग त्रिकटुचूर्ण और वायविडङ्गचूर्ण मिलाकर शहद और मक्खन के साथ सेवन करने से अस्सी प्रकार के वातरोग, विशेष कर धनुर्वात, सम्पूर्ण कफ के रोग, मूत्र के रोग, श्वास, कास, क्षय, पाण्डु, शोथ, शीतज्वर, ग्रहणी, आमदोष, मन्दाग्नि तथा सर्व प्रकार के जलदोष से उत्पन्न रोग भिन्न २ अनुपान के साथ सेवन से नष्ट हो जाते हैं॥ १८४–१८९ ॥

अथ पित्तलम्—

पित्तलभेदाः—

रीतिका काकतुण्डी च द्विविधं पित्तलं भवेत् ॥ १९० ॥

पीतलधातु दो प्रकार की होती है, एक को रीतिका तथा द्वितीय भेद को काकतुण्डी कहते हैं ॥ १९० ॥

रीतिकालक्षणम्—

सन्ताप्य काञ्जिके क्षिप्ता ताम्राभा रीतिका मता ॥ १९१ ॥

पीतल को अग्नि में तपाकर काञ्जी में बुझाने से यदि वह ताम्बे के रङ्ग की हो जाय तो वह रीतिका पित्तल कहलाती है ॥ १९१ ॥

काकतुण्डीलक्षणम्—

एवं या जायते कृष्णा काकतुण्डीति सा मता ॥ १९२ ॥

पीतल को अग्नि में प्रतप्त कर काञ्जी में बुझाने से यदि वह कृष्णवर्ण की हो जाय तो काकतुण्डी पित्तल कही जाती है ॥ १९२ ॥

अथ रीतिकाया गुणाः—

रीतिस्तिक्तरसा रूक्षा जन्तुघ्नी सास्रपित्तनुत् ।
पाण्डुकुष्ठहरा योगात्सोष्णवीर्या च शीतला ॥ १९३ ॥

रीतिका नाम की पीतल स्वाद में तिक्त, रूक्ष, जन्तुनाशक, रक्तपित्त और कुष्ठ को नाश करनेवाली और पांण्डुरोग नाशक है। शीतल पदार्थों के साथ सेवन करने से शीतवीर्य और उष्ण पदार्थों के साथ उष्णवीर्य है ॥ १९३ ॥

अथ काकतुण्ड्या गुणाः—

काकतुण्डी गतस्नेहा तिक्तोष्णा कफपित्तनुत् ।
यकृत्प्लीहहरा शीतवीर्या च परिकीर्तिता ॥ १९४ ॥

काकतुण्डी नामक पीतल रूक्ष, कटु, उष्णवीर्य्य, कफपित्तनाशक और यकृत और प्लीहवृद्धि को नष्ट करती है तथा यह शीतवीर्य्य होती है ॥ १९४ ॥

अथ शुभरीतिकालक्षणम्—

गुर्वी मृद्वी च पीनाभा साराङ्गो ताड़नक्षमा ।
सुस्निग्धा मसृणाङ्गी च रीतिरेतादृशी शुभा ॥ १९५ ॥

जो पीतल वजन में भारी, मृदु, पीतवर्णयुक्त, आघात से नहीं टूटने वाली और दृढ, अत्यन्त स्निग्ध तथा मसृण होतो वह पीतल औषध कर्म में श्रेष्ठ है॥१९५॥

अशुभरीतिलक्षणम्—

पाण्डुपीता खरा रूक्षा बर्वरा ताडनक्षमा ।
पूतिगन्धा तथा लघ्वी रीतिर्नेष्टा रसादिषु ॥ १९६ ॥

जो पीतल पाण्डुता तथा पीलेवर्ण वाली, खर, रूक्ष, आघात से टूटने वाली, लघु और दुर्गन्ध युक्त हो वह रसादि कर्म में श्रेष्ठ नहीं है ॥ १९६ ॥

रीतिकाशोधनम्—

तप्त्वा क्षिप्त्वा च निर्गुण्डोरसे श्यामारजोऽन्विते ।
पञ्चवारेण संशुद्धिं रीतिरायाति निश्चितम् ॥ १९७ ॥

पीतल को अग्नि में प्रतप्त कर हरिद्राचूर्ण से युक्त निर्गुण्डी के रस में ५ वार बुझाने से वह निश्चय ही शुद्ध हो जाती है ॥ १९७ ॥

रीतिकामारणम्—

निम्बूरसशिलागन्धवेष्टिता पुटिताऽष्टधा ।
रीतिरायाति भस्मत्वं ततो योज्या यथायथम् ॥ १९८ ॥

शुद्ध पीतल के छोटे छोटे पत्र बनाकर उनकी बराबर शुद्ध गन्धक और मन शिला को निम्बू के रस में पीसकर पत्रों पर लेप कर देना चाहिए। फिर सम्पुट में बन्द कर पुट देवें, इस तरह आठ पुट देने से पीतल की श्रेष्ठ भस्म हो जाती है। इसको शास्त्रानुसार योगों में प्रयुक्त करना चाहिए ॥ १९८ ॥

मतान्तरम्—

ताम्रवन्मारणं तस्याः कृत्वा सर्वत्र योजयेत् ॥ १९९ ॥

अथवा ताम्रभस्म विधि से पीतल की भस्म बना कर सब जगह उसका प्रयोग करें ॥ १९९ ॥

पित्तलरसायनम्—

मृतारकूटकं कान्तं व्योमसत्त्वं च मारितम् ।
त्रयं समांशकं तुल्यं व्योषं जन्तुघ्नसंयुतम् ॥ २०० ॥
ब्रह्मबीजाजमोदाऽग्निभल्लाततिलसंयुतम् ।
सेवितं निष्कमात्रं हि जन्तुघ्नं कुष्ठनाशनम् ।
विशेषाच्छ्वेतकुष्ठघ्नं दीपनं पाचनं हितम् ॥ २०१ ॥

पीतलभस्म, कान्तलौहभस्म, मारित अभ्रकसत्त्व, इन तीनों को समान भाग ले कर खरल में घोट कर बराबर सोंठ, मीर्च, पीपल, वायविडङ्गा, ढाक के बीज, अजमोद और चित्रक के चूर्ण के साथ एक निष्क (४ मासे) की मात्रा के सेवन करने से कृमि, कुष्ठ और विशेषकर श्वेतकुष्ठ को नष्ट करती है तथा दीपन और पाचन है ॥ २००–२०१ ॥

पित्तलद्रुतिः—

सुवर्णरीतिकाचूर्णं भक्षितं वेष्टितं पुनः ।
छागेन कृष्णवर्णेन मत्तेन तरुणेन च ॥ २०२ ॥
तल्लिप्तं खर्परे दग्धं द्रुतिं मुञ्चति शोभनाम् ।
चतुर्दशलसद्वर्णसुवर्णसदृशच्छविः ।
देहलोहकरी प्रोक्ता युक्ता रसरसायने ॥ २०३ ॥

इति पित्तलाधिकारः ।

सुवर्ण के समान उत्तम पीतवर्ण के शुद्ध पित्तल चूर्ण को किसी खाद्य पदार्थ के साथ मिलाकर काले और हृष्ट पुष्ट जवान बकरे को खिला देना चाहिए, फिर बकरे की विष्ठा (मींगणियां) को द्रावक वर्ग की औषधियों के साथ पीस कर मिट्टी के खर्पर में लिप्तकर अग्नि में जला देने से चोदह प्रकार के वर्ण से युक्त सुवर्ण के समान चमकदार उत्तम पीतल की द्रुति हो जाती है, इसका रस और रसायन कर्म में प्रयोग करने से देह लोह के समान दृढ और स्थिर हो जाती है ॥ ३०२–२०३ ॥

अथ कांस्यम्—

कांस्योत्पत्तिवर्णनम्—

अष्टभागेन ताम्रेण द्विभागखुरकेण च।
विद्रुतेन भवेत्कांस्यं तत्सौराष्ट्रभवं शुभम् ॥ २०४ ॥

आठभाग ताम्र, दो भाग खुरक वङ्ग, इनदोनों को अग्नि में द्रुत करके मिलाने से कांस्य (कृत्रिम) बनता है। इसी विधि से खानों के अन्दर भी इसकी उत्पत्ति होती है, सौराष्ट्र देश का बना कांसा शुभ होता है ॥ २०४ ॥

अथ प्रशस्तकांस्यलक्षणम्—

तीक्ष्णशब्दं मृदु स्निग्धमीषच्छ्यामलशुभ्रकम्।
निर्मलं दाहरक्तं च षोढा कांस्यं प्रशस्यते ॥ २०५ ॥

जो कांसा बजाने से तेज शब्द करता हो और मृदु, स्निग्ध तथा कुछ श्यामता युक्त शुभ्र (श्वेत) वर्ण का हो, निर्मल तथा अग्नि में तपाने से रक्तवर्ण का हो जाय इन लक्षणों वाला कांसा श्रेष्ठ होता है ॥ २०५ ॥

त्याज्यकांस्यलक्षणम्—

तत्पीतं दहने ताम्रं खरं रूक्षं घनासहम्।
मन्दनादं गतज्योतिः सप्तधा कांस्यमुत्सृजेत् ॥ २०६ ॥

जिस कांसे का वर्ण पीला हो तथा अग्नि में तपाने से ताम्बे के समान वर्ण हो जाय तथा खर, रुक्ष, पीटने से टूटने वाला, ताड़न करने पर मन्द शब्द करने वाला और कान्ति रहित हो, इन सात लक्षणों वाला कांस्य औषध कर्म में त्याज्य है ॥ २०६ ॥

अथ कांस्यगुणाः—

कांस्यं लघु च तिक्तोष्णं लेखनं दृक्प्रसादनम्।
कृमिकुष्ठहरं वातपित्तघ्नं दीपनं हितम् ॥ २०७ ॥
घृतमेकं विना चान्यत्सर्वं कांस्यगतं नृणाम्।
भुक्तमारोग्यसुखदं हितं सात्म्यकरं तथा ॥ २०८ ॥

कांस्य लघु, तिक्त, उष्ण और लेखन होता है तथा कृमि, कुष्ठ, वात, पित्त का नाशक, अग्नि को दीप्त करने वाला और दृष्टि को बढ़ाता है तथा हितकर है। कांसे के बने पात्र में घृत को छोड़कर अन्य भोज्य पदार्थ रखकर खाने से मनुष्यों

के लिये आरोग्य और सुख प्रद है और शरीर के या प्रकृति के लिये सात्म्य होता है ॥ २०७–२०८ ॥

अथ कांस्यशोधनम्—

तप्तं कांस्यं गवां मूत्रे वापितं परिशुध्यति ॥ २०९ ॥

कांसे को अग्नि में प्रतप्त कर गोमूत्र में सातवार बुझानेसे वह शुद्ध होजाता है॥२०९॥

अथ कांस्यमारणम्—

म्रियते गन्धतालाभ्यां निरुत्थं पञ्चभिः पुटैः ॥ २१० ॥

कांस्य के पत्रोंपर निम्बूरस से घोटे हुए गन्धक और मनःशिला का लेपकर पांच पुट देने से उसकी निरुत्थ भस्म हो जाती है ॥ २१० ॥

मतान्तरम्—

त्रिक्षारं पञ्चलवणं सप्तधाऽम्लेन भावयेत् ॥
कांस्याऽऽरकूटपत्राणि तेन कल्केन लेपयेत् ।
रुद्ध्वा गजपुटे पक्वं शुद्धभस्मत्वमाप्नुयात् ॥ २११ ॥

इति कांस्याधिकारः ।

सज्जिखार, जवाखार, टङ्कण और पांचो नमक (सौवर्चल, सैन्धव, विड, औद्भिद, सामुद्र) इनको किसी अम्लरस से सातवार भावित कर कांस्य तथा पीतल के पत्रों पर लेप करके सम्पुट में बन्द कर गज पुट में फूंक देने से कांसे या पीतल की उत्तम भस्म हो जाती है ॥ २११ ॥

अथ वर्तलोहम्—

वर्तलोहस्वरूपः—

कांस्यार्करीतिलोहाऽहिजातं तद्वर्तलोहकम् ।
तदेव पञ्चलोहाख्यं लोहविद्भिरुदाहृतम् ॥ २१२ ॥

कांस्य, ताम्र, पित्तल, लोह, सीस इनको गला कर मिला देने से जो धातु बनती है उस को लोहके विशेषज्ञ वर्तलोह या लोहपञ्च या पञ्चलोह (भरत) कहते हैं॥२१२॥

अथ वर्तलोहगुणाः—

हिमाम्लं कटुकं रूक्षं कफपित्तविनाशनम् ।
रुच्यं त्वच्यं कृमिघ्नं च नेत्र्यं मलविशोधनम् ॥ २१३ ॥
तद्भाण्डे साधितं सर्वमन्नव्यञ्जनसूपकम् ।

अम्लेन वर्जितं चापि दीपनं पाचनं हितम् ॥ २१४ ॥

वर्तलोह (भरत) शीतवीर्य्य, अम्ल, कटु, रुक्ष, कफपित्त और कृमि को नष्ट करता है, त्वचा और नेत्र के विकारों में हितकर तथा रुचिकारक और मल-शोधक होता है तथा भरत के बने हुए पात्र में अम्ल पदार्थ के अतिरिक्त और अन्य सर्व प्रकार के अन्न, शाक, दाल इत्यादि बनाकर खाने से अग्नि अत्यन्त दीप्त होती है तथा पाचकशक्ति भी बढती है ॥ २१३-२१४ ॥

वर्तलोहशोधनम्—

द्रुतमश्वजले क्षिप्तं वर्तलोहं विशुध्यति ॥ २१५ ॥

वर्तलोह को अग्नि पर पिघलाकर तुरन्त ही घोड़े के मूत्र में बुझाने से वह शुद्ध होजाता है ॥ २१५ ॥

वर्तलोहमारणम्—

म्रियते गन्धतालाभ्यां पुटितं वर्तलोहकम् ।
तेषु तेष्विह योगेषु योजनीयं यथाविधि ॥ २१६ ॥

इति वर्तलोहाधिकारः।

शुद्धवर्त लोंह के छोटे २ पत्र या टुकड़े करके उन पर समानभाग गन्धक और शुद्ध हरताल को निम्बू के रस में घोटकर लेप कर देना चाहिए, पश्चात् सम्पुट में बन्द करके गजपुट में सात वार फूंक देना चाहिए, इस तरह बनी भस्म को यथाशास्त्र सर्वप्रयोगों में प्रयुक्त करनी चाहिए ॥ २१६ ॥

अथ रसोपररसलोहानां सूतसाधकत्वनिर्देशः—

जातिमद्भिर्विशुद्धैश्च विधिना परिसाधितैः ।
रसोपरसलोहाद्यैः सूतः सिध्यति नान्यथा ॥ २१७ ॥

जो रस उपरस और लोह उत्तमजाति के हों तथा विधिपूर्वक शुद्ध और भस्म किये गये हों उन्हीं के संसर्ग से पारद सिद्ध होकर शरीर को अजर अमर बनाता है, इनके विना पारद भी सिद्ध नहीं होता है ॥ २१७ ॥

रत्नादीनां सूतयोग्यत्वनिर्देशः—

रत्नानि लोहानि वराटशुक्तिपाषाणजातं खुरशृङ्गशल्यम् ।
महारसाद्येषु कठोरदेहं भस्मीकृतं स्यात्खलु सूतयोग्यम् ॥ २१८ ॥

सर्वप्रकार के रत्न, लोह (सप्त या अष्ट धातु) कौड़ी, शुक्ति, पाषाणजाति या

पाषाण से उत्पन्न होने वाले खनिज पदार्थ, खुर, सींग, शल्य (अस्थि) और महारसादियों में जो कठिन (दृढाङ्ग) पदार्थ वैक्रान्त, माक्षिक आदि हैं, उन्हें विधिपूर्वक शुद्ध करके भस्म के रूप में बनाने पर ही वे पारद के कार्य में उपयुक्त हो सकते हैं, अतः बुद्धिमान् को चाहिए कि यथाशास्त्र इनकी शुद्धि तथा भस्म करें ॥ २१८ ॥

भूनागसत्त्वपातनम्—

वज्राणां द्रावणार्थाय सत्त्वं भूनागजं ब्रुवे ।
तदेव परमं तेजः सूतराजेन्द्रवज्रयोः ॥ २१९ ॥
धौतभूनागसम्भूतं मर्दयेद्भृङ्गजद्रवैः ।
निम्बूद्रवैश्च निर्गुण्ड्याः स्वरसैस्त्रिदिनं पृथक् ॥ २२० ॥
तद्द्रावणगणोपेतं सम्मर्द्य वटकीकृतम् ।
निरुध्य दृढमूषायां द्विदण्डं प्रधमेद् दृढम् ॥ २२१ ॥
स्वतः शीतं समाहृत्य पट्टके विनिवेश्य तत् ।
खकान् राजिकातुल्यान्त्रणूनतिभरान्वितान् ॥ २२२ ॥
द्वादशांशार्कसंयुक्तान्ध्रमित्वा खकान्हरेत् ।
प्रक्षाल्य खकानाशु समादाय प्रयत्नतः ॥ २२३ ॥
वज्रादिद्रावणं तेन प्रकुर्वीत यथेप्सितम् ।
खरसत्त्वमिदं प्रोक्तं रसायनमनुत्तमम् ।
द्वित्रिमूषासु चैकस्यां सत्त्वं भवति निश्चितम् ॥ २२४ ॥

भूनाग (केंचुआअर्थवर्म) का सत्त्व हीरकादि वज्रों के द्रावण करने में अत्यन्त उत्तम है तथा पारद और हीरक की शक्ति को बढाता है, इस लिये इस सत्त्व के पातन की विधि कहता हूं। जल से अच्छी प्रकार धोये हुए केंचुओं को सुखा कर उनका चूर्ण बना लेना चाहिए, फिर इस चूर्ण को भृङ्गराजरस (भांगरा), निम्बूरस और निर्गुण्डी स्वरस, से पृथक् २ तीन २ दिन तक मर्दनकरके द्रावक वर्ग के पदार्थ मिलाकर घोट लेना चाहिए। फिर टिकिया बनाकर एक मजबूत मूषा के अन्दर बन्द करके दो दण्ड (४८ मिनट) तक तेज अग्निद्वारा फूंकना चाहिए। स्वाङ्गशीत होने पर मूषा से उनको निकाल कर किसी पट्ट (काष्ठपट्ट यावस्त्र) पर डाल कर या वस्त्र से छान करके राई के बराबर मोटे २ तथा वजनी सत्त्व

कणों को एकत्र करके उनमें १२ वां भाग शुद्ध ताम्र का चूर्ण मिला कर मूषायन्त्र में बन्द करके फूंक दें, फिर उन सत्त्वकणों को निकाल के जल से धोकर रख लेना चाहिए। इन से वज्रादि का द्रावण करना चाहिए। यह सत्त्व अत्यन्त उत्तम रसायन है तथा इसे खर सत्त्व कहते हैं, इस सत्त्व को सम्पूर्ण निकालने के लिये दो या तीन मूषा लेकर विधिपूर्वक कार्य करना चाहिए। कभी २ एक ही मूषा के द्वारा सम्पूर्ण सत्त्व निकल जाता है ॥ २१९–२२४ ॥

मतान्तरम्—

भुजङ्गमानुपादाय चतुष्प्रस्थसमन्वितान् ।
सुवर्णरूप्यताम्रायस्कान्तसभूतिभूमिजान् ॥ २२५ ॥
प्रक्षाल्य रजनीतोयैः शीतलैश्च जलैरपि ।
उपोषितं मयूरं वा शूरं वा चरणायुधम् ॥ २२६ ॥
क्रमेण चारयित्वाथ तद्विष्ठां समुपाहरेत् ।
क्षाराम्लैः सह सम्पेष्य विशोष्य च खरातपे ॥ २२७ ॥
ततः खर्परके क्षिप्त्वा भर्जयित्वा मषीं चरेत् ।
मषीं द्रावणवर्गेण संयुक्तां सम्प्रमर्दिताम् ॥ २२८ ॥
निरुध्य कोष्ठिकामध्ये प्रधमेद्घटिकाद्वयम् ।
शीतलीभूतमूषायाः खोटमाहृत्य पेषयेत् ॥ २२९ ॥
प्रक्षाल्य रवकान् सूक्ष्मान् समादाय प्रयत्नतः ।
सुवर्णमानवद् ध्मात्वा रवं कृत्वा नियोजयेत् ॥ २३० ॥

सुवर्ण, रजत, ताम्र, कान्तलौह इत्यादि धातुएं जिन खानों से निकलती हैं उन खानों की मिट्टी में उत्पन्न होने वाले केंचुए ४ प्रस्थ (२५६ या ३ सेर १६ तो०) लेकर उन को हरिद्रा के स्वरस या क्वाथ से प्रथम अच्छी तरह धोकर दूसरी बार शीतल जल से धो कर साफ कर लेना चाहिए। फिर उन्हें एक भूँखे मयूर या नवान कुक्कुट (मूर्गा) को खिला देवें। पश्चात् उस मयूर या मूर्गे की विष्ठा (केंचुएं के खाने से निकली हुई) को लेकर खल्व में क्षार और अम्ल वर्ग के पदार्थों के साथ घोटकर तेज धूप में सुखा लें, सूखने पर एक मिट्टी के खर्पर में उसे भूंजकर मषी अथवा कज्जली अथवा राख बनालेवें, फिर इस राख को द्रावकवर्ग की औषधियों के साथ घोटकर मूषायन्त्र में बन्दकर दो घड़ी तक

अग्नि में फूंके, स्वाङ्गशीत होने पर मूषा से भूनाग सत्त्व को निकालकर खल्व में पीस करके धोकर छोटे २ सत्त्व के कणों को यत्नपूर्वक निकाल लें, पश्चात् उन्हें मूषायन्त्र में बन्दकर स्वर्णद्रावण की विधि के अनुसार गला कर निकाल लें, फिर चूर्ण कर प्रयोग करना चाहिए ॥ २२५–२३० ॥

अथ भूनागमुद्रिका—

भूनागोद्भवसत्त्वमुत्तममिदं श्रीसोमदेवोदितं
दत्तं पादमितं द्विशाणकनकेनैकं गतेनोर्मिकाम् ।
तद्धौताम्बुविलेपितं स्थिरचराद्भूतं विषं नेत्ररुक्
शूलं मूलगदं च कर्णजरुजो हन्यात्प्रसूतिग्रहम् ॥ २३१ ॥

इति भूनागाधिकारः ।

श्रीसोमदेव के द्वारा कथित उत्तम भूनागसत्त्व चतुर्थांश (२ मासा) लेकर दो शाण (८ मासा) स्वर्ण के साथ गलाकर दोनों को मिला कर एक अंगूठी बनवा लेनी चाहिए, फिर उस अगूंठी को पानी में डाल कर निकाल लें, वह अगूंठी का पानी स्थावर और जंगमविषबाधा, नेत्ररोग, शूल, अर्श, कर्णरोग और प्रसूति-रोग को स्पर्शमात्र से नष्ट कर देता है ॥ २३१ ॥

अथ तैलपातनविधिः ।

मूलान्युत्तरवारुण्या जर्जरीकृत्य काञ्जिके ।
क्षिपेदङ्कोल्लबीजानां पेषिकां जर्जरीकृताम् ॥
तत्तैलं घृतवत्स्त्यानं ग्राह्यं तत्तु यथाविधि ॥ २३२ ॥

तैल भी बीजों का सत्त्व होता है इस लिये सत्त्व पातन के प्रकरण में उनके निकालने की विधि लिखते हैं । इन्द्रवारुणी की जड़ को काञ्जी में पीसकर उसमें अंकोल के बीजों को पीस कर मिला देना चाहिए, फिर एक वस्त्र की बनी हुई पोटली में इनको रखकर तेज धूप में किसी लकड़ी के सहारे लटका देना चाहिए । जब पोटली से तैल नीचे रखे बर्तन में चूकर घी के समान (गाढ़ा) घनीभूत हो जाय तब किसी पात्र (शीशी) में ले लेना चाहिए ॥ २३२ ॥

मतान्तरम्—

सम्पेष्योत्तरवारुण्याः पेटकार्या दलान्यथ ।
काञ्जिकेन ततस्तेन कल्केन परिमर्दयेत् ॥ २३३ ॥

रजश्चाङ्कोल्लबीजानां तद्बध्वा विरलाम्बरे ।
तद्विलम्ब्याऽऽतपे तीव्रे तस्याधश्चषकं न्यसेत् ॥
तस्मिन्निपतितं तैलमादेयं श्वित्रनाशनम् ॥ २३४ ॥

अथवा इन्द्रायण के पत्ते तथा ज्योतिष्मती (मालकंगुनी) के पत्तों को काञ्जी में बारीक पीस कर कल्क बना लें, फिर इस कल्क के साथ अङ्कोल के बीजों के चूर्ण को पीस कर एक पतले वस्त्र में रख कर पोट्टली बनालें, फिर इस पोटली को तेज धूप में लटका करके नीचे एक काच का प्याला रख दें, फिर धूप के कारण पोट्टली से तैल चूकर प्याले में इकट्ठा हो जाता है, इस तैल को श्वेत कुष्ठ पर लगाने से वह अच्छा हो जाता है ॥ २३३–२३४ ॥

मतान्तरम्—

अङ्कोल्लबीजसम्भूतं चूर्णं सम्मर्द्य काञ्जिकैः ।
एकरात्रोषितं तत्तु पिण्डीकृत्य ततः परम् ॥ २३५ ॥
स्वेदयेत्कन्दुके यन्त्रे घटिकाद्वितयं ततः ।
तां च पिण्डीं दृढे वस्त्रे बद्ध्वा निष्पीड्य काष्ठतः ॥२३६॥
अधः पात्रस्थितं तैलं समाहृत्य नियोजयेत् ।
एवं कन्दुकयन्त्रेण सर्वतैलान्युपाहरेत् ॥ २३७ ॥

अथवा अङ्कोल बीज के चूर्ण को काञ्जी से घोटकर रात्रिपर्यन्त रख दें, फिर उस चूर्ण का गोला बना कर के एक हण्डिका में पानी भर कर गले पर एक वस्त्र बांध देना चाहिए। उस वस्त्र के मध्य भाग में गोला रख कर ऊपर से एक सकोरे से ढक कर के बन्द कर देना चाहिए, पश्चात् उस यन्त्र (कन्दुकनामक) को अग्नि पर चढाकर दो घड़ी तक स्वेदन करना चाहिए। बाद में उस स्वेदित गोले को मजबूत वस्त्र के अन्दर बांधकर दो काष्ठों के बीच दबाकर नीचे के पात्र में निकले हुए तैल को निकाल कर यथामति सर्वत्र प्रयोग करें, इसी प्रकार बनाये हुए कन्दुक नाम के यन्त्र से सर्व प्रकार के तैलों को निकालना चाहिए ॥२३५–२३७॥

मतान्तरम्—

अङ्कोलस्यापि तैलं स्यात्काकतुण्ड्या समूलया ॥ २३८ ॥

अथवा जड़ के सहित श्वेत गुञ्जा को पीस कर उसके रस से अङ्कोल के बीजों

को घोट कर कन्दुकनामक (१)यन्त्र से तैल निकालते हैं ॥ २३८ ॥

तैलपातनम्—

बाकुचीदेवदाल्याश्च कर्कोटीमूलतो भवेत् ॥ २३९ ॥

कर्कोटी (बांझककोड़ा) के जड़ के रस से बाकुची और वन्दाल के बीजों को पीस कर उपर्युक्तविधि से तैल निकालते हैं ॥ २३९ ॥

अथ विषमुष्टितैलपातनम्—

अपामार्गकषायेण तैलं स्याद्विषमुष्टिजम् ॥ २४० ॥

अपामार्ग के स्वरस से कुचले को घोट कर उपर्युक्तिविधि से तैल निकालते हैं॥२४०॥

अथ जैपालतैलपातनम्—

मूलक्वाथैः कुमार्याश्च तैलं जेपालजं हरेत् ॥ २४१ ॥

घृतकुमारी की जड़ के रस से जैपाल (जमालगोटा) बीज को पीसकर तैल निकालना चाहिए ॥ २४१ ॥

बाकुचीतैलाहरणविधिः—

क्वाथैरक्तापमार्गस्य बाकुचीतैलमाहरेत् ॥ २४२ ॥

लाल अपामार्ग (लालदण्डी घोंघा) के क्वाथ से बाकुची बीजों को घोट कर तैल निकालना चाहिए ॥ २४२ ॥

अथ कृष्णमिश्रश्वेतगुञ्जाबीजत्तैलपातनविधिः—

कृष्णायाः काकतुण्डयाश्च बीजचूर्णानि कारयेत् ।
कान्तपाषाणचूर्णं च एकीकृत्य निरोधयेत् ।
धान्यराशिगतं पश्चादुद्धृत्य तैलमाहरेत् ॥ २४३ ॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये 'लोहशोधनमारणादिनिरूपणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पिप्पली, श्वेतगुञ्जा और कान्तपाषाण का चूर्ण, इन सब को बराबर २ लेकर जल से पीस लें । फिर इस कल्क को किसी पात्र में बन्दकर धान के ढेर में एक

---

(१) साम्बुस्थालीमुखे बद्धे वस्त्रे स्वेद्यं निधाय च ।
पिधाय पच्यते यत्र तद् यन्त्रं कन्दुकं स्मृतम् ॥

पक्ष तक गाड़ देना चाहिए । फिर इस कल्क को दो काष्ठ के पट्टों के बीच में दबाकर तैल निकालना चाहिए ॥ २४३ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्य-भाषाटीकायां लोहशोधनमारणादिनिरूपणं नाम पञ्चमोऽध्यायः।

अथ षष्ठोऽध्यायः।

शिष्योपानयननिरूपणम्—

अथ क्रमयुक्तशास्त्रम्—

रसशास्त्राणि सर्वाणि समालोच्य यथाक्रमम्।
साधकानां हितार्थाय प्रकटीक्रियतेऽधुना ॥ १ ॥

यथाक्रम से सब रस के शास्त्रों का उत्तम प्रकार से अवलोकन कर रस शास्त्र को जानने की इच्छा वाले साधकों के हित के लिये रसशास्त्र का वर्णन किया जाता है॥ १॥

शास्त्रक्रमयोः परस्परापेक्षा—

न क्रमेण विना शास्त्रं न शास्त्रेण विना क्रमः।
शास्त्रं क्रमयुतं ज्ञात्वा यः करोति स सिद्धिभाक् ॥ २ ॥

जिस शास्त्र में पौर्वापर्य्यरूप क्रम नहीं रहता है वह शास्त्र उत्तमशास्त्र नहीं है और शास्त्रप्रमाण से शून्य क्रम भी उत्तम क्रम नहीं है, इस कारण जो साधक क्रमानुसार शास्त्र को जान कर रसादिकर्म करने में प्रवृत्त होता है वही सिद्धि को प्राप्त करता है ॥ २ ॥

रसविद्यागुरुः—

आचार्यो ज्ञानवान्दक्षो रसशास्त्रविशारदः।
मन्त्रसिद्धो महावीरो निश्चलः शिववत्सलः ॥ ३ ॥
देवीभक्तः सदा धीरो देवतायागतत्परः।
सर्वाम्नायविशेषज्ञः कुशलो रसकर्मणि ।

एवं लक्षणसंयुक्तो रसविद्यागुरुर्भवेत् ॥ ४ ॥

रसशास्त्र का उपदेशक आचार्य शास्त्र का पूर्णज्ञाता, रसनिर्माणक्रिया में चतुर, रसशास्त्र का पूर्ण विद्वान, मन्त्र की सिद्धि से युक्त, शूरवीर, गम्भीर चित्त वाला तथा शिव का भक्त, देवी का भक्त, सदा धैर्यता से काम करने वाला, देवता प्रसाधक, यज्ञ कर्म में संलग्न, प्रायः सर्व वेद दर्शनादि शास्त्रों का विशेषज्ञ, पारद तथा सर्व रस कर्म में निपुण, इतने लक्षणों से यदि सम्पन्न हो तो वह रसशास्त्र का आचार्य हो सकता है ॥ ३–४ ॥

अथ शिष्यगुणाः—

गुरुभक्ताः सदाचाराः सत्यवन्तो दृढव्रताः ।
निरालस्याः स्वधर्मज्ञाः सदाऽऽज्ञापरिपालकाः ॥ ५ ॥
दम्भमात्सर्यनिर्मुक्ताः कुलाऽऽचारेषु दीक्षिताः ।
अत्यन्तसाधकाः शान्ता मन्त्राऽऽराधनतत्पराः ॥
इत्येवं लक्षणैर्युक्ताः शिष्याः स्युः सूतसिद्धये ॥ ६ ॥

गुरु के भक्त, सदाचारसम्पन्न, सत्यवादी, अपने नियत (व्रत) में दृढ, आलस्य से रहित, स्वधर्म के जानने वाले, सर्वदा आप्त जनों की आज्ञा का पालन करने वाले और पाखण्ड तथा मात्सर्य से रहित, अपने कुलपरम्परा से प्राप्त आचार को मानने वाले, शान्तस्वभाव, रसादिविद्याग्रहण करने में अत्यन्त उत्साही और मन्त्रों के सिद्ध करने में प्रयत्नशील, इन लक्षणों से युक्त शिष्य सूत को सर्वसिद्धिप्रद बनाने में समर्थ हो सकते हैं तथा वे ही रसविद्या जानने के अधिकारी हैं ॥ ५–६ ॥

अथानुचरगुणाः—

सहायाः सोद्यमास्तत्र तथा शिष्यास्ततोऽधिकाः ।
कुलीनाः स्वामिभक्ताश्च कर्तव्या रसकर्मणि ॥ ७ ॥

जो सेवक उद्योगशील, शिष्य से भी अधिक गुण सम्पन्न तथा उत्तमकुल में उत्पन्न और स्वामीभक्त हों उन्हें रसकर्म में नियुक्त करना चाहिए ॥ ७ ॥

अथायोग्यशिष्याः—

नास्तिका ये दुराचाराश्चुम्बका गुरुतोऽपरात् ।
विद्यां ग्रहीतुमिच्छन्ति चौर्यच्छद्मखलोत्सवात् ॥ ८ ॥

न तेषां सिध्यते किञ्चिन्मणिमन्त्रौषधादिकम्।
कुर्वन्ति यदि मोहेन नाशयन्ति स्वकं धनम्॥
इह लोके सुखं नास्ति परलोके तथैव च॥ ९॥
तस्माद्भक्तिबलादेव सन्तुष्यति यदा गुरुः।
तदा शिष्येण सा ग्राह्या रसविद्याऽऽत्मसिद्धये।
हस्तमस्तकयोगेन वरं लब्ध्वा सुसाधयेत्॥ १०॥

जो शिष्य नास्तिक अर्थात् गुरू, शास्त्र, देव, धर्म, स्वर्गादि और पाप तथा पुण्य में विश्वास नहीं करते हों, दुष्ट आचार विचार वाले, गुरु को छोड़ कर अन्य से या गुरुही से चोरी, कपट और दुष्टता को छिपाकर विद्या की प्राप्ति के इच्छुक हों उनको मणि मन्त्र और औषध में से कुछ भी यथार्थ रूप से प्राप्त नहीं होता है और यदि वे मोह के वश से रसविद्या की सिद्धि में प्रवृत्त होते हैं तो स्वकीय धन का नाश कर इस लोक और परलोक में सुख से वञ्चित ही रहते हैं। इसलिये जब गुरु भक्तिभाव से प्रसन्न हो जायं तब उनसे आत्मसिद्धि के लिये रसविद्या ग्रहण करनी चाहिए। फिर गुरु को बद्धाञ्जलि होकर शिर से प्रणाम करके आशीर्वाद प्राप्त कर रसकर्म का साधन करना चाहिए॥ ८-१०॥

अथ रससाधनरसशालारसमण्डपाः—

आतङ्करहिते देशे धर्मराज्ये मनोरमे।
उमामहेश्वरोपेते समृद्धे नगरे शुभे॥ ११॥
कर्तव्यं साधनं तत्र रसराजस्य धीमता।
अत्यन्तोपवने रम्ये चतुर्द्वारोपशोभिते॥ १२॥
तत्र शाला प्रकर्तव्या सुविस्तीर्णा मनोरमा।
सम्यग्वातायनोपेता दिव्यचित्रैर्विचित्रिता॥ १३॥
तत्समीपे समे दीप्ते कर्तव्यं रसमण्डपम्।
अतिगुप्तं सुविस्तीर्णं कपाटार्गलशोभितम्॥ १४॥
ध्वजछत्रवितानाढ्यं पुष्पमालाविलम्बितम्।
भेरीकाहलघण्टादिश्रृङ्गीनादविनादितम्॥ १५॥
भूः समा तत्र कर्तव्या सुदृढा दर्पणोपमा।
तन्मध्ये वेदिका रम्या कर्तव्या लक्षणान्विता॥ १६॥

जो नगर रोग से रहित, धर्म पूर्वक राज्य से युक्त, मनोहर, शिव तथा पार्वती के निवास से पवित्र, देश के समृद्ध तथा शुभ हो ऐसे शहर में रस का साधन करना चाहिए और जहां पर अत्यन्त रमणीक तथा चार द्वार वाला उपवन बनवाकर उसमें अत्यन्त विस्तृत (लम्बी, चौड़ी) मनोहर तथा सुन्दर २ खिड़कियों और झरोखों से युक्त और जिस मेंअनेक धन्वन्तरि, सिद्धिरसायन, शास्त्र के प्रवर्तक आचार्य, देवता, तथा यन्त्रादिक उपकरणों के चित्र लगे हों ऐसी रसशाला बनवानी चाहिये। उसी रसशाला के समीप प्रकाशवाली समान भूमि में एक रसमण्डप बनाना चाहिए जो कि अत्यन्त गुप्त, खूब लम्बा चौड़ा, सुन्दर किंवाड़ और अर्गला से युक्त हो और पताकाएं, छत्र, वितान (चन्दोवा) जिसमें लगे हों और चारों तरफ सुगन्धित पुष्पों की मालाओं के टांकने से सुशोभित तथा भेरी मृदङ्ग, शंख, घड़ियाल घण्टा आदि वाद्यों से शब्दायमान होना चाहिए। उसी मण्डप की भूमि समान, दृढ और दर्पण के समान चमकदार होनी चाहिए, और उसके बीचों बीच शास्त्रानुसार शुभ लक्षणों वाली अत्यन्त सुन्दर वेदिका का निर्माण कराना चाहिए॥११-१६॥

रसलिङ्गस्थापनादि—

निष्कत्रयं हेमपत्रं रसेन्द्रं नवनिष्ककम् ।
अम्लेन मर्दयेद्यामं तेन लिङ्गन्तु कारयेत् ॥ १७ ॥
दोलायन्त्रे सारनाले जम्बीरस्थं दिनं पचेत् ।
तल्लिङ्गं पूजयेत्तत्र सुशुभैरुपचारकैः ॥ १८ ॥

तीन निष्क (१२ मासा) शुद्ध स्वर्ण के पत्र और नो निष्क (८ मा०) पारद लेकर दोनों को निम्बू के रस से एक प्रहर तक घोट कर इनका शिवलिङ्ग बनवा लेना चाहिये, फिर उस लिङ्ग को बड़े निम्बू के बीच में रख कर काञ्जी में दोलायन्त्र के द्वारा एक दिन तक पकाना चाहिये, पश्चात् उसका वेदिका के मध्य में स्थापन करा कर सुन्दर उपचारों से यथाशास्त्र पूजन करनी चाहिए॥१७-१८॥

रसलिङ्गपूजनफलम्—

लिङ्गकोटिसहस्रस्य यत्फलं सम्यगर्चनात् ।
तत्फलं कोटिगुणितं रसलिङ्गार्चनाद्भवेत् ॥ १९ ॥
ब्रह्महत्यासहस्राणि गोहत्याश्चायुतानि हि ।
तत्क्षणाद्विलयं यान्ति रसलिङ्गस्य दर्शनात् ॥ २० ॥

स्पर्शनात्प्राप्यते मुक्तिरिति सत्यं शिवोदितम् ।
आग्नेय्यां श्रीअघोरेण मन्त्रराजेन चार्चयेत् ॥ २१ ॥

एक सहस्रकरोड़ शिवलिङ्गों की यथाविधि पूजन करने से जो फल होता है उससे भी करोड़ों गुना अधिक फल रसलिङ्ग की पूजन करने से प्राप्त होता है। हजारों ब्रह्महत्याओं से तथा लाखों गोहत्याओं से जो पाप उत्पन्न होता है वह केवल रसलिङ्ग के दर्शन कर लेने से क्षण भर में नष्ट हो जाता है। श्रीशिवजी ने कहा है कि इस लिङ्ग के स्पर्श करने से मुक्ति प्राप्त होती है, यह सत्य है। अग्नि कोण में रसलिङ्ग की स्थापना करके सब मन्त्रो में प्रधान जो अघोरमन्त्र(१) है उससे उसकी पूजन करनी चाहिए ॥ १९–२१ ॥

ध्यानम्—

अष्टादशभुजं शुभ्रं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
प्रेतारूढं नीलकण्ठं रसलिङ्गं विचिन्तयेत् ॥ २२ ॥
तस्योत्सङ्गे महादेवीमेकवक्त्रां चतुर्भुजाम् ।
अक्षमालाङ्कुशं दक्षे वामे पाशाभयं शुभम् ॥
दधतीं तप्तहेमाभां पीतवस्त्रां विभावयेत् ॥ २३ ॥

रसलिङ्ग का ध्यान—जिनके १८ भुजाएं हैं और जिनका गौरवर्ण हैं तथा जिनके ५ मुख और तीन नेत्र हैं और प्रेत (मृतक) के ऊपर आरूढ, नीलेकण्ठ-वाले ऐसे महादेव जी का रसलिङ्ग में अपना ध्यान बैठाना चाहिए, अर्थात् यह रसलिङ्ग एक तरह से शिवस्वरूप ही है और शिवस्वरूप उस रसलिङ्ग की प्रतिमा की गोद में अद्वितीयमुखवाली तथा चार भुजाओं से शोभायमान, दक्षिणहस्त में रुद्राक्षमाला और अङ्कुश और वामहस्त में शुभ पाश धारण की हुई और एक हस्त से भक्तजनों को शुभ अभयप्रदान करती हुई, सन्तप्त सुवर्ण की कान्ति के समान दैदीप्यमान एवं पीतवस्त्र धारण की हुई महादेवी श्री पार्वती का ध्यान करना चाहिए ॥ २२–२३ ॥

देवीपूजनमन्त्रम् ।

"वाङ्मयी श्रीः कामराजशक्तिबीजं रसाङ्कुशा-

---

(१) अघोरमन्त्रः–अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो घोराघोरतरेभ्यश्च ।
सर्व्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररुपेभ्यः ॥

य नमो" द्वादशार्णैषा ज्ञेया विद्या रसाङ्कुशा ॥ २४ ॥
अनया पूजयेद्देवीं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
नन्दीभृङ्गीमहाकालकुलीरान्पूर्वदिक्क्रमात् ॥ २५ ॥
पूजयेन्नाममन्त्रैश्च प्रणवादिनमोन्तकैः ।
एवं नित्यार्चनं तत्र कर्तव्यं रससिद्धये ॥ २६ ॥

"ॐ वाङ्मयीश्रीः" इत्यादि २४ वें श्लोक में कहे मन्त्र का उच्चारण करते हुए गन्ध, पुष्प, अक्षत, नैवेद्य, दीप आदि से श्री पार्वती देवी की पूजन करें पश्चात् यथाक्रम से रसलिङ्ग के पूर्व दिशा में नन्दी, पश्चिम में भृङ्गी, उत्तर में महाकाल और दक्षिण में कुलीर गण की स्थापना करके इनके नाम के आदि में ॐकार तथा अन्त में नमः-शब्द लगाकर (जैसे ॐ नन्दिने नमः) मन्त्र का उच्चारण करते हुए चारों की पूजन करनी चाहिए । इस तरह रससिद्धि की प्राप्ति के लिये उस रस मण्डप में सदा पूजन करनी चाहिए ॥ २४-२६ ॥

अथ कुम्भस्थापनादिशिष्यदीक्षादानविधिः—

रसविद्या शिवेनोक्ता दातव्या साधकाय वै ।
यथोक्तेन विधानेन गुरुणा मुदितात्मना ॥ २७ ॥
सुमुहूर्ते सुनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते ।
कलशं तोयसम्पूर्णं हेमरत्नफलैर्युतम् ॥ २८ ॥
स्थापयेद्रसलिङ्गाग्रे दिव्यवस्त्रेण वेष्टितम् ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपनैवेद्यैश्च सुपूजयेत् ॥ २९ ॥
पूजान्ते हवनं कुर्याद्योनिकुण्डे सुलक्षणे ।
तिलाज्यैः पायसैः पुष्पैः शतपुष्पादिकैः पृथक् ॥ ३० ॥
अघोरेण रसाङ्कुश्या होमान्ते शिष्यमाह्वयेत् ।
कालिनीशक्तिसंयुक्तं रससिद्धिपरायणम् ॥ ३१ ॥

यह रसविद्या श्रीशिवजी ने कही है । इस विद्या को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले साधक को प्रसन्नचित्त गुरु द्वारा शास्त्रोक्तविधि के अनुसार शुभ मुहूर्त्त, शुभ नक्षत्र तथा शुभचन्द्रबल और शुभताराबल के समय में पूजन हवनादि करके प्रदान करनी चाहिए ।

पूजनविधि—उपर्युक्त शुभ दिन में जल से भरा हुआ और सुवर्ण,

रत्न, फल पुष्पों से युक्त दिव्यवस्त्र से वेष्टित (ढका हुआ) एक कलश रसलिङ्ग के सामने स्थापित करके उसकी गन्ध, पुष्प, अक्षत और नैवेद्य से अच्छी प्रकार जन करनी चाहिए। फिर पूजन के पश्चात् योनि के समान आकार वाले उत्तम कुण्ड में तिल, घृत, क्षीरान्न, पुष्प सौंफ इत्यादि पृथक् २ पदार्थों के द्वारा अघोर रसाङ्कुशीमन्त्र का उच्चारण करते हुए अथवा श्री अघोरमन्त्र से रसाङ्कुशी देवी के निमित्त हवन करना चाहिए। होम हो जाने के पश्चात् वक्ष्यमाणलक्षणों से युक्त कालिनीशक्ति से युक्त और रस की सिद्धि करने में परायण शिष्य को समीप बुलाना चाहिए ॥ २७–३१ ॥

अथ कालिनीलक्षणम्—

यस्यास्तु कुञ्चिताः केशाः श्यामा या पद्मलोचना ।
सुरूपा तरुणी भिन्ना विस्तीर्णजघना शुभा ॥ ३२ ॥
सङ्कीर्णहृदया पीनस्तनभारेण नम्रिता ।
चुम्बनालिङ्गनस्पर्शकोमला मृदुभाषिणी ॥ ३३ ॥
अश्वत्थपत्रसदृशयोनिदेशसुशोभिता ।
कृष्णपक्षे पुष्पवती सा नारी कालिनी स्मृता ॥
रसबन्धे प्रयोगे च उत्तमा सा रसायने ॥ ३४ ॥

जिस स्त्री के घुंघरीले बाल हों और जो श्याम अङ्ग की या सौलह वर्ष की हो तथा कमल के समान विशाल और मनोहर नेत्रों से शोभायमान, सुन्दर लावण्ययुक्त, युवती (यौवनमदोन्मत्त) और प्रस्फुटित योनिवाली और विस्तीर्ण जंघाओं वाली, शुभलक्षणों से युक्त, संकीर्ण (प्रसन्न) हृदय वाली और जो बड़े २ स्तनों के भार से कुछ झुकी हुई हो तथा चुम्बन, आलिङ्गन और स्पर्श में कोमल प्रतीत होने वाली, मधुर आलाप (भाषण) शील तथा जिस का योनिप्रदेश पीपल के पत्ते की रचना के समान सुशोभित हो और जो कृष्णपक्ष में रजस्वला होती हो वह स्त्री कालिनी कहलाती है। कालिनी स्त्री रस के बन्धन करने में, प्रयोग में और रसायन में उत्तम होती है ॥ ३२–३४ ॥

अथ कालिन्यभावे तदनुकल्पविधिः—

तदभावे सुरूपा तु या काचित्तरुणाङ्गना ।
तस्या देयं त्रिसप्ताहं गन्धकं घृतसंयुतम् ।

कर्षैकैकं प्रभाते तु सा भवेत्कालिनीसमा ॥ ३५ ॥
एवं शक्तियुतो योऽसौ दीक्षयेत्तं गुरूत्तमः ।
सुस्नातमभिषिञ्चेत मन्त्रेण कलशोदकैः ॥ ३६ ॥
अघोरामङ्कुशीं विद्यां दद्याच्छिष्याय सद्गुरुः ।
यथाशक्त्या सुशिष्येण दातव्या गुरुदक्षिणा ॥ ३७ ॥
अथाज्ञया गुरोर्मन्त्रं लक्षं लक्षं पृथग्जपेत् ।

"ॐ ह्रां ह्रीं ह्रम अघोरतरप्रस्फुट २ प्रकट २ कह २ शमय २ जात २ दह २ पातय २ ॐ ह्रीं ह्रैं ह्रौं ह्रम् अघोराय फट्" इममघोरमन्त्रन्तु "ओम् कामराजशक्तिबीजरसाङ्कुशायै आज्ञया विद्यां रसाङ्कुशाम्" ॥

अनया पूजयेद्देवीं शक्तिमङ्कुशविद्यया ॥ ३८ ॥

यदि उपर्युक्त लक्षणों वाली कालिनी स्त्री न मिल सके तो सुन्दररूपवाली किसी भी तरुण स्त्री को २१ दिन तक एक २ कर्ष शुद्ध गन्धक घृत के साथ प्रातः सेवन कराने से वह स्त्री कालिनी के समान सर्व गुणों से युक्त हो जाती है जो शिष्य इस कालिनी स्त्री के साथ दीक्षाग्रहण करने के योग्य हो तो उत्तम गुरू उसको दीक्षित करे। प्रथम स्नान किये हुए शिष्य को गुरू कलश के जल से मन्त्रों का उच्चारण करते हुए अभिषिक्त करे, फिर सद्गुरू शिष्य को अघोर और अङ्कुशी विद्या का उपदेश दे, और अपनी शक्ति के अनुसार दीक्षा के पश्चात् गुरू जी को दक्षिणा दे कर फिर गुरूजी की आज्ञा से दोनों मन्त्रों का पृथक २ एक लाख जप करना चाहिए। इस अंकुशी विद्या(१) के द्वारा शक्तिस्वरूप देवी का पूजन करे ॥ ३५-३८ ॥

तत्र होमविधिः—

दशांशं जुहुयात्कुण्डे त्रिकोणे हस्तमात्रके ।
जातिपुष्पं त्रिमध्वक्तं पूर्णान्ते कन्यकार्चनम् ॥ ३९ ॥

पूजन करने के पश्चात् एक हाथ चौड़ा त्रिकोण के आकार वाला एक हवन का

---

(१) मूलपाठ में मन्त्र का यह स्वरूप लिखा है। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूम, अघोर तर प्रस्फुट २ प्रकट २ कह २ शमय २ जात २ दह २ पातय २ ॐ ह्रीं ह्रैं, ह्रौं ह्रूम, अघोराय फट् इममघोरमन्त्रन्तु ॐ कामराजशक्तिबीजरसाङ्कुशायै आज्ञया विद्या रसाङ्कुशाम्।

कुण्ड बनाकर उसमें शहद, घृत, खांड और चमेली के पुष्प इन्हें मिलाकर जप का दशांश (१० हजार) मन्त्र बोलते हुए हवन करके हवन के पश्चात् कन्याओं की पूंजन करनी चाहिए ॥ ३९ ॥

अथ रससिद्ध्यर्थं संग्रहणीयपदार्थास्तत्पूजनादिकञ्च—

कृत्वाथ प्रविशेच्छालां शुद्धां लिप्तां सवेदिकाम्।
षट्कोणं मण्डलं तत्र सिन्दूरेण द्विहस्तकम् ॥ ४० ॥
वेदिकायां लिखेत्सम्यक् तद्बहिश्चाष्टपत्रकम्।
कमलं चतुरस्रं च चतुर्द्वारैः सुशोभितम् ॥ ४१ ॥
कर्णिकायां न्यसेत्खल्लं लोहजं स्वर्णलेखितम्।
तन्मध्ये रसराजं तु पलानां शतमात्रकम् ॥
पञ्चाशत्पञ्चविंशद्वा पूजयेद्रसलिङ्गवत् ॥ ४२ ॥

इस तरह हवन का कार्य समाप्त कर पवित्र गोबर से लिप्त तथा वेदी जिस में बनी हो ऐसी शुद्ध शाला में प्रवेश करे। बाद में उस वेदी के ऊपर सिन्दूर से दो हाथ लम्बा और चौड़ा तथा छ कोनों वाला एक मण्डल बनाकर के उसके बाहर आठ दलों वाला एक कमल लिखना चाहिए और उसके चारों द्वारों पर एक चौकोर मण्डल बनाना चाहिए। कमल की कर्णिका के मध्य में एक लौह का खल्व रख कर उसमें स्वर्ण के द्वारा कुछ रेखाओं के चिन्ह बनाकर उस खल्व में १०० पल या ५० पल अथवा २५ पल पारद डाल कर रसलिंग के समान ही उस पारद की पूजन करनी चाहिए ॥ ४०–४२ ॥

तत्र रसशक्तयः—

वज्रवैक्रान्तवज्राभ्रकान्तपाषाणटङ्कणम्।
भूनागः शक्तयश्चैताः षट्कोणे पूजयेत्क्रमात् ॥ ४३ ॥

हीरक, वैक्रान्त, वज्राभ्रक, कान्त पाषाण (चुम्बक पत्थर) सुहागा, भूनाग (केन्चुए) ये शक्तियां हैं अर्थात् रस की शक्ति को ये ६ पदार्थ बढ़ाते हैं अत इन्हें रसशक्तियां कहते हैं। इनको षट्दल कमल में यथाक्रम रख (स्थापन) कर इन की पूजन करनी चाहिए ॥ ४३ ॥

तत्र उपरसाः—

गन्धतालककासीसशिलाकङ्कुष्ठभूषणम्।

राजावर्तो गैरिकश्चाख्याता उपरसा अमी ।
पूज्या अष्टदलेष्वेते पूर्वादीशानगङ्क्रमात् ॥ ४४ ॥

गन्धक, हरताल, कासीस, मैनशील कङ्कुष्ठ, अञ्जन, राजावर्त तथा गैरिक ये आठ उपरस हैं। इनको अष्टदल कमल में क्रम से पूर्वदिशा से लेकर ईशान कोणतक स्थापन करके पूजन करनी चाहिए ॥ ४४ ॥

तत्र महारसाः—

रसकं विमला ताप्यं चपला तुत्थमञ्जनम् ।
हिङ्गुलं सस्यकं चैव ख्याता एते महारसाः ।
पूर्वादीशानपर्यन्तं पत्राग्रेषु प्रपूजयेत् ॥ ४५ ॥

खर्पर, विमल, सुवर्ण माक्षिक, चपल, तुत्थ, अञ्जन, हिङ्गुल, सस्यक ये आठ महारस हैं। इनको पूर्वदिशा से ईशान कोण तक अष्टदल मण्डल की पखड़ियों के अग्रभाग में स्थापन करके पूजन करनी चाहिए ॥ ४५ ॥

तत्र अष्टलोहपूजाक्रमः—

पूर्वद्वारे स्वर्णरौप्ये दक्षिणे ताम्रसीसके ।
पश्चिमे वङ्गकान्तौ च उत्तरे मुण्डतीक्ष्णके ।
सर्वमेतदघोरेण पूजयेदङ्कुशान्वितम् ॥ ४६ ॥

मण्डप की वेदी के चारप्रकार पहिले बताये हैं उन में से पूर्व के द्वारपर स्वर्ण और चांदी, दक्षिण के द्वार पर ताम्बा और सीसा, पश्चिम के द्वार पर वङ्ग और कौन्तलौह और उत्तर के द्वार पर मुण्ड तथा तीक्ष्णलौह की स्थापना करके उन की अंकुशी त्रिया के साथ अघार मन्त्र को पढ़ते हुए पूजन करनी चाहिए ॥४६॥

तत्र उपकरणानां पूजाविधिः—

बिडं काञ्जिकयन्त्राणि क्षारमृल्लवणानि च ।
कोष्ठी मूषा वङ्कनालि तुषाङ्गारवनोपलाः ॥ ४७ ॥
भस्त्रिका दण्डिकानेका शिला खल्वान्युलूखलम् ।
स्वर्णकारोपकरणं समस्ततुलनानि च ॥ ४८ ॥
मृत्काष्ठताम्रलोहोत्थपात्राणि विविधानि च ।
दिव्यौषधीनां वर्गाश्च रञ्जकस्नेहनानि च ॥
एतानि द्वारबाह्ये तु मूलमन्त्रेण पूजयेत् ॥ ४९ ॥

वाङ्माया ह्रीं ततः क्षें च दमश्च पञ्चाक्षरो मनुः।
अनेन मूलमन्त्रेण भैरवं तत्र पूजयेत्॥
सर्वेषां रससिद्धानां नाम सङ्कीर्तयेत्तदा॥ ५०॥

विड़ (रस के जारण के लिये क्षार पदार्थों से बनाया हुआ पदार्थ विशेष) काञ्जी, विविध यन्त्र, क्षार वर्गके आठों खार, पञ्चमृतिका, पाञ्चो लवण, कोष्ठियां, सब प्रकार की मूषा, वङ्क नाल, तुष, कोयले, जङ्गली कण्डे, धौंकनी, विविध प्रकार की औषधियां चलाने के दण्ड, कल्क पीसने की शिला, खरलें, ओंखलियां, सुनार के विविध उपकरण, सब प्रकार की तुलाएं और सर्व प्रकार की मिट्टी, काष्ठ, ताम्बा और लौह के पात्र तथा आश्चर्यजनक गुण करने वाली दिव्य औषधियों के वर्ग (समूह) यथा जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, इत्यादि, तथा पारदादि को रञ्जने वाले पदार्थ और स्नेह, इन को द्वार के बाहर स्थापन करके मूलमन्त्र के द्वारा पूजन करनी चाहिए। मूलमन्त्र का स्वरूप—वाङ्माया ह्रीं ततः क्षेञ्च क्षमाश्च पञ्चाक्षरो मनुः। तथा इसी मन्त्र से भैरव का पूजन भी करें, पश्चात् सब रस के सिद्ध आचार्यों का भी वहां स्मरण करना चाहिए॥ ४७–५०॥

अथ रससिद्धेश्वरब्राह्मणादीनां पूजनम्—

व्यालाचार्यश्चंद्रसेनः सुबुद्धिर्नरवाहनः।
नागार्जुनो रत्नघोषः सुरानन्दो यशोधनः॥ ५१॥
इन्द्रधूमश्च माण्डव्यश्चर्पटी शूरसेनकः।
आगमो नागबुद्धिश्च खण्डः कापालिको मतः॥ ५२॥
कामारिस्तान्त्रिकः शम्भुर्लङ्कालम्पटशारदौ।
बाणासुरो मुनिश्रेष्ठो गोविन्दः कपिलो बलिः॥ ५३॥
एते सर्वे तु सूतेन्द्रा रससिद्धा महाबलाः।
चरन्ति सर्वलोकेषु नित्या भोगपरायणाः॥ ५४॥
सप्तविंशतिसङ्ख्याका रससिद्धिप्रदायकाः।
वैद्याः पूज्याः प्रयत्नेन ततः कुर्याद्रसार्चनम्॥ ५५॥
हर्षयन्द्विजदेवानां तर्पयेदिष्टदेवताः।
कुमारीयोगिनीयोगीश्वरान्मेलकसाधकान्॥
तर्पयेत्पूजयेद्भक्त्या यथाशक्त्यनुसारतः॥ ५६॥

इत्येवं सर्वसम्भारयुक्तं कुर्याद्रसोत्सवम् ।
सर्वविघ्नप्रशान्त्यर्थं सर्वेप्सितफलप्रदम् ॥ ५७ ॥

व्यालाचार्य, चन्द्रसेन, सुबुद्धि, नरवाहन, नागार्जुन रत्नघोष, सुरानन्द, यशोधन, इन्द्रधूम, माण्डव्य, च टी, शूरसेन, आगम, नागबुद्धि, खण्ड, कपालिक, कामारि, तान्त्रिक, शम्भु, लंक, लम्पक, शारद, वाणासुर, मुनिश्रेष्ठ, गोविन्द, कपिल और बलि ये २७ पारद के साधन में इन्द्रके समान श्रेष्ठ, रससिद्ध, और महान बल से सम्पन्न आचार्य हैं। ये भोगों में लिप्त हो कर सर्वदा सब लोकों में विचरण करते रहते हैं। ये २७ आचार्य रससिद्धि का प्रदान करते हैं तथा इनकी यथाविधि पूजन करके पारद की पूजन करनी चाहिए। ब्राह्मण और देवताओं को भोजन तथा पूजनादिक से प्रसन्न करके इष्ट देवी देवताओं का भी पूजन करे। फिर अपनी शक्ति के अनुसार छोटी २ कन्याएं, योगिनी, योगीश्वर तथा पारद का साधन करने वाले इत्यादि का भक्तिपूर्वक पूजन करके उन्हें प्रसन्न करें, इस प्रकार सर्व सामग्री से यु और सर्व प्रकार की मनोरथपूर्ति करने वाला, सर्वविघ्न शान्ति के लिये रसोत्सव करना चाहिए ॥ ५१–५७ ॥

अदीक्षितस्य रसविद्यासाधनवैफल्यनिर्देशः—

अन्यथा यो विमूढात्मा मन्त्रदीक्षाक्रमाद्विना ।
कर्तुमिच्छति सूतस्य साधनं गुरुवर्जितः ॥ ५८ ॥
नासौ सिद्धिमवाप्नोति यत्नकोटिशतैरपि ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शास्त्रोक्तां कारयेत्क्रियाम् ॥ ५९ ॥

जो मूर्ख मन्त्र और दीक्षा क्रम को छोड़ कर गुरू की सहायता के विना ही रस की सिद्धि करने की इच्छा करता है वह करोड़ों प्रयत्न करने पर भी सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता है, इस लिये शास्त्र के कथनानुसार यत्न पूर्वक प्रथम दीक्षा पूजादि क्रिया करनी चाहिए ॥ ५८–५९ ॥

अथ रससाधने सिद्धिलाभहेतुनिर्देशः—

सम्यक्साधनसोद्यमा गुरुयुता राजाज्ञयाऽलङ्कृता
नानाकर्मपराङ्मुखा रसपराश्श्राढ्या जनैश्चार्थिताः ।
मात्रायन्त्रसुपाककर्मकुशलाः सर्वौषधे कोविदाः
तेषां सिध्यति नान्यथा विधिबलाच्छ्रीपारदः पारदः ॥६०॥

जो मनुष्य उद्योग शील, सब साधनों को प्राप्त किया हुआ तथा गुरू से शास्त्र पढा हो, जिसको राजा का आधार हो और दूसरे मनुष्यों से रस सिद्धि करने के लिये प्रार्थित हो तथा अन्य सांसारिक कार्यों में जो आसक्त न हो, धनी हो, औषधादियों की मात्रा, मन्त्र, पाकक्रिया और सब काष्ठादि औषधियों के पहचानने में जो कुशल हो, भाग्य से वही शोभा और देहसिद्धि करने वाले पारद को सिद्ध कर सकता है ॥ ६० ॥

अथ कस्मै किमर्थं रसविद्या दातव्या तन्निर्देशः—

रसशास्त्रं प्रदातव्यं विप्राणां धर्महेतवे ।
राज्ञे वैश्याय वृद्ध्यर्थं दास्यार्थमितरस्य य ॥ ६१ ॥

रस शास्त्र ब्राह्मणों को चिकित्सा द्वारा परोपकारादि धर्म कार्य करने के लिये, राजा (क्षत्रिय) और वैश्य को उक्त शास्त्र की वृद्धि के लिये और अन्य श्रेष्ठ शूद्रादि मनुष्यों को तीनों वर्णों की सेवा करने के लिये पढ़ाना चाहिए ॥ ६१ ॥

अथ गुरुसन्तोषस्य सर्वसिद्धिहेतुत्वनिर्देशः—

गुरौ तुष्टे शिवस्तुष्येच्छिवे तुष्टे रसस्तथा ।
रसे तुष्टे क्रियाः सर्वाःसिध्यन्त्येवं न संशयः ॥ ६२ ॥

सुश्रुषादिक से गुरू के प्रसन्न होने से महादेव जी प्रसन्न होते हैं, महादेवजी के प्रसन्न होने से पारद प्रसन्न होता है और पारद के प्रसन्न होने से प्रायः सब काम सफल हो जाते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ६२ ॥

अथ रसविद्याया अवश्यगोप्यत्वनिर्देशः—

रसविद्या दृढं गोप्या मातुर्गुह्यमिवध्रुवम् ।
भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या च प्रकाशनात् ॥ ६३ ॥
न रोगिविदितं कार्यं बहुभिर्विदितं तथा ।
रोगिणां बहुभिर्ज्ञातं भवेन्निर्वीर्यमौषधम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये शिष्योपनयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

रसविद्या को माता के गोप्याङ्ग के समान गुप्त रखनी चाहिए, क्योंकि गुप्त रखने से वह वीर्य्यवती होती है, और प्रकाशित करने से निर्वीर्य हो जाती है।

जो औषधि रोगी तथा अन्य बहुत से मनुष्यों से जानी हुई होती है वह निर्वीर्य्य हो जाती है इसलिये प्रायः किसी भी औषधि को रोगी या अन्य मनुष्य को नहीं बताना चाहिये ॥ ६३–६४ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितयां
रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्य–भाषाटीकायां
शिष्योपनयननिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ रसशाला—

रसशालां प्रकुर्वीत सर्वबाधाविवर्जिते ।
सर्वौषधिमये देशे रम्ये कूपसमन्विते ॥ १ ॥
यक्षत्र्यक्षसहस्राक्षदिग्विभागे सुशोभने ।
नानोपकरणोपेतां प्राकारेण सुशोभिताम् ॥ २ ॥
शालायाः पूर्वदिग्भागे स्थापयेद्रसभैरवम् ।
वह्निकर्माणि चाग्नेये याम्ये पाषाणकर्म च ॥ ३ ॥
नैर्ऋत्ये शस्त्रकर्माणि वारुणे क्षालनादिकम् ।
शोषणं वायुकोणे च वेधकर्मोत्तरे तथा ॥
स्थापनं सिद्धवस्तूनां प्रकुर्यादीशकोणके ॥ ४ ॥

जो स्थान सर्व प्रकार के विघ्नों से रहित हो, सब तरह की सूखी और आर्द्र औषधियां जहां मिलती हो तथा जो देखने में सुन्दर हो और कूप नदी तालाब से सुशोभित हो ऐसे स्थान में कुबेर की उत्तर दिशा, महादेव का ईशान कोण अथवा इन्द्र की पूर्व दिशा में अनेक प्रकार के औषधि बनाने के उपकरणों से युक्त और चारों ओर घेरा (प्राकार) जिस के हो ऐसी रसशाला का निर्माण करना चाहिए। रसशाला की पूर्वदिशा में रस भैरव (रसलिङ्ग) की स्थापना करे और आग्नेय कोण में अग्नि सम्बन्धी कार्य जैसे भट्टियां चूल्हे इत्यादि बनवाना चाहिए। दक्षिणदिशा में शिलापर कल्क का मर्दन आदि पाषाण कर्म करना चाहिए और नैर्ऋत्य कोण में धातुओं की परीक्षा के लिये अथवा यन्त्रादियों के

निर्माण के लिये तथा भेदन आदि शस्त्र कर्म करने के लिए भवननिर्माण करना चाहिए। पश्चिम दिशा में औषधियों का प्रक्षालन, वायव्यदिशा में आर्द्रद्रव्यों को सुखाने का कार्य, उत्तर दिशा में रसेन्द्र का वेधकर्म और सिद्धहुए पदार्थों को जैसे भस्म, रस, घृत, तैल, अवलेह, पाक इत्यादि ईशान कोण में रखना चाहिए ॥१-४॥

अथ रससाधनीयपदार्थाः—

पदार्थसङ्ग्रहः कार्यो रससाधनहेतुकः।
सत्त्वपातनकोष्ठीं भस्त्रकोष्ठीं सुशोभनाम् ॥ ५ ॥
भूमिकोष्ठीं चलत्कोष्ठीं जलद्रोण्याऽप्यनेकशः।
भस्त्रिकायुगलं तद्वन्नलिके वंशलोहयोः ॥ ६ ॥
स्वर्णायोघोषशुल्वाश्मकुण्ड्यश्चर्मकृतां तथा।
करणानि विचित्राणि द्रव्याण्यपि समाहरेत् ॥ ७ ॥
कण्डणीपेषणीस्वल्पाद्रोणीरूपाश्च वर्तुलाः
आयसास्तप्तखल्लाश्च मर्दकाश्च तथाविधाः ॥ ८ ॥
सूक्ष्मच्छिद्रसहस्राढ्या द्रव्यगालनहेतवे।
चालनी च कटत्राणि शलाका हिच कुण्डली ॥ ९ ॥

रस के साधन करने के लिये जो उत्तम पदार्थ हों उनका संग्रह करना चाहिए। सत्त्वपातन करने की कोष्ठी, सुन्दर आसव तैय्यार करने की कोष्ठी, तैल निकालने की भूमिकोष्ठी तथा इधर उधर आसानी से ले जाने लायक छोटी २ कोठियां, अनेक प्रकार के जल भरने के धातुनिर्मित या मिट्टी के द्रोणाकार पात्र, दो धौंकनियां, लौह की बनी हुई या बांस की बनी हुई दो नालियां (भोंगली) और स्वर्ण, लौह, ताम्र, कांस्य और पत्थर की बनी हुई छोटी २ कूंडियां (स्थाली) तथा चर्म के उपकरण और भी अन्य विचित्र तथा औषध कर्म के उपयोगी उपकरण तथा द्रव्यों का सम्पादन करना चाहिए। खाण्डने के लिये ओंखली, पीसने के लिये चक्की तथा छोटी २ द्रोणी के स्वरूप की खरलें, गोल खरलें, तप्तखरल, उसी प्रकार के लौह के बने हुए घोटने के हत्थे, औषध चूर्ण के छानने के लिये हजारों छोटे २ सूराखों वाली चलनी और धातुओं को काटने वाली तीखी धार की वस्तुएं, रससिन्दूरादि के पाक करने के लिये चलानेवाली लौह की पतली २ शलाकाएं (हाटें) तथा स्थाली और कड़ाह वगैरे के रखने के लिए तृण की बनी

हुई कुण्डलियां, इत्यादि पदार्थों का संग्रह करना चाहिए ॥ ५–९ ॥

चालनीभेदलक्षणादिकम्—

चालनी त्रिविधा प्रोक्ता तत्स्वरूपं च कथ्यते ।
वैणवीभिः शलाकाभिर्निर्मिता ग्रथिता गुणैः ।
कीर्तिता सा सदास्थूलद्रव्याणां गालने हिता ॥ १० ॥
चूर्णचालनहेतोश्च चालन्यन्यापि वंशजा ॥ ११ ॥
कर्णिकारस्य शाल्मल्या हरिजातस्य कम्बया ।
चतुरङ्गुलविस्तारयुक्तया निर्मिता शुभा ॥ १२ ॥
कुण्डल्यरत्निविस्तारा छागचर्माभिवेष्टिता ।
वाजिबालाम्बरानद्धतला चालनिका परा ॥
तया प्रचालनं कुर्याद्धतुं सूक्ष्मतरं रजः ॥ १३ ॥

औषध चूर्ण को छानने वाली चालनी तीन तरह की होती है। आगे उनका स्वरूप लिखते हैं यथा बासों की सलियों से बनी हुई और मजबूत धागे से बंधी हुई जो चालनी होती है वह मोटे २ द्रव्यों के चालने के लिये उपयोगी होती है। दूसरी चालनी भी बांस ही से बनाई जाती है उसके द्वारा चूर्ण वगैरा छानना चाहिए। एक तीसरी चलनी होती है जो कि अमलतास, सेमल और चन्दन या वांस के कम्ब (वल्कल) से बनाई जाती है जो कि चार अङ्गुल ऊंची और उसकी चौड़ाई लम्बाई एक वेंत (बालिस्त) होनी चाहिए और बकरे के चर्म से चारों ओर मढकर के उसके तलभाग में घोड़े के बाल या वस्त्र बांधना चाहिए, इसके द्वारा औषधियों के छोटे २ चूर्ण को चालते हैं ॥ १०–१३ ॥

रससिद्धावुपकरणानि—

मूषा-मृत्तुष-कार्पासवनोपलकपिष्टकम् ।
त्रिविधं भेषजं धातुजीवमूलमयं तथा ॥ १४ ॥
शिखित्रा गोर्वरं चैव शर्करा च सितोपला ।
शिखित्राः पावकोच्छिष्टा अङ्गारा कोकिला मताः ॥ १५ ॥
कोकिलाश्चेतिताङ्गारा निर्वाणाः पयसा विना ॥ १६ ॥

पाचों प्रकार की मिट्टी, मूषा, तुष (जो गेहूं आदि की भूसी), कार्पास (रूई या विनौले), जंगलीकण्डे, तण्डुलपिष्ट और तीन प्रकार की धातु स्वर्णादि,

जीवमयक्षीर, मूत्र, पुरीष, मूलमय वनौषधादिक औषधियों का भी संग्रह करना चाहिए। इनके अतिरिक्त शिखित्र, गोबर, बालुका, कठिनी (सफेदा, रेता) इनका भी संग्रह करे। जिस तरह कुम्भकार कच्चे घड़ों को पकाता है उसी तरह से लकड़ों के टुकड़ों के ढेर को ऊपर से बन्दकर भीतर ही भीतर अग्नि द्वारा लकड़ियें पकाकर कोयले बनाये जाते हैं इन्हीं को प्रायः शिखित्र, कोकिला आदि नाम से कहते हैं। परन्तु मूलपाठ की संगति के लिये शिखित्र का स्वरुप इस तरह है जो अग्नि से जलकर शेष रहे हुए कोयले हैं वे शिखित्र कहलाते हैं और जो लकड़ी के टुकड़े कुम्भकार के आंवे की तरह अन्दर ही अन्दर अग्नि से जलकर पानी के बिना ही बुझ जाते हैं वे कोयले कहे जाते हैं ॥ १४-१६ ॥

उपलनामानि—

पिष्टकं छगणं छाणमुपलं चोत्पलं तथा ।
गिरिण्डोपलसाठी च संशुष्कच्छागणाभिधाः ॥ १७ ॥

पिष्टक, छगण, छाण, उपल, उत्पल, गिरिण्डोपल और साठी ये सात नाम सूखे गोबर के हैं ॥ १७ ॥

कूपीनिर्माणद्रव्याणि—

काचायोमृद्वराटानां कूपिका चषकानि च ॥ १८ ॥

काच, लौह, मिट्टी और कौड़ियें इनकी बनाई हुई शीशिएं तथा प्याले एकत्रित करे ॥१८॥

कूपीपर्यायाः—

कूपिका कुपिका सिद्धा गोला चैव गिरिण्डिका ॥ १९ ॥

शीशियों के नाम कूपिका, कुपिका, सिद्धा, गोला, गिरिण्डिका ये हैं ॥१९॥

अथ चषकस्य पर्यायाः—

चषकं च कटोरी च वाटिका खारिका तथा ।
कञ्चोली ग्राहिका चेति नामान्येकार्थकानि हि ॥ २० ॥

चषक, कटोरी, वाटिका, खारिका, कंचोली, और ग्राहिका ये नाम परस्पर एकार्थ को कहते हैं ॥ २० ॥

शूर्पादीनां समर्चनम्—

शूर्पादिवेणुपात्राणि क्षुद्रशिप्राश्च शल्लिकाः ।
क्षुरप्राश्च तथा पाव्यः यच्चान्यत्तत्र युज्यते ॥

पालिका कर्णिका चैव शाकच्छेदनशस्त्रकाः ॥ २१ ॥
शालासम्मार्जनाद्यं हि रसपाकान्तकर्म यत् ।
तत्रोपयोगि यच्चान्यत्तत्सर्वं परविद्यया ॥ २२ ॥
श्रीरसाङ्कुशया सर्वं मन्त्रयित्वा समर्चयेत् ।
अन्यथा तद्गतं तेजः परिगृह्णन्ति भैरवाः ॥ २३ ॥

सूप आदि बांस के बने हुए पात्र, छोटी २ सीपें (शुक्तियां), छोटे २ शंख, छुरियां, पाक करने योग्य पात्र और जो कुछ वस्तु औषध कर्म में उपयुक्त समझी जाय वह तथा शाकादि काटने के शस्त्र पालिका, कर्णिका, रस-शाला का सम्मार्जन करने के लिये सम्मार्जनी (झाड़ू) आदि से लेकर पाककर्म तक जो कुछ भी उपकरण आवश्यक हों उनका संग्रह करके श्रेष्ठ जो रसाङ्कुशी विद्या है उसके द्वारा उन सबको अभिमन्त्रित करके पूजें। इस तरह उनका पूज-नादिक नहीं करने से उनके अन्दर के तेज (शक्ति) को भैरव हर लेते हैं ॥२१-२३॥

अथ रसक्रियायां कीदृशा वैद्या अन्ये वा नियोज्यास्तत्कथनम्—

रससञ्चिन्तका वैद्या निघण्टुज्ञाश्च वार्तिकाः ।
सर्वदेशजभाषाज्ञाः सङ्ग्राह्यास्तेऽपि साधकैः ॥ २४ ॥

रस के साधक को जो वैद्य रससिद्धि के करने का विचार रखते हों और जो निघण्टु (औषधियों के नाम, लक्षण, गुण, दोष, प्रयोग) के उत्तम ज्ञान से सम्पन्न हों और जो वैद्य परिभाषा (सांकेतिक शब्दार्थ) तथा वार्तिक "उक्तानुक्तदुरुक्तार्थव्यक्तकारितुवार्तिकम्" के अर्थ को तथा सब देशों की भाषाओं को जानते हों उन वैद्यों का संग्रह करना चाहिए ॥ २४ ॥

अथ रसपाककाले मन्त्रजपस्य कर्तव्यतानिर्देशः—

रसपाकावसानं हि सदाऽघोरं च जापयेत् ॥ २५ ॥

जब तक रस का पाक होता रहे तब तक अघोर मन्त्र का किसी ब्राह्मण के द्वारा जप कराते रहना चाहिए ॥ २५ ॥

अथ परिचारकलक्षणम्—

सोद्यमाः शुचयः शूरा बलिष्ठाः परिचारकाः ॥ २६ ॥

जो परिचारक उद्योगशील, पवित्र, शूरवीर और बलवान् हों उन्हें रस के कार्य में नियुक्त करना चाहिए ॥ २६ ॥

पद्महस्तवैद्यलक्षणम्—

धर्मिष्ठः सत्यवाग्विद्वान् शिवकेशवपूजकः।
सदयः पद्महस्तश्च संयोज्यो रसवैद्यके ॥ २७ ॥

जो धर्म में तत्पर, सत्य बोलने वाला, रसशास्त्र का विद्वान् और शिव, विष्णु का भक्त, दयावान् तथा जिसके हाथ में कमल का चिन्ह हो वह पद्महस्त वैद्य है उसको रससिद्धि करने में नियुक्त करें ॥ २७ ॥

अमृतहस्तवैद्यलक्षणम्—

पताकाकुम्भपाथोजमत्स्यचापाङ्कपाणिकः।
अनामाधस्थरेखाङ्कः सस्यादमृतहस्तवान् ॥ २८ ॥

जिस के हस्त में ध्वजा, घट, कमल, मत्स्य और धनुष इनका चिन्ह हो तथा जिसकी अनामिका अङ्गुली के मूल में रेखाएं हों वह अमृतहस्त वैद्य कहलाता है ॥२८॥

दग्धहस्तवैद्यस्य लक्षणम्—

अदेशिकः कृपामुक्तो लुब्धो गुरुविवर्जितः।
कृष्णरेखाकरो वैद्यो दग्धहस्तः स उच्यते ॥ २९ ॥

जो अन्य देश से आया हो तथा दयारहित, लोभी, गुरुदीक्षा से रहित हो तथा जिसके हाथ में काली रेखा हो वह वैद्य दग्धहस्त कहलाता है, उसको रसकर्म में नियुक्त नहीं करना चाहिए ॥ २९ ॥

निधिरक्षायोग्यपुरुषाः—

भूतनिग्रहमन्त्रज्ञास्ते योज्या निधिसाधने ॥ ३० ॥

भूत, प्रेत, पिशाचादि को दूर करने या वशमें करने के मन्त्र जो जानते हों उन्हें सिद्ध भस्म, पाक आदि की रक्षा के लिये नियुक्त करना चाहिए ॥ ३० ॥

अथ बलिसाधने नियोज्यपुरुषलक्षणम्—

बलिष्ठाः सत्यवन्तश्च रक्ताक्षाः कृष्णविग्रहाः।
भूतत्रासनविद्याश्च ते योज्या बलिसाधने ॥ ३१ ॥

जो पुरुष बलवान् , सत्यवादी, लालनेत्र और काले शरीर के हों और जो भूत प्रेतों को डराने वाली विद्या को जानते हों उन्हें बलिदान करने के कार्य में नियुक्त करना उत्तम है ॥ ३१ ॥

अथ रसायने नियोज्यपुरुषलक्षणम्—

निर्लोभाः सत्यवक्तारो देवब्राह्मणपूजकाः ।
यमिनः पथ्यभोक्तारो योजनीया रसायने ॥ ३२ ॥

जो मनुष्य लोभरहित, सत्यवक्ता, देवता और ब्राह्मणों के पूजक, इन्द्रियनिग्रहशील और पथ्यभोजी हों उनको रससिद्धि में नियुक्त करें ॥ ३२ ॥

स्वर्णादिधातुसिद्धिनियुक्तियोग्यपुरुषाः—

धनवन्तो वदान्याश्च सर्वोपस्करसंयुताः ।
गुरुवाक्यरता नित्यं धातुवादेषु ते शुभाः ॥ ३३ ॥

जो पुरुष धनाढ्य, दान करने वाले तथा गुरु के वचनों का पालन करते हों उन्हें स्वर्ण, रौप्य आदि धातुओं के शोधन और मारण कर्म में नियुक्त करें ॥३३॥

अथ भेषजाहरणे नियोज्यपुरुषलक्षणम्—

तत्तदौषधनामज्ञाः शुचयो वञ्चनोज्झिताः ।
नानाविषयभाषाज्ञास्ते मता भेषजाहृतौ ॥ ३४ ॥

जो मनुष्य सब औषधियों के नाम को भलिभांति जानते हों और पवित्र, धूर्ततारहित तथा सबदेश की भाषा से परिचित हों उन्हें औषधियां लाने के लिये नियुक्त करना चाहिए ॥ ३४ ॥

अथ केषां रससिद्धिर्भवतीत्याह—

शुचीनां सत्यवाक्यानामास्तिकानां मनस्विनाम् ।
सन्देहोज्झितचित्तानां रसः सिद्ध्यति सर्वदा ॥ ३५ ॥

जिन की अन्तरात्मा, मन, कर्म और शरीर शुद्ध हो तथा जो सत्यवादी, आस्तिक (इहलोक, परलोक, आत्मा, परमात्मा इत्यादि के अस्तित्व का ज्ञान रखने वाले), मन को जीतने वाले, रसादिसिद्धि के सन्देह से रहित हों उन्हीं को पारद की सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥

अथ रससिद्धसाधकस्य कर्तव्यनिर्देशः—

दशाष्टक्रियया सिद्धो रसोऽसौ साधकोत्तमः ।
हा रसो नष्टमित्युक्त्वा सेवेतान्यत्र तं रसम् ॥ ३६ ॥

जो पुरुष स्वेदनमर्दनादि १८ संकारों के द्वारा रस को सिद्ध कर लेता है वह रस के साधकों में उत्तम साधक है तथा वह रस मूर्च्छना वगैरा से मृत हो गया

इस तरह का विषाद कर फिर किसी अन्य स्थान में रस साधन का कर्म प्रारम्भ कर देता है ॥ ३६ ॥

विमर्शः—कुछ पुस्तकों में "हारसोनष्ट" के स्थान में 'महारसोऽयमित्युक्त्वा, ऐसा पाठ है वह भी ठीक है, उसका अर्थ यह महारस है ऐसा कह कर उसका सेवन करें। जहां पर "सिद्धो रसः" के स्थान में "सिद्धे रसे" ऐसा पाठ है वहां का अर्थ 'रस के सिद्ध होने पर यह है। यदि कोई शङ्का करे कि रस के सिद्ध होने पर उसके विषय में विषाद क्यों किया जाता है। उत्तर-जिस तरह राम, युधिष्ठिर आदि महा-पुरुष शत्रुओं को मार कर भी उनके लिये विषाद करते हैं वैसे ही यहां पर भी विषाद करना असङ्गत नहीं है ॥

रससिद्धमत्यफलम्—

रससिद्धो भवेन्मर्त्यो दाता भोक्ता न याचकः।
जरामुक्तो जगत्पूज्यो दिव्यकान्तिः सदा सुखी ॥ ३७ ॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये रसशालाप्रकरणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जो पुरुष रससिद्धि प्राप्त कर लेता है वह दाता, भोक्ता, संसार का पूज्य, जरा (बुढौति) से रहित, दिव्य कान्ति से युक्त और सर्वदा सुखी रहता है और वह किसी के पास याचक बन कर मांगने नहीं जाता है अर्थात् उसके पास सब सिद्धिएं आजाती हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्य-भाषाटीकायां रसशालानिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः।

अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

अथ परिभाषा—

कथ्यते सोमदेवेन मुग्धवैद्यप्रबुद्धये ।
परिभाषा रसेन्द्रस्य शास्त्रैः सिद्धैश्च भाषिता ॥ १ ॥

अब सोमदेव नामक रसशास्त्र के आचार्य, अल्प मति वैद्यों को सहज में ज्ञान हो जाय इसलिये शास्त्र और सिद्ध पुरुषों से कही हुई रस सम्बन्धी परिभाषा को कहते हैं ॥ १ ॥

धन्वन्तरिभागः—

अर्धं सिद्धरसस्य तैलघृतयोर्लेहस्य भागोऽष्टमः
संसिद्धाखिललोहचूर्णवटकादीनां तथा सप्तमः ।
यो दीयेत भिषग्वराय गदिभिर्निर्दिश्य धन्वन्तरिम् ।
सर्वाऽऽरोग्यसुखाप्तये निगदितो भागः स धन्वन्तरेः ॥ २ ॥

जो रोगी अपने रोगमुक्ति के लिये तथा आरोग्य और सुखप्राप्ति के निमित्त वैद्य के द्वारा अपने द्रव्य से औषध निर्माण कराकर उसमें से निर्माता वैद्य को जारणमारणादिविधि से सिद्ध हुए रस और सिद्धकिये हुए घृत, तैल का आधाभाग, अवलेह का आठवांभाग, सिद्ध हुए सप्तलोह, चूर्ण, वटक इत्यादि में से सप्तमांश (सातवां) भाग धन्वन्तरि के निमित्त देता है वह धन्वन्तरि का भाग कहलाता है ॥२॥

रुद्रभागः—

भैषज्यक्रीणितद्रव्यभागोऽप्येकादशो हि यः ।
वणिग्भ्यो गृह्यते वैद्यै रुद्रभागः स उच्यते ॥ ३ ॥

औषधि के लिये खरीदे हुए द्रव्यों में का व्यापारियों से जो ग्याहरवां भाग वैद्य लेते हैं वही रुद्रभाग कहलाता है ॥ ३ ॥

अथ विश्वासघातकवैद्यलक्षणम्—

प्रगृह्याऽधिकरुद्रांशं योऽसमीचीनमौषधम् ।
दापयेल्लुब्धधीर्वैद्यः स स्याद्विश्वासघातकः ॥ ४ ॥

जो लोभी वैद्य अधिक मात्रा से रुद्रभाग लेकर खराब औषधि को श्रेष्ठ कह कर देता है या अन्य से दिला देता है वह वैद्य विश्वासघातक है ॥ ४ ॥

अथ कज्जली—

धातुभिर्गन्धकाद्यैश्च निर्द्रवैर्मर्दितो रसः ।
सुश्लक्ष्णः कज्जलाभोऽसौ कज्जलीत्यभिधीयते ॥ ५ ॥

गन्धक आदि धातुओं के साथ पारद को किसी द्रवपदार्थ (अम्लरस इत्यादि) के विना ही घोटकर उसका अत्यन्त चिकना और कज्जल के समान काला चूर्ण तैयार करते हैं उसी को कज्जली कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ रसपङ्कः—

सद्रवा मर्दिता सैव रसपङ्क इति स्मृतः ॥ ६ ॥

यदि उपर्युक्तविधि से बनी कज्जली में द्रवपदार्थ मिलाकर घोटाजाय तब उसको रसपङ्क कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ पिष्टी—

अर्कांशतुल्याद्रसतोऽथगन्धान्निष्कार्धतुल्यात्त्रुटिशोऽभिखल्ले ।
अर्कातपे तीव्रतरे विमर्द्यात् पिष्टीभवेत्सा नवनीतरूपा ॥ ७ ॥

आधा निष्क (२ माषा) गन्धक और गन्धक से द्वादशांश (१२ वां भाग) शुद्ध पारद लेकर खरल में डालकर तेजधूप में घोटना चाहिए । जब घोटते २ मक्खन के समान चिकना चूर्ण होजाय तब उसको पिष्टि कहते है ॥ ७ ॥

मतान्तरम्—

खल्ले विमर्द्य गन्धेन दुग्धेन सह पारदम् ।
पेषणात्पिष्टतां याति सा पिष्टीति मता परैः ॥ ८ ॥

खरल के अन्दर दुग्ध के साथ बराबर २ शुद्ध पारद तथा गन्धक को घोटने से जब वह पिष्टि के रुप में हो जाय तब पिष्टि कहलाती है । यह भी अन्य आचार्य का मत है ॥ ८ ॥

अथ पातनपिष्टी—

चतुर्थांशसुवर्णेन रसेन घृष्टपिष्टिका ।
भवेत्पातनपिष्टी सा रसस्योत्तमसिद्धिदा ॥ ९ ॥

एक भाग शुद्ध पारद को चौथाई भाग सुवर्ण पत्रों के साथ घोटने से जो पिष्टी (कज्जली) तैय्यार होती है उसको पातन पिष्टी कहते हैं (अर्थात् सुवर्ण के साथ इस तरह पारद को घोटकर पिष्टि बना के उसका उर्ध्वपातन करते हैं) । इससे पारद के अन्दर अनेक गुणों का आधान होता है ॥ ९ ॥

अथ स्वर्णरौप्ययोः कृष्टि—

रूप्यं वा जातरूपं वा रसगन्धादिभिर्हतम् ।
समुत्थितं च बहुशः सा कृष्टी हेमतारयोः ॥ १० ॥

पारद और गन्धक आदि के द्वारा भस्य किये हुए स्वर्ण तथा रजत को उद्र्ध्व-पातन यन्त्र द्वारा अनेक औषधियों से जो पुनरुत्थापित कहते हैं, यह स्वर्ण और रजत की कृष्टी कही जाती है ॥ १० ॥

अथ कृष्टया उपयोगः—

कृष्टीं क्षिपेत्सुवर्णान्तर्न वर्णो हीयते तथा ॥ ११ ॥

उक्त विधि से की हुई स्वर्ण या रौप्य की कृष्टी को अग्निपर गलाकर स्वर्ण में मिलाने से स्वर्ण का रङ्ग कम नहीं होता है ॥ ११ ॥

स्वर्णकृष्टयाः कार्यम्—

स्वर्णकृष्टया कृतं बीजं रसस्य परिरञ्जनम् ॥ १२ ॥

स्वर्ण कृष्टी से किया हुआ बीज (बनाने की विधि आगे है) पारद का रञ्जन करता है ॥ १२ ॥

अथ वरलोहकम्—

ताम्रं तीक्ष्णसमायुक्तं द्रुतं निक्षिप्य भूरिशः ।
सगन्धलकुचद्रावे निर्गतं वरलोहकम् ॥ १३ ॥

तीक्ष्णलोह तथा ताम्र को बहुतवार (प्रायः ७ वार) साथ ही पिघलाकर गन्धक के चूर्ण को बड़हल के रस में मिलाकर उसमें बुझाने से लोह को वरलोह कहा जाता है ॥ १३ ॥

अथ हेमरक्ती—

तेन रक्तीकृतं स्वर्णं हेमरक्तीत्युदाहृतम् ॥ १४ ॥

इस वरलोह के साथ स्वर्ण को पिघलाने से वह उत्तम लालवर्ण का हो जाता है उसको हेमरक्ती कहते हैं ॥ १४ ॥

हेमरक्तीप्रयोगः—

निक्षिप्ता सा द्रुते स्वर्णे स्वर्णोत्कर्षविधायिनी ।
तारस्य रञ्जनी चापि बीजरागविधायिनी ॥ १५ ॥

यह हेमरक्ती पिघले हुए स्वर्ण के साथ डालकर उसमें मिलाने से उसका रङ्ग

श्रेष्ठ बनादेती है तथा चांदी को रङ्ग देती है और उसके बीजराग को भी बनाती है॥ १५॥

अथताररक्ती—

एवमेव प्रकर्तव्या ताररक्ती मनोहरा ।
रञ्जनी खलु रूप्यस्य वीजानामपि रञ्जनी ॥ १६ ॥

हेमरक्ती की तरह वरलोह के साथ चांदी को गला कर ताररक्ती बनाते हैं, यह ताररक्ती चांदी को तथा चांदी के बीजों को भी रङ्ग देती है ॥ १६ ॥

अथ दलम्—

मृतेन वा बद्धरसेन वाऽन्यल्लोहेन वा साधितमन्यलोहम् ।
सितं च पीतत्वमुपागतं तद्दलं हि चन्द्रानलयोः प्रसिद्धम् ॥१७॥

भस्महुए पारद अथवा निगड़ीकरण क्रिया द्वारा संयमित (बद्ध) पारद के साथ या किसी अन्य लोह आदि धातु के साथ सिद्ध की हुई कोई धातु जब श्वेत वर्ण की होजाती है तब उसको चन्द्रदल कहते हैं और जब वह पीतवर्ण की होजाती है तब उसको अग्निदल कहते हैं ॥ १७ ॥

अथ अन्यविधदलम्—

आमासकृतबद्धेन रसेन सह योजितम् ।
साधितं वाऽन्यलोहेन सितं पीतं च तद्दलम् ॥ १८ ॥

एक मास तक रस को निगड़ीकरण क्रिया द्वारा बद्ध करके उस (बद्ध हुए) के साथ या उसकी भस्म के साथ या किसी अन्य लोह के साथ सिद्ध की हुई किसी धातु को श्वेत होनेपर सितदल और पीत होने पर पीतदल कहते हैं ॥१८॥

अथ शुल्वनागम्—

माक्षिकेण हतं ताम्रं दशवारं समुत्थितम् ।
तद्वद्धिशुद्धनागं हि द्वितयं तच्चतुष्पलम् ॥ १९ ॥
नीलाञ्जनहतं भूयः सप्तवारं समुत्थितम् ।
इति संसिद्धमेतद्धि शुल्वनागं प्रकीर्त्यते ॥ २० ॥

शुद्ध स्वर्णमाक्षिक चूर्ण के साथ शुद्ध ताम्र की भस्म बनाकर उसको उत्थापित करें, इस तरह फिर उस उत्थापित ताम्र की शुद्धस्वर्ण माक्षिक के साथ भस्म बनाकर उसको पुनः उत्थापित करें इसी प्रकार से यह क्रिया दसवार करनी चाहिए। शुद्ध नाग को भी शुद्धस्वर्णमाक्षिक के साथ भस्म करके उत्थापित करें इस तरह

इसको भी दसवार भस्म बनाकर उत्थापित करना चाहिए। पश्चात् इस नाग और ताम्र को चारपल की मात्रा में ग्रहणकर नीलाञ्जन के साथ भस्म करके उत्थापन करें। इस तरह भस्म करके सात वार उत्थापन करना चाहिए। इस क्रिया से शुद्ध नाग और ताम्र को शुल्वनाग कहते हैं ॥ १९–२० ॥

अथ शुल्वनागगुणाः—

साग्निस्तेन सूतेन्द्रो वदने विधृतो नृणाम्।
निहन्ति मासमात्रेण मेहव्यूहं विशेषतः ॥ २१ ॥
पथ्याशनस्य वर्षेण पलितं वलिभिः सह।
गृध्रदृष्टिर्लसत्पुष्टिसर्वारोग्यसमन्वितः ॥ २२ ॥

इस शुल्वनाग के साथ पारद की भस्म बना करके गोली बनाकर एक मास तक मुख में धारण करने से मनुष्यों के बीस प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं, इसी तरह जो मनुष्य पथ्य का पालन करता हुआ एक वर्ष तक इस गोली को मुख में धारण करता रहे तो उसके वली (युवावस्था में ही मुख तथा अन्य अङ्ग के चर्म में झुरियों का पड़ना) और पलित (असमय में बालों का सफेद होना) रोग नष्ट हो जाते हैं तथा उस मनुष्य की अवलोकन शक्ति (दृष्टि) गृध्र के समान बढ जाती है, शरीर पुष्ट हो जाता है, तथा उसका शरीर सब तरह से नीरोग होजाता है ॥ २१-२२ ॥

अथ पिञ्जरी—

लोहं लोहान्तरे क्षिप्तं ध्मातं निर्वापितं द्रवे।
पाण्डुपीतप्रभं जातं पिञ्जरीत्यभिधीयते ॥ २३ ॥

एक धा को अन्य धातु के साथ मिलाकर अग्नि में विद्रुत करके किसी त्रिफला इत्यादि के क्वाथ में बुझाने ने से यदि वह धातु पाण्डुवर्ण लिये हुई पीत वर्ण की हो जाय तब उसको पिञ्जरी कहते हैं ॥ २३ ॥

अथ चन्द्रार्कम्—

भागाः षोडश तारस्य यथा द्वादश भास्वतः।
एकत्रावर्तितास्तेन चन्द्रार्कमिति कथ्यते ॥ २४ ॥

चांदी १६ भाग और ताम्र १२ भाग लेकर दोनों को अग्नि में विद्रुत करके घोटकर जो रस तैयार होता है उसको चन्द्रार्क कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ निर्वापणम्—

साध्यलोहेऽन्यलोहं चेत्प्रक्षिप्तं वङ्कनालतः ।
निर्वापणं तु तत्प्रोक्तं वैद्यैर्निर्वाहणं खलु ॥ २५ ॥

अग्नि में विद्रुत हुई धातु में अन्य धातु को विद्रुत कर वङ्कनाल द्वारा डालने को निर्वापण कहते हैं और उसी का पर्याय वैद्य जनोंने निर्वाहण भी कहा है॥ २५॥

निर्वापणद्रव्यमात्रा—

क्षिपेन्निर्वापणं द्रव्यं निर्वाह्ये समभागिकम् ।
आवाह्यं वापनीये च भागे दृष्टे च दृष्टवत् ॥ २६ ॥

साध्य लोह में निर्वापण द्रव्य की मात्रा साध्य लोह के बराबर ही होनी चाहिए अथवा जैसी निर्वापण द्रव्य की मात्रा गुरुपरम्परा से सीखी या देखी हो उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए ॥ २६ ॥

अथ वारितरलोहलक्षणम्—

मृतं तरति यत्तोये लोहं वारितरं हि तत् ॥ २७ ॥

जो धातु फूंकने के पश्चात् अर्थात् उस धातु की भस्म जल पर तैरती रहे उसमें डूबे नहीं उसको वारितरभस्म या लोह कहते हैं ॥ २७ ॥

मृतलोहलक्षणम्—

अङ्गुष्ठतर्जनीघृष्टं यत्तद्रेखान्तरे विशेत् ।
मृतलोहं तदुद्दिष्टं रेखापूर्णाभिधानतः ॥ २८ ॥

किसी भी लोह (सप्तलोह) की भस्म को अङ्गुष्ठ तथा तर्जनी अङ्गुली के बीच में लेकर घर्षित करने से यदि वह भस्म उन दोनों की रेखाओं में प्रविष्ट हो जाय तथा नीचे नहीं गिरे तब उस धातु की भस्म को मृतलोह अथवा रेखापूर्ण नाम से कहते हैं ॥ ॥ २८ ॥

अपुनर्भवलक्षणम्—

गुडगुञ्जासुखस्पर्शं मध्वाज्यैः सह योजितम् ।
नायाति प्रकृतिं ध्मानादपुनर्भवमुच्यते ॥ २९ ॥

गुड़, गुञ्जाचूर्ण, सुहागा, शहद, घृत, इनके साथ किसी भी धातु की भस्म को मिलाकर अग्नि में फूंकने से यदि वह अपने स्वरूप को धारण नहीं करे तब उसको अपुनर्भव भस्म कहते हैं ॥ २९ ॥

उत्तमभस्मलक्षणम्—

तस्योपरि गुरु द्रव्यं धान्यं चोपनयेद्ध्रुवम् ।
हंसवत्तीर्यते वारिण्युत्तमं परिकीर्तितम् ॥ ३० ॥

फिर इस भस्म को जल पर तैराकर इसके ऊपर कोई वजनी पदार्थ अथवा धान के दाने रखने से यदि वह जल में डूबे नहीं और हंस के समान उस भस्म के सहारे तैरती रहे तब वह उत्तम भस्म होती है। कुछ ग्रन्थकरों ने इसको ऊनम भस्म भी कहा है ॥ ३० ॥

निरुत्थलोहलक्षणम्—

रौप्येण सह संयुक्तं ध्मातं रौप्येण चेल्लगेत् ।
तदा निरुत्थमित्युक्तं लोहं तदपुनर्भवम् ॥ ३१ ॥

लोह (सातलोह) भस्म को चांदी के पत्रों के साथ मिलाकर फूंकने से यदि वह उन रजत पत्रों के साथ मिश्रित हो जाय तब उसको निरूत्थ कहते हैं ॥ ३१ ॥

अथ बीजलक्षणम्—

निर्वापणविशेषेण तत्तद्वर्णं भवेद्यदा ।
मृदुलं चित्रसंस्कारं तद्बीजमिति कथ्यते ॥ ३२ ॥
इदमेव विनिर्दिष्टं वैद्यैरुत्तरणं खलु ॥ ३३ ॥

किसी धातु को गलाकर उसमें अन्य धातु का निर्वापण करने से वह धातु कोमल और अद्भुत गुणों को करने वाली होजाती है इसी का बीज कहते हैं तथा वैद्य लोग इसको उत्तरण भी कहते हैं ॥ ३२–३३ ॥

ताड़नस्वरूपम्—

संस्पृष्टलोहयोरेकलोहस्य परिनाशनम् ।
प्रध्मातं वङ्कनालेन तत्ताडनमुदाहृतम् ॥ ३४ ॥

दो धातु जब परस्पर मिली हो उनमें से एक धतु की शुद्धि करने के लिये और अन्य धातु को नष्ट करने के लिये उनको मूषायन्त्र में रखकर वङ्कनाल के द्वारा फूंकते हैं इसी को ताड़न कहते हैं ॥ ३४ ॥

अथ धान्याभ्रलक्षणम्—

चूर्णाभ्रं शालिसंयुक्तं वस्त्रबद्धं हि काञ्जिके ।
निर्यातं मर्दनाद्वस्त्राद्धान्याभ्रमिति कथ्यते ॥ ३५ ॥

शुद्ध अभ्रक के छोटे २ टुकड़े (चूर्ण) बनाकर उसको धान के साथ (भूसी युक्त चांवल) एक वस्त्र में रखकर पोटली बांन्ध लेते हैं, फिर उस पोट्टली को काञ्जी में भिगोकर रख देते हैं। बाद में पोट्टली को कूटने से उसमें से जो अभ्रक का चूर्ण निकलता है उसको धान्याभ्रक कहते हैं ॥ ३५ ॥

अथ सत्त्वलक्षणम्—

क्षाराम्लद्रावकैर्युक्तं ध्मातमाकरकोष्ठके।
यस्ततो निर्गतः सारः सत्त्वमित्यभिधीयते ॥ ३६ ॥

किसी धातु की भस्म को क्षार (टंकण) अम्ल (काञ्जी) और द्रावकवर्ग (गुञ्जा, मधु, घृत, गुड़,) के पदार्थों के साथ मिला कर कोष्ठिकायन्त्र में या मूषामें रखकर फूंक देने से जो उस भस्म का सार निकलता है उसको सत्त्व कहते हैं ॥ ३६ ॥

अथ एककोलिसकलक्षणम्—

कोष्ठिका शिखरापूर्णैः कोकिलैर्ध्मानयोगतः।
मूषाकण्ठमनुप्राप्यैरेककोलीसको मतः ॥ ३७ ॥

एक कोष्ठिका को कायलों से भरकर उन के बीच में द्रव्यों से भरी मूषा रखकर धोंकनी से फूंकना चाहिये। जब तक मूषा के भीतर का पदार्थ (धातु) उड़कर उसके कण्ठ में संलग्न न हो जाय तबतक यह क्रिया जारी रखनी चाहिए, इसी का नाम एककोलीसक है ॥ ३७ ॥

अथ द्रावणादिकर्मसाधने काष्ठनिर्देशः—

द्रावणे सत्त्वपाते च माधुकाः खादिराः शुभाः।
दुर्द्रावे वंशजास्ते तु स्वेदने बादराः शुभाः ॥ ३८ ॥

किसी धातु के द्रावण या सत्त्वपातन करने के लिये महुए या खैरके काष्ठ या कोयले श्रेष्ठ हैं तथा जो वस्तु कठिनता से द्रव होती है उसके लिये बांस के काष्ठ या कोयले और स्वेदन कर्म में बैर के कोयलों अथवा लकडियों का प्रयोग करना चाहिए ॥ ३८ ॥

अथ हिङ्गुलाकृष्टरसः—

विद्याधराख्ययन्त्रस्थादार्द्रकद्रावमर्दितात्।
समाकृष्टो रसो योऽसौ हिङ्गुलाकृष्ट उच्यते ॥ ३९ ॥

हिङ्गुल को अद्रक के स्वरस में घोटकर विद्याधरयन्त्र के द्वारा (उसमें लेपकर) उड़ाकर निकाले हुए पारद को हिङ्गुलाकृष्ट पारद कहते हैं ॥ ३९ ॥

अथ घोषाकृष्टताम्रलक्षणम्—

स्वल्पतालयुतं कांस्यं वङ्कनालेन ताडितम् ।
मुक्तरङ्गं हि तत्ताम्रं घोषाकृष्टमुदाहृतम् ॥ ४० ॥

कांस्य के अन्दर कुछ हरताल मिलाकर बङ्कनाल के द्वारा अग्नि में फूंकने से वङ्ग का भाग पृथक् हो जाता है और ताम्र पृथक् निकल जाता है इस ताम्र को घोषाकृष्ट ताम्र कहते हैं । कांस्य ताम्र और वंग के संयोग से बनता है उक्तविधि से ताम्र को पृथक् कर लेते हैं ॥ ४० ॥

अथ वरनागलक्षणम्—

तीक्ष्णनीलाञ्जनोपेतं ध्मातं हि बहुशो दृढम् ।
मृदु कृष्णं द्रुतद्रावं वरनागं तदुच्यते ॥ ४१ ॥

नाग को तीक्ष्ण लौह और नीलाञ्जन के साथ बहुत वार तेज आँच में फूंकने से जब वह अत्यन्त कोमल कृष्णवर्ण और अत्यन्त शीघ्र द्रुत होने लायक होजाय तब उसको वरनाग (उत्तम शीस) कहते हैं ॥ ४१ ॥

उत्थापनलक्षणम्—

मृतस्य पुनरुद्भूतिः सम्प्रोक्तोत्थापनाख्यया ॥ ४२ ॥

भस्म हुए लोह (सप्तधातु) को द्रावक वर्ग की औषधियों के साथ फूंकने से वह अपने स्वरूप में आजाता है इसी को उत्थापन कहते हैं ॥ ४२ ॥

ढालनलक्षणम्—

द्रुतद्रवस्य निक्षेपो द्रवे तद् ढालनं मतम् ॥ ४३ ॥

किसी धातु को अग्नि में द्रवित कर के द्रव में बुझाने से वह ढल (घन हो) जाती है, इसी को ढालन कहते हैं ॥ ४३ ॥

अथ नागसम्भूतचपलः—

त्रिंशत्पलमितं नागं भानुदुग्धेन मर्दितम् ।
विमर्द्य पुटयेच्चावद्यावत्कर्षावशेषितम् ॥ ४४ ॥
न तत्पुटसहस्रेण क्षयमायाति सर्वथा ।
चपलोऽयं समादिष्टो वार्तिकैर्नागसम्भवः ॥ ४५ ॥

३० पल (१२० तो०) नाग का चूर्ण बनाकर मदार के दुग्ध से भावित करके घोटलें, फिर गजपुट में उसे फूंकदें, इसविधि से बार२ मदार के दुग्ध से घोट-कर पुट देते देते जब उसकी मात्रा एक कर्ष (एक तोला) शेष रह जाती है उसी को वार्तिककारों (रसशास्त्रपरिभाषानिर्माताविद्वानों) ने नाग से उत्पन्न चपल कहा है। इस एक तोले का फिर यदि हजारों पुट भी दिये जावें तो भी वह नष्ट नहीं होता है ॥ ४४–४५ ॥

अथ वङ्गसम्भूतचपलः—

इत्थं हि चपलः कार्यो वङ्गस्यापि न संशयः ॥ ४६ ॥

उपर्युक्त विधि से वङ्ग धातु को भी अर्कदुग्ध से भावित कर अनेक पुट द्वारा उससे चपल का निर्माण किया जाता है ॥ ४६ ॥

चपलकार्यम्—

तत्स्पृष्टहस्तसंस्पृष्टः केवलो बध्यते रसः ॥ ४७ ॥

इस चपल को हाथों में मलकर पारद का स्पर्श मात्र करने से उसका बन्धन (गोली) हो जाता है, यह चपल का प्रभाव है ॥ ४७ ॥

बद्धरसोपयोगः—

स रसो धातुवादेषु शस्यते न रसायने।
अयं हि खर्वणाख्येन लोकनाथेन कीर्तितः ॥ ४८ ॥

चपल के द्वारा बद्ध हुए रस का उपयोग धातु वाद (लोह से स्वर्ण बनाने) में होता है। रसायन कर्म में इस पारे का उपयोग नहीं करना चाहिए। यह विधि खर्वण नामक लोकनाथ ने कही है ॥ ४८ ॥

अथ धौतम्—

भूभुजङ्गशकृत्तोयैः प्रक्षाल्यापहृतं रजः।
कृष्णवर्णं हि तत्प्रोक्तं धौताख्यं रसवादिभिः ॥ ४९ ॥

केंचुओं की विष्ठा को जल में घोल (विलयन) बना कर उस घोल में राख (अर्थात् चपल बनाते समय जो नाग या वङ्ग का भाग राख में रह जाता है उसे) को घुलाकर छानने से जो काले वर्ण का चूर्ण प्राप्त होता है उसको रसवादी धौत नाग और धौतवङ्ग कहते हैं। कुछ लोगों का यह अभिप्राय है कि केवल केंचुओं की विष्ठा को पानी में घोलकर छानने से जो कृष्ण वर्ण का चूर्ण प्राप्त होता है वह धौत कहा जाता है, परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है ॥ ४९ ॥

अथ द्वन्द्वानम्—

द्रव्ययोर्मर्दनाध्मानाद्‌द्वन्द्वानं परिकीर्तितम् ॥ ५० ॥

दो धातुओं को एक साथ मिलाकर फूंकने से या मर्दन करने से जो एकीकरण किया जाता है उसको द्वन्द्वान् कहते हैं ॥ ५० ॥

अथ भञ्जनी—

भागाद्‌द्रव्याधिके क्षेपमनुवर्णंसुवर्णके
द्रवैर्वा वह्निकाग्रासो भञ्जनी वादिभिर्मता ॥ ५१ ॥

सुवर्ण आदि धातुओं को विद्रुत कर उनमें अन्य पदार्थों के मिलाने को अनुवर्ण या सुवर्णक कहते हैं और धातुओं को गर्म कर किसी द्रव पदार्थ (स्वरस) के द्वारा उनकी अग्नि हरण करने को भञ्जनी कहते हैं ॥ ५१ ॥

अथ चुल्लका—

पतङ्गीकल्कतो जाता लोहे तारे च हेमता ।
दिनानि कतिचित्स्थित्वा यात्यसौ चुल्लका मता ॥ ५२ ॥

लोह या चांदी में कुछ औषधियों के संसर्ग से जो सुवर्ण सदृश रङ्ग (हेमता) उत्पन्न हो जाता है उसको पतङ्गी कहते हैं और कुछ दिनों के पश्चात् वह हेमता नष्ट हो जाती है उस अवस्था को चुल्लका कहते हैं। कुछ लोगों का मत है कि पतङ्गी नामक औषधि के कल्क में तार या लोह को कुछ दिन रखने से उनमें एक तरह से सुवर्ण के समान वर्ण उत्पन्न हो जाता है इसको चुल्लका कहते हैं ॥ ५२ ॥

अथ पतङ्गीरागः—

रञ्जिताद्धि चिराल्लोहाद्‌ध्मानाद्वा चिरकालतः ।
विनिर्यास स निर्दिष्टः पतङ्गीरागसंज्ञकः ॥ ५३ ॥

रञ्जित किये हुए लोह के कुछ दिन तक पड़े रहने से या उस को फूंक देने से जो सत्त्व निकलता है उसको पतङ्गीराग कहते है ॥ ५३ ॥

अथ आवापः—

द्रुते द्रव्यान्तरक्षेपो लोहाद्ये क्रियते हि यः ।
स आवापः प्रतीवापस्तदेवाऽऽच्छादनं मतम् ॥ ५४ ॥

अग्नि में विद्रुत हुए लोह में जो अन्य द्रव्य का प्रक्षेप किया जाता है उसको आवाप, प्रतीवाप अथवा आच्छादन कहते हैं ॥ ५४ ॥

अथ अभिषेकः—

द्रुते वह्निस्थिते लोहे विरम्याष्टनिमेषकम् ।
सलिलस्य परिक्षेपः सोऽभिषेक इति स्मृतः ॥ ५५ ॥

वन्हि के संयोग से द्रुत हुए लोहादिक में आठ निमेष के पश्चात् जो जल का छिड़काव दिया जाता है या जल डाला जाता है उसको अभिषेक कहते हैं ॥ ५५ ॥

अथ निर्वापलक्षणम्—

तप्तस्याप्सु विनिक्षेपो निर्वापः स्नपनं च तत् ॥ ५६ ॥

प्रतप्त लोह (सप्त या अष्ट धातु) को किसी औषधि के स्वरस में बुझाने को स्नपन या निर्वाप कहते हैं ॥ ५६ ॥

प्रतिवापसमयनिर्देशः—

प्रतीवापादिकं कार्यं द्रुते लोहे सुनिर्मले ॥ ५७ ॥

जब लोह अग्नि से द्रव होकर निर्मल हो जाय तभी उसका प्रतीवाप, स्नपन, और अभिषेक करना चाहिए ॥ ५७ ॥

अथ शुद्धावर्तः—

यदा हुताशो दीप्तार्चिः शुक्लोत्थानसमन्वितः ।
शुद्धावर्तस्तदा ज्ञेयः स कालः सत्त्वनिर्गमे ॥ ५८ ॥

जब अग्नि अच्छी तरह से प्रज्वलित हो जाय और उसमें से शुक्लता लिये हुए लालरंग की तीव्र लपटें निकलने लगें उस समय उसको शुद्धावर्त कहते हैं, धातुओं का सत्त्व इसी अवस्था में निकलता है, अर्थात् धातुओं के सत्त्व को उत्तम रीति से निकालने के लिये इतनी तेज आँच करनी आवश्यक है ॥ ५८ ॥

अथ बीजावर्तः—

द्राव्यद्रव्यनिभा ज्वाला दृश्यते धमने यदा ।
द्रावस्योन्मुखता सेयं बीजावर्तः स उच्यते ॥ ५९ ॥

किसी धातु का द्रावण करने के लिये उसको अग्नि में रख कर धौंकनी से धौंकते हैं, उस समय अग्नि में उस धातु के रंग के सदृश ज्वाला दिखाई देती है इसी समय में उस धातु का द्रव होना प्रारम्भ होता है इसको बीजावर्त कहते हैं ॥ ५९ ॥

अथ स्वाङ्गशीतलम्—

वह्निस्थमेव शीतं यत्तदुक्तं स्वाङ्गशीतलम् ॥ ६० ॥

किसी वस्तु को अग्नि पर पकाकर आंच देना बन्द कर देते हैं, जब वह वस्तु वायुमण्डल की शीतता से चूल्हे पर स्थित ही शीतल हो जाती है उसको स्वाङ्गशीतल कहते हैं ॥ ६० ॥

अथ बहिःशीतलम्—

अग्नेराकृष्य शीतं यत्तद्बहिः शीतमुच्यते ॥ ६१ ॥

किसी वस्तु का अग्नि मे पाक कर फिर उसको अग्नि से नीचे रख कर शीतल करते हैं इसको बहिःशीत कहते हैं ॥ ६१ ॥

अथ स्वेदनलक्षणम्—

क्षाराम्लैरौषधैर्वाऽपि दोलायन्त्रे स्थितस्य हि ।
पचनं स्वेदनाख्यं स्यान्मलशैथिल्यकारकम् ॥ ६२ ॥

क्षार (जवाखार, सुहागा, इत्यादि) तथा अम्लवर्ग की औषधियों का स्वरस दोलायन्त्र में भर कर उस में पारद, लोह, शंख, शुक्ति इत्यादि पदार्थों को उनके साथ पाचन करते हैं, इसको स्वेदन संस्कार कहते हैं। स्वेदन संस्कार करने से उस धातु का कुछ मल भाग पृथक् हो जाता है ॥ ६२ ॥

अथ मर्दनलक्षणम्—

उदितैरौषधैः सार्धं सर्वाम्लैः काञ्जिकैरपि ।
पेषणं मर्दनाख्यं स्याद्बहिर्मलविनाशनम् ॥ ६३ ॥

भिन्न २ वस्तु के मर्दन के लिये कही हुई औषधियों के साथ या सर्वप्रकार के अम्ल पदार्थों के स्वरस द्वारा (जिसके लिये जिसका शास्त्र में निर्देश हो) अथवा काञ्जी के साथ पारद या अन्य पदार्थ का खरल में पेषण करते हैं। इसको मर्दन संस्कार भी कहते हैं, इस संस्कार से भी पारद या अन्य पदार्थों के बहिर्मल का विनाश होता है ॥ ६३ ॥

अथ मूर्च्छनलक्षणम्—

मर्दनाऽऽदिष्टभैषज्यैर्नष्टपिष्टत्वकारकम् ।
तन्मूर्च्छनं हि वङ्गाहि-भुजकञ्चुकनाशनम् ॥ ६४ ॥

मर्दनसंस्कार में कही हुई औषधियों के चूर्ण, स्वरस या क्वाथ के साथ पारद को घोटकर उसकी कज्जली या पिण्डि अथवा सूक्ष्म चूर्ण कर लेते हैं इसको

मूर्च्छन संस्कार कहते हैं। यह संस्कार पारद के नाग, वङ्ग आदि महादोषों(१) को नष्ट करता है। पारद के अतिरिक्त अन्य पदार्थों का भी मूर्च्छन संस्कार करने से गुणोत्कर्ष होता है ॥ ६४ ॥

अथोत्थापनादिलक्षणम्—

स्वेदातपादियोगेन स्वरूपापादनं हि यत्।
तदुत्थापनमित्युक्तं मूर्च्छाव्यापत्तिनाशनम् ॥ ६५ ॥

मूर्च्छन संस्कार के कारण विरूपित हुए (निष्टपिष्ट हुए) पारद को फिर दोलायंत्र द्वारा स्वेदन करके या अग्नि और सूर्य के सन्ताप के द्वारा अपने पूर्व रूप में ले आते हैं, इसी को उत्थापन संस्कार कहते हैं। क्योंकि इस संस्कार से पारद पुनः स्वस्वरूप को ग्रहण कर लेता है ॥ ६५ ॥

बन्धलक्षणम्—

स्वरूपस्य विनाशेन पिष्टत्वाद्बन्धनं हि तत्।
विद्वद्भिर्निर्जितः सूतो नष्टपिष्टिः स उच्यते ॥ ६६ ॥

गन्धकादिक भिन्न २ पदार्थों के साथ पारद को घोटने से उसका श्वेत और चपलगुण नष्ट होकर चूर्ण या कज्जली बन जाती है और इस पेषण के कारण उसका बन्धन (मूर्तिबद्धरूप अथवा वन्हिनाऽनुच्छिद्यमानत्व) हो जाता है। इस प्रकार से जीते हुए (स्वाधीन किये हुए) पारद को विद्वान् लोग नष्टपिष्टि कहते हैं ॥६६॥

अथ पातनलक्षणम्—

उक्तौषधैर्मर्दितपारदस्य यन्त्रस्थितस्योर्ध्वमधश्च तिर्यक्।
निर्यातनं पातनसंज्ञमुक्तं वङ्गाहिसम्पर्कजकञ्चुकघ्नम् ॥ ६७ ॥

स्वेदन, मर्दनादिक संस्कार में बताई हुई तथा अन्य शास्त्रोक्त ओषधियों के साथ पारद को खरल में घोट करके ऊर्ध्वपातन, अधः पातन और तिर्यक् पातन यन्त्रों में लेप कर के या चूर्ण रूप ही में रख कर क्रम से पारद को ऊपर, नीचे और तिर्यक् मार्ग से उड़ाते हैं, इस को पातन कहते हैं। इस पातन संस्कार से पारद के नाग और वङ्ग से उत्पन्न कञ्चुकादिक दोष नष्ट हो जाते हैं। वास्तव में खनिज पारद में नाग, वङ्ग हरताल आदि बहुत से पदार्थ मिले रहते हैं। उन

---

(१) नागो वङ्गो मलोवन्हिश्चाञ्चल्यञ्च विषंगिरिः।
असह्याग्निर्महादोषानिसर्गाः पारदे स्थिताः ॥

पदार्थों से पारद को मुक्त करने के लिये शास्त्रकारों ने तीन प्रकार के पातनों का निर्देश किया है। पारद के अन्दर यह गुण है कि वह अग्नि लगते ही जिधर भी उसे मार्ग मिले उधर ही उड़ जाता है, किन्तु अन्य पदार्थ इस शक्ति से रहित हैं। जब पारद का ऊर्ध्वपातन करते हैं तब वह ऊपर उड़ जाता है किन्तु उसके साथ २ हरताल (आर्सेनिक) भी ऊपर उड़ता है इसलिये पारद का तिर्यक् पातन करते हैं। हरताल का तिर्यक् पातन नहीं होता है, इस तरह पारद हरताल से मुक्त हो जाता है। ऊर्ध्व पातन से अन्य नागादिक दोष नीचेही रह जाते हैं। इस वास्ते अशुद्ध पारद (हिङ्गुलोत्थ पारद से भिन्न) का तीनों प्रकार से पातन करना आवश्यक है ॥ ६७ ॥

अथ रोधनलक्षणम्—

जलसैन्धवयुक्तस्य रसस्य दिवसत्रयम् ।
स्थितिरास्थापनी कुम्भे याऽसौ रोधनमुच्यते ॥ ६८ ॥

मिट्टी के घड़े में पानी और सैन्धानीमक भरकर पारद को किसी दृढ वस्त्र में बांधकर या ऐसे हो तीन दिन तक पड़ा रहने देते हैं। यह क्रिया स्वेदन मूर्च्छनादिक संस्कारों से षण्ढभावापन्न पारद के दोषों को नष्ट कर उत्कृष्टगुणों का उसमें आस्थापन (उत्पादन) करती है और इसको रोधनसंस्कार कहते हैं ॥ ६८ ॥

नियमनलक्षणम्—

रोधनाल्लब्धवीर्यस्य चपलत्वनिवृत्तये ।
क्रियते पारदे स्वेदः प्रोक्तं नियमनं हि तत् ॥ ६९ ॥

रोधन संस्कार से उत्कृष्ट शक्ति को प्राप्त हुए पारद के चपल दोष को नष्ट करने के लिये सर्पाक्षी इत्यादि नियामकगण(१) की औषधों के स्वरस में पारद का स्वेदन करते हैं, उसको नियमन संस्कार(२) कहते हैं ॥ ६९ ॥

---

(१) नियामकगण—महाबला नागबला यमचिञ्चा पुनर्नवा ।
आखुपर्णी सहचरा वासिका काकमाचिका ॥ १ ॥
गोक्षुरः शरपुङ्खा च विष्णुक्रान्ता घनध्वनिः ।
मण्डूकपर्णी तुलसी बला च गिरिकर्णिका ॥ २ ॥

(२) यथा—सर्पाक्षीचिञ्चिका कन्याभृङ्गारकनकाम्बुभिः
दिनं संस्वेदितः सूतो नियमात् स्थिरतां व्रजेत् ।

—दीपनलक्षणम्—

धातुपाषाणमूलाद्यैः संयुक्तो घटमध्यगः ।
ग्रासार्थं त्रिदिनं स्वेदो दीपनं तन्मतं बुधैः ॥ ७० ॥

पारद का दोलायन्त्र के द्वारा धातु, उपधातु, पाषाण या अन्य दीपनद्रव्यों (औषध) के साथ स्वर्णादिक को ग्रास करने की शक्ति बढ़ाने के लिये तीन दिन तक स्वेदन किया जाता है, इसको विद्वान् दीपनसंस्कार कहते हैं ॥ ७० ॥

अथ ग्रासमानम्—

इयन्मानस्य सूतस्य भोज्यद्रव्यात्मिका मितिः ।
इयतीत्युच्यते याऽसौ ग्रासमानं समीरितम् ॥ ७१ ॥

इतनी मात्रा में पारद इतनी मात्रा वाले स्वर्ण अभ्रक आदि पदार्थ को ग्रसित कर सकता है, इस प्रकार जो माननिर्देश किया जाता है उसको ग्रासमान कहते हैं ॥ ७१ ॥

अथ जरणाभेदनिर्देशः—

ग्रासस्य चारणं गर्भे द्रावणं जारणं तथा ।
इति त्रिरूपा निर्दिष्टा जारणावरवार्तिकैः ॥ ७२ ॥
ग्रासः पिण्डः परिणामस्तिस्रश्चाख्याः पराः पुनः ॥ ७३ ॥
समुखा निर्मुखा चेति जारणा द्विविधा पुनः ॥ ७४ ॥

पारद के अन्दर ग्रासयोग्य स्वर्ण आदि का विना अग्नि संयोग के मिलाने को चारण और अग्नि संयोग से ग्रास तथा योग्य पदार्थ को द्रव करके मिलाने को द्रावण तथा रस के अन्दर ग्रासयोग्य द्रवीभूत स्वर्णादिक को मिलाकर विड़यन्त्रादि योग से (किसी काष्ठ औषधि के साथ) पाक करने को जारण कहते हैं। इस तरह रस परिभाषा को बनाने वाले विद्वानों ने तीन प्रकार का जारणसंस्कार कहा है। इसी के अन्य नाम ग्रास (पारद अन्य वस्तु को कवलित कर ले), पिण्ड (पिण्ड स्वरूप का जारण) तथा परिणाम (अवस्थान्तरप्राप्तिरूपजारण) हैं फिर जारणा के संमुखजारणा और निर्मुखजारणा ये दो भेद होते हैं ॥ ७२–७४ ॥

शतावरी शङ्खपुष्पी श्वेतार्कः कनकाह्वयः ।
चक्रमर्दः करञ्जश्च ब्रह्मदण्डी शिखण्डिनी ॥ ३ ॥
गुडूची सैन्धवं पाठा मृगाक्षी सोमवल्लिका ।
नियामकगणो ह्येषः प्रोक्तो रसविशारदैः ॥ ४ ॥

निर्मुखजारणालक्षणम्—

निर्मुखा जारणा प्रोक्ता बीजाऽऽदानेन भागतः ॥ ७५ ॥

आगे कहे हुए मुख से रहित (अर्थात् पारद में चतुःषष्ठ्यंश भाग बीज न मिलाया जाय) भिन्न २ जारण में यथानिर्दिष्ट भाग से बीज का मिलाना या प्रक्षेप करना चाहिए, इसी को निर्मुखजारणा कहते हैं ॥ ७५ ॥

अथ बीजादिनिर्देशः—

शुद्धं स्वर्णं च रूप्यं च बीजमित्यभिधीयते ॥ ७६ ॥

शुद्ध स्वर्ण और शुद्ध रूपे को बीज कहते हैं ॥ ७६ ॥

मुखलक्षणम्—

चतुःषष्ठ्यंशतो बीजप्रक्षेपो मुखमुच्यते ॥ ७७ ॥

पारद के अन्दर शुद्ध स्वर्ण या शुद्ध रौप्य को पारद की अपेक्षा ६४ भाग की मात्रा में मिलाने को मुख कहते हैं ॥ ७७ ॥

सम्मुखजारणालक्षणम्—

एवं कृते रसो ग्रासलोलुपो मुखवान् भवेत् ।
कठिनान्यपि लोहानि क्षमो भवति भक्षितुम् ॥
इयं हि सम्मुखा प्रोक्ता जारणा मृगचारिणा ॥ ७८ ॥

इस तरह पारद के अन्दर ६४ वें भाग की मात्रा में बीज के मिला देने पर वह मुखवाला होकर अन्य लोह अभ्रक इत्यादि कठिन धातुओं को ग्रसित (भक्षण) करने के लिये समर्थ हो जाता है, इसी को मृगचारी नाम वाले किसी विद्वान् ने सम्मुखाजारणा कही है ॥ ७८ ॥

अथ राक्षसवक्त्ररसलक्षणम्—

दिव्यौषधिसमायोगात्स्थितः प्रकटकोष्ठिषु ।
भुञ्जीताखिललोहाद्यं योऽसौ राक्षसवक्त्रवान् ॥ ७९ ॥

दिव्य औषधियों के साथ या मनःशिला के साथ मिलाकर खुले मुख वाली कोष्ठिका (यंत्र) में यदि पारा रखा जाय तो वह सम्पूर्ण लोहादि धातुओं को अपने अन्दर मिलाने में समर्थ हो जाता है, ऐसे पारद को राक्षसमुखी पारद कहते हैं अर्थात् जैसे राक्षस सबको खा जाता है उसी तरह पारद भी अत्यन्त बुभुक्षित हो जाता है ॥ ७९ ॥

चारणालक्षणम्—

रसस्य जठरे ग्रासत्तपणं चारणा मता ॥ ८० ॥

पारद के अन्दर किसी ग्रास करने योग्य लोहादि धातु के मिलाने या रस के साथ उसको मिश्रित करने को चारणा कहते हैं ॥ ८० ॥

गर्भद्रुतिलक्षणम्—

ग्रस्तस्य द्रावणं गभ गर्भद्रतिरुदहृाता ॥८१ ॥

पारद के अन्दर ग्रसित हुआ लोहादिक पदार्थ अग्नि संयोग से द्रुत होकर उसमें मिल जाते हैं इस को गर्भद्रुति कहते हैं ॥ ८१ ॥

बाह्यद्रुतिलक्षणम्—

वहिरेवं द्रतिं कृत्वा घनसत्त्वादिकं खलु ।
जारणाय रसेन्द्रस्य सा बाह्यद्रुतिरुच्यते ॥ ८२ ॥

अभ्रक का सत्त्व या अन्य लोहादिकों की भस्म को पृथक् द्रव कर के पारद के अन्दर जारण करने के लिये मिलाया जाता है, इस क्रियाको बाह्यद्रुति कहते हैं॥८२॥

द्रुतेर्भेदाः—

निर्लेपत्वं द्रुतत्वं च तेजस्त्वं लघुता तथा ।
असंयोगश्च सूतेन पञ्चधा तिलक्षणम् ॥ ८३ ॥

१ द्रव पदार्थ के साथ अच्छी तरह मिल जाना या अन्य मलसंसर्ग से रहित होना, २ विशेष रूप से पतला हो जाना, ३ पूर्व स्वरूप की अपेक्षा उत्तम रूप हो जाना, ४ स्वाभाविक गुरुता से कुछ लघुता आजाना, ४ पारद के साथ पृथक होकर दिखाई देना, ये ५ द्रुति के लक्षण हैं ॥ ८३ ॥

द्रुतेः स्वरूपम्—

औषधाध्मानयोगेन लोहधात्वादिकं तथा ।
सन्तिष्ठते द्रवाकारं सा द्रुतिः परिकीर्तिता ॥ ८४ ॥

द्रावक वर्ग की औषधियों के साथ सप्त या अष्ट प्रकार के लोह, रत्न, उपरत्न इत्यादि पदार्थ अग्नि में द्रव होकर किसी के साथ लिप्त न होते हुए उसी रूप में स्थित रहते हैं इसी को द्रुति कहते हैं ॥ ८४ ॥

अथ जारणाभेद—जारणालक्षणम्—

द्रुतग्रासपरीणामो विडयन्त्रादियोगतः ।

जारणेत्युच्यते तस्याः प्रकाराः सन्ति कोटिशः ॥ ८५ ॥

आगे कहे जाने वाले विड़यंत्र मूषायन्त्र इत्यादि के द्वारा द्रुत हुए स्वर्णादिक ग्रसित पदार्थ का पारे के साथ जो पाक किया जाता है उसको जारणा कहते हैं, इसके करोड़ों भेद हैं ॥ ८५ ॥

अथ विडादिलक्षणम्—

क्षारैरम्लैश्च गन्धाद्यैर्मूत्रैश्च पटुभिस्तथा ।
रसग्रासस्य जीर्णार्थं तद्विडं परिकीतितम् ॥ ८६ ॥

क्षार (यवक्षारादिक) अम्लपदार्थ (काञ्जी) गन्धक आदि धातु, गोमूत्र, और पांचो प्रकार के लवण इनके सहयोग से पारद में मिलि हुई स्वर्णादिक धातु का जारण करते हैं, इसको विडयन्त्र कहते हैं ॥ ८६ ॥

रञ्जनलक्षणम्—

सुसिद्धबीजधात्वादि-जारणेन रसस्य हि ।
पीतादिरागजननं रञ्जनं परिकीर्त्तितम् ॥ ८७ ॥

उत्तम प्रकार से सिद्ध किये हुए बीज (स्वर्ण और रौप्य) तथा धातुओं के साथ पारद का जारण करके उसमें जो पीत रक्त इत्यादि रंग उत्पन्न करते हैं इसको रञ्जन कहते हैं ॥ ८७ ॥

सारणालक्षणम्—

सूते सतैलयन्त्रस्थे स्वर्णादिक्षेपणं हि यत् ।
वेधाधिक्यकरं लोहे सारणा सा प्रकीर्त्तिता ॥ ८८ ॥

तैल से भरी हुई अन्धमूषा में पारद डाल कर उसमें स्वर्ण रौप्य आदि धातुओं को डाल कर उनमें वेध करते हैं अर्थात् अद्भुत गुणों का उद्भावन करते हैं इसी को सारणा कहते हैं ॥ ८८ ॥

वेधलक्षणं भेदाश्च—

व्यवायिभेषजोपेतो द्रव्ये क्षिप्तो रसः खलु ।
वेध इत्युच्यते तज्ज्ञैः स चानेकविधः स्मृतः ॥ ८९ ॥
लेपः क्षेपश्च कुन्तश्च धूमाख्यः शब्दसंज्ञकः ॥ ९० ॥

अफीम, भङ्गा, नागवल्ली, कुमारी, धत्तूर इत्यादि व्यवायशक्तिवर्धक पदार्थों के साथ पारद को स्वर्णादि के समान गुण उत्पन्न करने के लिये लोहादिक धातु

में डालते हैं इसको वेध कहते हैं, और यह वेध अनेक प्रकार का है। लेपवेध, क्षेपवेध,कुन्तवेध धूमवेध, शब्दवेध इस तरह से वेध पाँच प्रकार का होता है॥८९-९०॥

लेपवेधलक्षणम्—

लेपनं कुरुते लोहं स्वर्णं वा रजतं तथा।
लेपवेधः स विज्ञेयः पुटमत्र च सौरकम् ॥ ९१ ॥

लोह आदि धातुओं पर वेधसामर्थ्य उत्पन्न करने वाली विशेष क्रिया से सिद्ध हुए पारद का लेप करके उस लोहादि धातु को स्वर्ण या रोप्य के रूप में परिवर्तित कर देते हैं इसी को लेपवेध कहते हैं। इस क्रिया में उस धातु पर पारद का लेप कर सौरक पुट (सूर्य पुट) से उसे पकाते हैं ॥ ९१ ॥

क्षेपवेधलक्षणम्—

प्रक्षेपणं द्रुते लोहे वेधः स्यात्क्षेपसंज्ञितः ॥ ९२ ॥

किसी रजत या ताम्र इत्यादि को द्रव कर के उस में पारद (विशेषऔषध मिश्रित) को डालतें हैं। इसको क्षेपवेध कहते हैं ॥ ९२ ॥

कुन्तवेधलक्षणम्—

सन्दंशधृतसूतेन द्रुतद्रव्याहतिश्च या।
सुवर्णत्वादिकरणं कुन्तवेधः स उच्यते ॥ ९३ ॥

किसी धातु को अग्नि में द्रव करके उस द्रवित धातु में सूतिवद्ध पारद को संदशयंत्र से पकड़ कर डुवाते हैं इससे वह द्रुत धातु (जिसमें पारद डुबाया जाता है) सुवर्ण के समान रूप और गुणों को करने लायक हो जाती है इसी को कुन्तवेध कहते हैं ॥ ९३ ॥

धूमवेधलक्षणम्—

वह्नौ धूमायमानेऽन्तः प्रक्षिप्तरसधूमतः।
स्वर्णाद्यापादनं लोहे धूमवेधः स उच्यते ॥ ९४ ॥

धूप से युक्त वन्हि की भट्टी पर एक कड़ाही रख देनी चाहिए, फिर इसमें पारद डाल देना चाहिए। जब कड़ाही के अन्दर रखे हुए पारद में धूआं निकलने लगे तब उस में अन्य भट्टी पर गले हुए लोह को डाल देते हैं इससे उस धातु में स्वर्ण के गुण धर्म उत्पन्न हो जाते हैं इसको धूमवेध कहते हैं ॥ ९४ ॥

शब्दवेधलक्षणम्—

मुखस्थितरसेनाल्पलोहस्य धमनात्खलु ।
स्वर्णरूप्यत्वजननं शब्दवेधः स कीर्त्तितः ॥ ६५ ॥

किसी लौह आदि धातु के कुछ भाग को अग्नि पर विद्रुत कर उसको मुख में रखे हुए पारद (वेधसमर्थपारद गोली) से एकनली के द्वारा फूंक के जोर से धमने से वह धातु स्वर्ण या रौप्य के रूप में परिवर्तित हो जाती है इसको शब्द-वेध कहते हैं ॥ ९५ ॥

उद्धाटनलक्षणम्—

सिद्धद्रव्यस्य सूतेन कालुष्यादिनिवारणम् ।
प्रकाशनं च वर्णस्य तदुद्धाटनमीरितम् ॥ ६६ ॥

मृत किये हुए (भस्म किये हुए) लोहादिक द्रव्यों की कलुषता (मालिन्य) विशेष रूप से सिद्ध पारद के द्वारा दूर की जाती है और उस मृत लोहादिक के रङ्ग को भी पारद उत्कृष्ट करता है इस को उद्धाटन कहते हैं ॥ ९६ ॥

स्वेदनलक्षणम्—

क्षाराम्लैरौषधैः सार्द्धं भाण्डं रुद्ध्वाऽतियत्नतः ।
भूमौ निखन्यते यत्नात्स्वेदनं सम्प्रकीर्त्तितम् ॥ ६७ ॥

क्षार, अम्ल, (काञ्जी) तथा और भी अन्य औषधियों को भाण्ड में भरकर उसमें पारद या अन्य लोह इत्यादि धातु को रख करके भाण्ड का मुख सकोरे से ढक कर कपड़ मिट्टि करके बन्द करदेते हैं फिर उस भाण्ड को पृथ्वी में गाड़ देते हैं, इस को भी स्वेदन यन्त्र कहते हैं । क्योंकि भूमि की आन्तरिक उष्णता से स्वेदन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है ॥ ९७ ॥

संन्यासलक्षणम् ।

रसस्यौषधयुक्तस्य भाण्डरुद्धस्य यत्नतः ।
मन्दाग्नियुतचुल्ल्यन्तः क्षेपः संन्यास उच्यते ॥ ६८ ॥

किसी भाण्ड में क्षार तथा अम्ल भरकर उसमें पारद रख देते हैं । फिर उस भाण्ड के मुख को कपड़मिट्टी से बन्द कर के मन्द २ आंच वाले चूल्हे के उपर रख देते हैं उसको सन्यास कहते हैं ॥ ९८ ॥

रसस्वेदसंन्यासगुणाः ।

द्वावेतौ स्वेदसंन्यासौ रसराजस्य निश्चितम् ।
गुणप्रभावजनकौ शीघ्रव्याप्तिकरौ तथा ॥ ९९ ॥

स्वेद और सन्यास इन दोनों विधियों से पारद के अन्दर गुण और देह-सिद्धिजनक प्रभाव उत्पन्न होते हैं तथा ये दोनों संस्कार पारद को शरीर में शीघ्र ही व्याप्त होने योग्य बना देते हैं ॥ ९९ ॥

अथ परिभाषाऽऽवश्यकता—

रसनिगममहाब्धेः सोमदेवः समन्तात्
स्फुटतरपरिभाषानामरत्नानि हृत्वा ।
व्यरचयदतियत्नात्तैरिमां कण्ठमालां
कलयतु भिषगग्र्यो मण्डनार्थं सभायाम् ॥ १०० ॥

सोमदेव नामक रसशास्त्र के विशेषज्ञ ने रसशास्त्र रूपी समुद्र से प्रयत्न पूर्वक समग्ररूप से अत्यन्त स्पष्टार्थ बोधक परिभाषाओं की संज्ञा रूपी रत्नों को निकालकर उनकी कण्ठमाला (अर्थात् कण्ठस्थ करने योग्य परिभाषा एं) बनाई है । इस माला को रस शास्त्र के पण्डित सभा में स्वविषय का प्रतिपादन करने के लिये धारण करें ॥ १०० ॥

अध्यायपठनफलम्—

भवेत्पठितवारोऽयमध्यायो रसवादिनाम् ।
रसकर्माणि कुर्वाणो न स मुह्यति कुत्रचित् ॥ १०१ ॥

इति श्री वैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये रसपरिभाषाकथनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

रस शास्त्र के आचार्यों के मत से परिपूर्ण इस अध्याय का जो विद्वान् बारम्बार अभ्यास (आवृत्ति) करेगा, वह रस कर्म को करता हुआ किसी विषय में व्यामोहित (किंकर्तव्यमूढ) नहीं होगा । अर्थात् वह किसी प्रकार से रसप्रक्रिया में भ्रमित नहीं होता है ॥ १०१ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्यभाषाटीकायां रसपरिभाषाकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथ यन्त्राणि—

अथ यन्त्राणि वक्ष्यन्ते रसतन्त्राण्यशेषतः ।
समालोच्य समासेन सोमदेवेन साम्प्रतम् ॥ १ ॥

श्री सोमदेव ने सम्पूर्ण रसशास्त्र के भिन्न २ तन्त्रों का अवलोकन करके जो यन्त्र बनाने की विधि कही है, उस विधि से प्रयुक्त होने वाले यन्त्रों का इस स्थान पर संक्षेप से वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥

यन्त्रशब्दनिरुक्तिः—

स्वेदादिकर्मनिर्मातुं वार्तिकेन्द्रैः प्रयत्नतः ।
यन्त्र्यते पारदो यस्मात्तस्माद्यन्त्रमिति स्मृतम् ॥ २ ॥

पारद का स्वेदन, मूर्च्छन, मर्दन आदि अनेक संस्कार करने के लिये जिस उपाय से रस को नियन्त्रित किया जाता है उसको रसपरिभाषाकारक आचार्यों ने यन्त्र कहा है ॥ २ ॥

अथ दोलायन्त्रम्—

द्रवद्रव्येण भाण्डस्य पूरितार्धोदरस्य च ।
मुखस्योभयतो द्वारद्वयं कृत्वा प्रयत्नतः ॥ ३ ॥
तयोस्तु निक्षिपेद्दण्डं तन्मध्ये रसपोट्टलीम् ।
बध्वा तु स्वेदयेदेतद्दोलायन्त्रमिति स्मृतम् ॥ ४ ॥

काञ्जी, निम्बूस्वरस, क्षार, या जयन्ती आदि स्वेदन करने में उपयुक्त औषधियों के क्वाथ या स्वरस से एक मिट्टी की हण्डिका को आधी भर करके उस हण्डिका के किनारों पर एक दूसरे के सामने दो छिद्र युक्ति से बनाकर उन में एक लकड़ी लगा देना चाहिये फिर उस लकड़ी के बीच में पारद की पोटली या अन्य स्वेदनीय धातु उपधातु तथा रत्नों की पोटली बांध कर उस द्रव में लटका देते हैं, फिर अग्नि जलाकर चूल्हे पर हण्डिका को रखकर उस पोटली के अन्दर स्थित पदार्थ को स्वेदित करते हैं, इस को दोलायन्त्र कहते हैं। अर्थात् रसादिक की पोटली दोले (झूले) के समान दण्ड में बांधकर लटका दी जाती है, अतः दोलायन्त्र कहा गया है ॥ ३–४ ॥

स्वेदनीयन्त्रम्—

साम्बुस्थालीमुखे बद्धवस्त्रे पाक्यं निवेशयेत् ।
पिधाय पच्यते यत्र स्वेदनीयन्त्रमुच्यते ॥ ५ ॥

जल अथवा अन्य औषधियों के स्वरस से हण्डिका को भरकर उसके मुख पर एक वस्त्र बांध देते हैं, फिर उस वस्त्र के अवकाशयुक्त भाग में किसी धातु रत्न या पारद को रखकर ऊपर से सकोरे द्वारा बन्द करके अग्नि द्वारा पाक किया जाता है उसको स्वेदनी यन्त्र कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ पातनायन्त्रम्—

अष्टाङ्गुलपरीणाहमानाहेन दशाङ्गुलम् ।
चतुरङ्गुलकोत्सेधं तोयाधारं गलादधः ॥ ६ ॥
अधोभाण्डेमुखं तस्य भाण्डस्योपरि वर्त्तिनः ।
षोड़शाङ्गुलविस्तीर्णपृष्ठस्यास्ये प्रवेशयेत् ॥ ७ ॥
पार्श्वयोर्महिषीक्षीरचूर्णमण्डूरफाणितैः ।
लिप्त्वा विशोषयेत्सन्धिं जलधारे जलं क्षिपेत् ।
चुल्ल्यामारोपयेदेतत्पातनायन्त्रमुच्यते ॥ ८ ॥

आठ अङ्गुल चौड़ा (विस्तृत), दस अङ्गुल ऊंचा (लम्बाई में) और चार अङ्गुल मोटा (स्थूल) एक मिट्टी का भाण्ड लेकर उसको जल से भर दें, फिर इस जल से भरे नीचे के भाण्ड के मुख को गर्दन (किनारे) तक एक दूसरे १६ अङ्गुल चौड़ो पीठ (पृष्ठभाग) वाले (जिसके भीतर की तली में निम्बू के रस में घोटे हुए हिङ्गुल का लेप सन्धिबन्धन करने के पहिले किया जा चुका हो) ऊपर के मिट्टी के भाण्ड के मुख में प्रविष्ट कर देना चाहिए । फिर (उन दोनों भाण्डों के मुखों को परस्पर मिलादेने से डमरू के समान रचना हो जाती है) उन दोनों की मुखसन्धि को अगल बगल चारों तरफ भेंस के दुग्ध में चूने की बुकनी, मण्डूर की बुकनी और फाणित (गुड़ की विकृति राब) को घोट कर उससे लेप कर के सुखा देवें । फिर इस को चूल्हे पर चढाकर अग्नि जला देनी चाहिए । ऊपर के भाण्ड की पीठपर एक जलाधार (आलवाल) या थाला (उडदी के ओर से) बनाकर ठण्ढाजल भरना चाहिए । ५ मिनिट बाद प्रथम गर्म हुए जलको निकाल कर दूसरा ठण्ढा जल भरना चाहिए । यदि आलवाल न बना सको तो एक बा-

ल्टी में जलभर कर कपड़े को चारवार मोड़ कर लत्ते बनाकर जल में भिंगो कर ऊपरी भाण्ड के पृष्ठ पर रखो कुछ देर बाद इनको बदलते रहना चाहिए। इसी को पातना यन्त्र कहते हैं ॥ ६–८ ॥

अथ अधःपातनयन्त्रम्—

अथोर्ध्वभाजने लिप्तस्थापितस्य जले सुधीः।
दीप्तैर्वनोत्पलैः कुर्यादधःपातं प्रयत्नतः ॥ ९ ॥

उपर्युक्त विधि से बने हुए पातन यन्त्र के ऊपर वाले भाण्ड में सन्धि बन्धन करने के पहिले निम्बूरस में घोटे हुए हिङ्गुल का लेप कर सुखा लेना चाहिए फिर सन्धिबन्धन करके ऊपर के भाण्ड में एक थाला या पाली बनाकर जङ्गली उपलों को उस पाली में रखकर जला देने चाहिए। इस तरह अग्निके कारण पारद निकल कर नीचे के जल से भरे भाण्ड में गिर जाता है इसको अधः पातन यन्त्र कहते हैं॥९॥

अथ कच्छपयन्त्रम्—

जलपूर्णपात्रमध्ये दत्त्वा घटखर्परं सुविस्तीर्णम्।
तदुपरि विडमध्यगतःस्थाप्यः सूतःकृतः कोष्ठ्याम् ॥ १० ॥
लघुलोहकटोरिकया कृतषण्मृत्सन्धिलेपयाऽऽच्छाद्य।
पूर्वोक्तघटखर्परमध्येऽङ्गारैःखदिरकोलभवैः ॥ ११ ॥
स्वेदनतो मर्दनतः कच्छपयन्त्रस्थितो रसो जरति।
अग्निबलेनैव ततो गर्भे द्रवन्ति सर्वसत्त्वानि ॥ १२ ॥

एक जल से भरे हुए पात्र (नाद) के मध्य भाग में बड़ा कूंडा या घट का गहरा कपाल रख कर उसमें मूषायंत्र को पारे से भर कर रख देना चाहिए। फिर मूषा के ऊपर एक छोटी लोहे की कटोरी ढक कर उसके चारों ओर ६ वार कपड़मिट्टी कर देनी चाहिये। फिर उस घटखर्पर (कूण्ड या कपाल के खाली भाग में) में खदिर या बैर (बदरी काष्ठ) की लकड़ी के कोयले भर कर अग्नि जला दें, इस तरह स्वेदन और मर्दन दोनों संस्कार होकर इस यन्त्र में रखे हुए पारद का जारण हो जाता है, इसी यन्त्र से अन्य धातुओं का सत्त्वपातन भी करते हैं। इसको कच्छपयन्त्र कहते हैं ॥ १०–१२ ॥

अथ दीपिकायन्त्रम्—

कच्छपयन्त्रान्तर्गतमृण्मयपीठस्थदीपिकासंस्थः।

यस्मिन्निपतति सूतः प्रोक्तं तद्दीपिकायन्त्रम् ॥ १३ ॥

उपर्युक्त विधि से कच्छप यंत्र बनाकर उसमें एक मिट्टि का खर्पर रख कर उसमें एक दीपिका या मूषा अथवा सकोरा रख देना चाहिए, इस सकोरे में पारद भर दें, फिर अग्नि के प्रभाव से पारद उस दीपिका से कच्छप यंत्र में उड़ कर गिर जाता है, इसको दीपिकायंत्र कहते हैं ॥ १३ ॥

अथ डेकीयन्त्रम्—

भाण्डकण्ठादधश्छिद्रे वेणुनालं विनिक्षिपेत् ।
कांस्यपात्रद्वयं कृत्वा सम्पुटं जलगर्भितम् ॥ १४ ॥
नलिकास्यं तत्र योग्यं दृढं तच्चापि कारयेत् ।
युक्तद्रव्यैर्विनिक्षिप्तः पूर्वं तत्र घटे रसः ॥ १५ ॥
अग्निना तापितो नालात्तोये तस्मिन् पतत्यधः ।
यावदुष्णं भवेत्सर्वं भाजनं तावदेव हि ।
जायते रससन्धानं डेकीयन्त्रमितीरितम् ॥ १६ ॥

एक मिट्टी के बड़े भाण्ड में या घड़े में कुछ (स्वेदनोपयोगी) औषधियों (क्षार, अम्ल इत्यादि) के साथ घोटे हुए पारद का लेप करके उस भाण्ड को सुखा लेना चाहिए । पश्चात् उस भाण्ड की ग्रीवा से कुछ नीचे (पास ही) एक छिद्र बनाकर उसमें बांस की नली का एक भाग प्रविष्ट कर भाण्ड का मुख तथा छिद्र के आस पास कपड़मिट्टी कर देना चाहिए । फिर दो कांस्य के पात्रों (कटोरों) का परस्पर सन्धिबन्धन करके ऊपर के पात्र में एक छिद्र बनाकर इसमें उस बांस की नली का दूसरा भाग प्रविष्ट करके मज़बूती से सन्धिबन्धन कर देना चाहिए, फिर इस भाण्ड को आसानी से चूल्हे पर चढाकर नीचे आग जलादे, अग्नि के ताप से भाण्ड के अन्दर औषधियों के साथ घोटकर लिप्त किया हुआ पारद उड़कर उस बांस की नलिका में होता हुआ कांसे के पात्र के जल में गिर जायगा । सम्पूर्ण भाण्ड के प्रतप्त हो जाने पर प्रायः सब पारा उड़ जाता है, इसको डेकी यन्त्र कहते हैं ॥ १४–१६ ॥

अथ जारणायन्त्रम्—

लोहमूषाद्वयं कृत्वा द्वादशाङ्गुलमानतः ।
ईषच्छिद्रान्वितामेकां तत्र गन्धकसंयुताम् ॥ १७ ॥

मूषायां रसयुक्तायामन्यस्यां तां प्रवेशयेत् ।
तोयं स्यात्सूतकस्याध ऊर्ध्वाधो वह्निदीपनम् ॥ १८ ॥

१२ अङ्गुल लम्बी दो लोहे की मूषा बना कर एक मूषा में कुछ छिद्र बनवा कर उस में गन्धक भर दें, फिर इस गन्धक युक्त मूषा को पारद से भरी हुई द्वितीय मूषा के अन्दर रख देवे (पारद जिसमें भरना हो उसको कुछ बड़ी बनवाना चाहिए) पश्चात् इन दोनों मूषा को एक जल से भरे हुए भाण्ड में रख कर उस भाण्ड को चूल्हे पर चढाकर अग्नि जला देनी चाहिए। इसको जारणा यंत्र कहते हैं ॥ १७–१८ ॥

अथ जारणायन्त्रस्य प्रकारान्तरम्—

रसोनकरसं भद्रे यत्नतो वस्त्रगालितम् ।
दापयेत्प्रचुरं यत्नादाप्लाव्य रसगन्धकौ ॥ १९ ॥
स्थालीकायां पिधायोर्ध्वं स्थालीमन्यां दृढां कुरु ।
सन्धिं विलेपयेद्यत्नान्मृदा वस्त्रेण चैव हि ॥ २० ॥
स्थाल्यन्तरे कपोताख्यं पुटं कर्षाग्निना सदा ।
यन्त्रस्याधः करीषाग्निं दद्यात्तीव्राग्निमेव वा ॥ २१ ॥
एवं तु त्रिदिनं कुर्यात्ततो यन्त्रं विमोचयेत् ।
तप्तोदके तप्तचुल्ल्यां न कुर्याच्छीतलां क्रियाम् ॥ २२ ॥
न तत्र क्षीयते सूतो न च गच्छति कुत्रचित् ।
अनेन च क्रमेणैव कुर्याद्गन्धकजारणम् ॥ २३ ॥

हे पार्वति ? एक स्थाली के अन्दर पारद और गन्धक दोनों भर कर वस्त्र से छाने हुए लहसुन के पानी (स्वरस) से उन दोनों को खूब भिगोना (आप्लावित करना) चाहिए। फिर एक शराव से रस तथा गन्धक को बन्द करके ऊपर एक ओर स्थाली ढककर दोनों स्थालियों की वस्त्र तथा कपड़मिट्टि से सन्धि अच्छी तरह बन्दकर के यंत्र के नीचे तेज आंच दें तथा यंत्र के ऊपर की स्थाली के ऊपर भी उपलों की आंच से कपोत (१)पुट देना चाहिए, इस तरह तीन दिन

(१) कपोतपुटलक्षणम्—

यत्पुटं दीयते खाते अष्टसङ्ख्यैर्वनोपलैः ।
कपोतपुटमेतत्तु कथितं पुटपण्डितैः ॥ १ ॥

तक अग्नि देना चाहिए। तीसरे दिन के पश्चात् उष्ण चूल्हे पर गरम जल में यन्त्र को रख कर खोलना चाहिए। यंत्र को शीतल करके नहीं खोलें। इसी क्रम से पारद के साथ गन्धक का जारण करना चाहिए। यह जारणायंत्र का दूसरा स्वरूप है॥ १९-२३ ॥

अथ विद्याधरयन्त्रम्—

यन्त्रं विद्याधरं ज्ञेयं स्थालीद्वितयसम्पुटात्।
चुल्लीं चतुर्मुखीं कृत्वा यन्त्रभाण्डं निवेशयेत्॥ २४॥
तत्रौषधं विनिक्षिप्य निरुन्ध्याद्भाण्डकाननम्।
यन्त्रं विद्याधरं नाम तन्त्रज्ञैः परिकीर्त्तितम्॥ २५॥

दो मिट्टि की स्थालियों को परस्पर कपड़मिट्टि द्वारा बन्द करने की क्रिया को विद्याधर यंत्र कहते हैं। विधि—एक चार मुख वाला चूल्हा बना कर उस पर औषधादिक से भरा हुआ एक मिट्टि का भाण्ड रखना चाहिए, फिर इस भाण्ड पर एक दूसरा भाण्ड रखकर नीचे के भाण्ड के मुख को ऊपर रखे हुए भाण्ड के तल के साथ कपड़मिट्टी द्वारा बन्दकर देते हैं, फिर अग्नि जलाते हैं। इसको रसशास्त्र के पण्डितों ने विद्याधरयंत्र कहा है॥ २४-२५ ॥

अथ सोमानलयन्त्रम्—

ऊर्ध्वं वह्निरधश्चापो मध्ये तु रससङ्ग्रहः।
सोमानलमिदं प्रोक्तं जारयेद्गगनादिकम्॥ २६॥

एक स्थाली के अन्दर जल भर कर उसमें पारद से युक्त मूषा रखकर उस स्थाली के मुख को शराव से बन्द करके कपड़मिट्टी कर देते हैं। पश्चात् उस शराव पर उपलों की आँच देते हैं, इस यंत्र को सोमानल यंत्र कहते हैं। क्यों के नीचे सोम (जल) भरा रहता है, बीच में मूषा के अन्दर रस का संग्रह रहता है, ऊपर अग्नि जलाते हैं अतः इसका नाम सोमानल यंत्र है। पारद के साथ मूषा में अभ्रक आदि रखकर इससे जारण करते हैं॥ २६ ॥

अथ गर्भयन्त्रम्—

गर्भयन्त्रं प्रवक्ष्यामि पिष्टिकाभस्मकारकम्।
चतुरङ्गुलदीर्घाञ्च त्र्यङ्गुलोन्मितविस्तराम्॥ २७॥
मृण्मयीं सुदृढां मूषां वर्तुलं कारयेन्मुखम्।

लोणस्य विंशतिर्भागा भाग एकस्तु गुग्गुलाः ॥ २८ ॥
सुश्लक्ष्णं पेषयित्वा तु वारं वारं पुनः पुनः ।
मूषालेपं दृढं कृत्वा लवणार्द्धमृदम्बुभिः ॥ २९ ॥
कर्षेत्तुषाग्निना भूमौ स्वेदयेन्मृदु मानवित् ।
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा रसेन्द्रो भस्मतां व्रजेत् ॥ ३० ॥

नष्टपिष्ट किये हुए पारद की भस्म बनाने के लिये गर्भ यंत्र का वर्णन करते हैं। चार अङ्गुल लम्बी और तीन अङ्गुल चौड़ी मिट्टी की गोल मुखकी दृढ मूषा बनवानी चाहिए, फिर बीस भाग नीमक और एक भाग गुग्गुल, दोनों को नीमक से आधे भाग मिट्टी तथा जल के साथ घोटकर उस मूषा में लेप करना चाहिए, फिर उस मूषा के अन्दर पारद डालकर उसका मुख बन्दकर देवें। सूखनेके बाद मूषा को पृथ्वी में गाड़कर उसके ऊपर जंगली उपलों की अग्नि देकर एक दिन तक अथवा तीन दिन तक स्वेदन करना चाहिए। प्रायः अग्नि यदि तीन दिन तक देना हो तो मृदु अग्नि जलावें। और यदि एक दिन रात में पाक करना हो तो तीव्र आंच देवें, इस को गर्भयंत्र कहते हैं ॥ २७–३० ॥

अथ हंसपाकयन्त्रम्—

खर्परं सिकतापूर्णं कृत्वा तस्योपरिन्यसेत् ।
अपरं खर्परं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ३१ ॥
पञ्चक्षारैस्तथा मूत्रैर्लवणं च विडं ततः ।
हंसपाकं समाख्यातं यन्त्रं तद्वार्त्तिकोत्तमैः ॥ ३२ ॥

एक मिट्टीके खर्पर (कूण्डा) को वालुका (रेते) से भरकर ऊपरसे दूसरा खर्पर रख कर ढक देते हैं, और इस में पारद को (१)पांचोक्षार, आठों (२)प्रकार के मूत्र तथा लवण विशेष कर विड़लवण इत्यादि पदार्थों के साथ पाक करते हैं। इस यंत्र को रसपरिभाषाकार पण्डितों ने हंसपाक यन्त्र कहा है ॥ ३१–३२ ॥

---

(१) यवमुष्ककसर्ज्जानां पलाशतिलयोस्तथा ।
क्षारैस्तु पञ्चभिः प्रोक्तः पञ्चक्षाराभिधोगणः ॥
(२) सैरिभाजाविकरभगोखरद्विपवाजिनाम् ।
मूत्राणीति भिषग्वर्यैं र्मूत्राष्टकमुदाहृतम् ॥

अथ वालुकायन्त्रम्—

सरसां गूढवक्त्रां मृद्वस्त्राङ्गुलघनावृताम् ।
शोषितां काचकलशीं त्रिषु भागेषु पूरयेत् ॥ ३३ ॥
भाण्डे वितस्तिगम्भीरे वालुकासुप्रतिष्ठिता ।
तद्भाण्डं पूरयेत्रिभिरन्याभिरवगुण्ठयेत् ॥ ३४ ॥
भाण्डवक्त्रं मणिकया सन्धिं लिम्पेन्मृदा पचेत् ।
चुल्ल्यां तृणस्य चादाहान्मणिकापृष्ठवर्त्तिनः ॥
एतद्धि वालुकायन्त्रं तद्यन्त्रं लवणाश्रयम् ॥ ३५ ॥

प्रथम एक आतसी शीशी को मुलतानीमिट्टी के अन्दर लिप्त किये हुये वस्त्रोंकी एक तह (आवरण) चढाकर सुखा लेवें, इस तरह शीशी को सुखा कर सात वार कपड़ मिट्टी लगाकर उसे एक अङ्गुल मोटी बना लेवें इस आतसी शीशी का मुख पतला होना चाहिए, फिर इसके तीन भाग को रस (पारदकज्जली) से भर कर तीन भाग में बालुका से भरी हुई एक नांदमें (लोहे की या मिट्टी की हो) आतसी शीशी को रख कर उस नांद को शराव अथवा अन्य बड़े कुण्डे से ढक कर सन्धि को कपड़मिट्टी द्वारा बन्दकर देना चाहिए, पश्चात् इस यंत्र को चूल्हे पर चढा कर पाक करें। जब उस शराव पर तृणों को रखने से वे जलनें लगें तब पाक हुआ समझना चाहिए। इसको बालुकायंत्र कहते हैं। यदि रेत के स्थान में लवण भर दिया जाय तो उसे लवण यंत्र कहते हैं ॥ ३३-३५ ॥

अथ वालुकायन्त्रस्य प्रकारान्तरम्—

पञ्चाढवालुकापूर्णभाण्डे निक्षिप्य यत्नतः ।
पच्यते रसगोलाद्यं वालुकायन्त्रमीरितम् ॥ ३६ ॥

किसी एक भाण्ड में ५ आढक रेती भर कर उसके अन्दर ही शराव में सम्पुटित हुए पारद को रखकर पकाते हैं, इसको भी बालुका यंत्र कहते हैं ॥ ३६ ॥

अथ लवणयन्त्रम्—

एवं लवणनिक्षेपात्प्रोक्तं लवणयन्त्रकम् ॥ ३७ ॥

इसी तरह यदि बालू के स्थान में लवण भर दिया जाय तो वह लवण यंत्र कहलाता है ॥ ३७ ॥

अथ प्रकारान्तरम्—

अन्तः कृतरसालेपताम्रपात्रमुखस्य च ।
लिप्त्वा मृल्लवणेनैव सन्धिं भाण्डतलस्य च ॥ ३८ ॥
तद्भाण्डं पटुनाऽऽपूर्य क्षारैर्वा पूर्ववत्पचेत् ।
एवं लवणयन्त्रं स्याद्रसकर्मणि शस्यते ॥ ३९ ॥

किसी एक ताम्र के पात्र के अन्दर औषधों के साथ पारद को घोट कर लेप करके उस पात्र को सुखाकर एक मिट्टी के अन्दर औंधा करके रख दें। फिर उस ताम्रपात्र के मुख को उस भाण्ड या कूण्डे की तली के साथ मिट्टी तथा लवण की पिष्टी बनाकर उससे उन दोनों का सन्धिवन्धन करना चाहिए। फिर उस भाण्ड तथा ताम्र पात्र को वालुका अथवा क्षार या लवण से भर कर पकाना चाहिए। इसको भी लवणयंत्र कहते हैं। इस तरह का लवणयंत्र रसकर्म में अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥३८-३९॥

अथ नालिकायन्त्रम्—

लोहनालगतं सूतं भाण्डे लवणपूरिते ।
निरुद्धं विपचेत्प्राग्वन्नालिकायन्त्रमीरितम् ॥ ४० ॥

एक लोह की नली बनवाकर उसमें उपयुक्त औषधों के साथ पारद को भर कर उसका मुख बन्द कर के लवण यंत्र के मध्य में गाड़ दें। फिर लवण यंत्र के मुख को सकोरे द्वारा कपड़मिट्टी से बन्द करके पकाना चाहिए। इसको नालिकायंत्र कहते हैं ॥ ४० ॥

अथ भूधरयन्त्रम्—

वालुकागूढसर्वाङ्गां गर्ते मूषां रसान्विताम् ।
दीप्तोत्पलैः संवृणुयाद्यन्त्रं तद्भूधराह्वयम् ॥ ४१ ॥

पृथ्वी में एक हाथ गहरा गड्ढा खोद कर उसको वालुका से आधा भर दें, फिर उस वालुका पर औषध युक्त पारद से भरी हुई मूषा रख दें। मूषाका मुख बन्द कर के ऊपर से उस मूषा को रेत से ढक कर उस पर जंगली उपलों को जला देना चाहिए, इसको भूधर यंत्र कहते हैं ॥ ४१ ॥

अथ पुटयन्त्रम्—

शरावसम्पुटान्तस्थं करीषेष्वग्निमानवित् ।
पचेच्चुल्ल्यां द्वियामं वा रसं तत्पुटयन्त्रकम् ॥ ४२ ॥

एक सकोरे के अन्दर औषधमिश्रित पारद भर कर उस सकोरे को दूसरे सकोरे के साथ सम्पुट करके कपड़मिट्टी कर सुखा लेवें, फिर उस सम्पुट को उपलों की आँच अथवा चूल्हे पर रखकर यथाप्रमाण के अनुकूल समय तक या दो प्रहर तक पकाना चाहिए। इसको पुटयंत्र कहते हैं ॥ ४२ ॥

अथ कोष्ठीयन्त्रम्—

षोडशाङ्गुलविस्तीर्णं हस्तमात्रायतं समम्।
धातुसत्त्वनिपातार्थं कोष्ठीयन्त्रमिति स्मृतम् ॥ ४३ ॥

सोलह अङ्गुल चौड़ी और एक हाथ भर लम्बी तथा समान आकार की एक मूषा बनवाना चाहिए। इसको कोष्ठीयंत्र कहते हैं। यह यंत्र धातु तथा रत्न इत्यादि के सत्त्वों को निकालने के लिये उत्तम होता है ॥ ४३ ॥

अथ वलभीयन्त्रम्—

यत्र लोहमये पात्रे पार्श्वयोर्वलयद्वयम्।
तादृक् स्वल्पतरं पात्रं वलयप्रोतकोष्ठकम् ॥ ४४ ॥
पूर्वपात्रोपरि न्यस्य स्वल्पपात्रे परिक्षिपेत्।
रसं सम्मूर्च्छितं स्थूलपात्रमापूर्य काञ्जिकैः ॥ ४५ ॥
द्वियामं स्वेदयेदेवं रसोत्थापनहेतवे।
एतत्स्याद्वलभीयन्त्रं रसे षाड्गुण्यकारकम् ॥
सूक्ष्मकान्तमये पात्रे रसः स्याद्गुणवत्तरः ॥ ४६ ॥

एक बड़े आकार का कान्तलौह का पात्र (राउण्ड टब) बनवा कर उसके भीतर की ओर किनारों से कुछ नीचे दोनों पार्श्वों में दो कड़े लगवा देना चाहिये। फिर एक दूसरा छोटा पात्र (राउण्ड टब) बनवा कर उसके बाह्य भाग के बीच में दोनों ओर दो कड़े लगवा देना चाहिए, इस छोटे पात्र को बड़े पात्र के अन्दर रख कर दोनों के कड़ों को परस्पर जञ्जीर से बांध दें। बड़े पात्र में काञ्जी और छोटे पात्र में सम्मूर्छित पारद डाल कर ऊपर से ढक देना चाहिये। फिर इस यंत्र को चूल्हे पर चढ़ा कर दो प्रहर तक स्वेदन करते हैं इस तरह के स्वेदन से संमूर्छित पारद फिर अपने रूप को प्राप्त हो जाता है। यह वलभीयंत्र कहा जाता हैं। इससे स्वेदित पारदके अन्दर ६ प्रकारके विद्या, वितर्क, विज्ञान, स्मृति, तत्परता, क्रिया आदि गुण उत्पन्न होते हैं। साधारण लौहे की अपेक्षा सूक्ष्म कान्तलौह

के बने हुए पात्रमें रसका स्वेदन करने से वह अधिक गुणों वाला हो जाता है॥४४-४६॥

अथ तिर्यक्पातनयन्त्रम्—

क्षिपेद्रसं घटे दीर्घनताधोनालसंयुते ।
तन्नालं निक्षिपेदन्यघटकुक्ष्यन्तरे खलु ॥ ४७ ॥
तत्र रुध्वा मृदा सम्यग्वदने घटयोरथ ।
अधस्ताद्रसकुम्भस्य ज्वालयेत्तीव्रपावकम् ॥ ४८ ॥
इतरस्मिन्घटे तोयं प्रक्षिपेत्स्वादु शीतलम् ।
तिर्यक्पातनमेतद्धि वार्तिकैरभिधीयते ॥ ४९ ॥

एक मिट्टी के घड़े में रस रखकर उसकी ग्रीवा के कुछ नीचे के भाग में एक छिद्र बना कर उस छिद्र में एक लम्बी तथा टेढी नली लगा देनी चाहिए। फिर उस नली के दूसरे भाग को एक दूसरे घड़े के मध्यभाग में छिद्र बनाकर उसमें प्रविष्ट कर देवें। फिर दोनों घड़ों के मुख तथा नालीप्रवेशजन्य छिद्रों को कपड़ मिट्टी द्वारा बन्द कर देना चाहिए। पश्चात् जिस घड़े में पारद रखा हो उसके नीचे अग्नि जला देवें और दूसरे पात्र के ऊपर शीतल जल डालते रहना चाहिए अथवा इस घड़े में मुखबन्धन के पूर्व ही थोड़ा सा शीतल जल भर देना चाहिए। इस तरह अग्नि के ताप से पूर्व घट से पारद उड़ कर तिर्यक् नली के द्वारा वह दूसरे घट के अन्दर पानी में गिर जाता है। वार्तिककारों ने इस यन्त्र को तिर्यक्पातन यंत्र कहा है ॥ ४७-४९ ॥

अथ पालिकायन्त्रम्—

चषकं वर्तुलं लौहं विनताग्रोर्ध्वदण्डकम् ।
एतद्धि पालिकायन्त्रं बलिजारणहेतवे ॥ ५० ॥

लोहे का एक गोल चषक (प्याला) बनाकर उसके किनारे के पास ही अग्रभाग में झुका हुआ और ऊपर की ओर उठा हुआ एक दण्ड लगवा देना चाहिए। इसको पालिकायंत्र कहते हैं। यह यंत्र गन्धक के जारण करने में उपयोगी होता है ॥५०॥

अथ घटयन्त्रम्—

चतुष्प्रस्थजलाधारश्चतुरङ्गुलिकाऽऽननः ।
घटयन्त्रमिदं प्रोक्तं तदाप्यायनकं स्मृतम् ॥ ५१ ॥

एक ऐसा घट लेना चाहिए जिसमें चार प्रस्थ (६४ पल) पानी का समा-

वेश हो सके तथा चार अङ्गुल चोड़ा जिसका मुख हो, इस प्रकार के घट को घट-यन्त्र कहते हैं तथा इसका दूसरा नाम आप्यायनक भी है। इस यंत्र के द्वारा रसादिक का तर्पण (प्लावन) करते हैं ॥ ५१ ॥

अथ इष्टिकायन्त्रम्—

विधाय वर्तुलं गर्तं मल्लमत्र निधाय च।
विनिधायेष्टकां तत्र मध्यगर्तवतीं शुभाम् ॥ ५२ ॥
गर्तस्य परितः कुर्यात्पालिकामङ्गुलोच्छ्रयाम्।
गर्ते सूतं विनिक्षिप्य गर्तास्ये वसनं क्षिपेत् ॥ ५३ ॥
निक्षिपेद्गन्धकं तत्र मल्लेनाऽऽस्यं निरुद्ध्य च।
मल्लपालिकयोर्मध्ये मृदा सम्यङ् निरुध्य च ॥ ५४ ॥
वनोत्पलैः पुटं देयं कपोताख्यं न चाधिकम्।
इष्टिकायन्त्रमेतत्स्याद्गन्धकं तेन जारयेत् ॥ ५५ ॥

पृथ्वी में एक गोलाकार गड्ढा खोदकर उसमें लोहे का अथवा मिट्टी का १ मजबूत सकोरा रख देवें। फिर उस सकोरे पर बीच में छिद्र की हुई एक इष्टिका (ईंट) रखकर उस इष्टिका के छिद्र के चारों ओर एक अङ्गुल ऊंचाई वाली पाली (थाला या आलवाल) बना करके उस ईंट के छिद्र में पारद डालकर छिद्र के मुख पर एक वस्त्र बांध देना चाहिए। उस वस्त्र पर गन्धक बिछा कर एक दूसरे सकोरे से उसका मुख बन्दकर देना चाहिए। ईंट के छिद्र के चारों ओर बनाई हुई पालिका तथा उस पर ढके हुए मल्ल (कटोरी या सकोरा) इन दोनों के बीच के अवकाश को ठीक तरह से कपड़मिट्टी द्वारा बन्दकर जंगली उपलों की आंच से कपोत पुट देना चाहिए, ज्यादा आंच नहीं देना चाहिए। इसको इष्टिकायंत्र कहते हैं। इससे पारद इत्यादि धातुओं के साथ गन्धक का जारण करते हैं ॥५२–५५॥

अथ हिङ्गुलाकृष्टिविद्याधरयन्त्रम्—

स्थालिकोपरि विन्यस्य स्थालीं सम्यङ् निरुध्य च।
ऊर्ध्वस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा वह्निं प्रज्वालयेदधः ॥
एतद्विद्याधरं यन्त्रं हिङ्गुलाकृष्टिहेतवे ॥ ५६ ॥

एक हण्डिका (जो कि भीतर से चोड़ी हो और जिसके भीतरी भाग में निम्बू के रस में घोटे हुए हिङ्गुल का लेप किया हुआ होना चाहिए) के ऊपर दूसरी

हण्डिका रख कर नीचे की हण्डिका के मुख को ऊपर रखी हुई हण्डिका के पृष्ठ भाग के साथ अच्छी तरह कपड़मिट्टी से बन्द कर के फिर ऊपर की हण्डिका में जल भर देते हैं और चूल्हे पर चढाकर नीचे की हण्डिका को आंच पहूंचाते हैं। इसको विद्याधरयंत्र कहते हैं। इस यंत्र का उपयोग हिंगुल से पारद को निकालने के लिये करते हैं ॥ ५६ ॥

अथ डमरुयन्त्रम्—

यन्त्रस्थाल्युपरि स्थालीं न्युब्जां दत्त्वा निरुन्धयेत्।
यन्त्रं डमरुकाख्यं तद्रसभस्मकृते हितम् ॥ ५७ ॥

एक मिट्टी की हण्डिका लेकर इसके मुख को दूसरी हण्डिका के मुख के साथ सन्धिबन्धन कर देते हैं। इस यंत्र की आकृति डमरू के समान हो जाती है इस लिये इसको डमरूयंत्र कहते हैं। यह डमरूयंत्र पारद की भस्म करने के लिये उपयोगी होता है ॥ ५७ ॥

अथ नाभियन्त्रम्—

मल्लमध्ये चरेद्गर्तं तत्र सूतं सगन्धकम्।
गर्तस्य परितः कुड्यं प्रकुर्यादङ्गुलोच्छ्रितम् ॥ ५८ ॥
ततश्चाऽऽच्छादयेत्सम्यग्गोस्तनाकारमूषया।
सम्यक् तोयमृदा रुद्ध्वा सम्यगत्राच्यमानया ॥ ५९ ॥

एक सकोरे के भीतर गड्ढा बना कर उसमें गन्धक और पारद भर देवें। फिर उस गड्ढे के चारों ओर एक अङ्गुल ऊंची पाली (अलवाल या मेड़ के समान) बना कर उस पाली को गाय के स्तन की आकृति वाली मूषा से (औंधाकर) ढक करके अच्छी प्रकार बनाई हुई तोयमृत्तिका से अच्छी तरह पाली तथा मूषा की सन्धि या अवकाश को बन्दकर देना चाहिए इसी को नाभि-यन्त्र कहते हैं ॥ ५८–५९ ॥

तत्र तोयमृल्लक्षणम्—

लेहवत्कृतबब्बूलक्काथेन परिमर्दितम्।
जीर्णकिट्टरजः सूक्ष्मं गुडचूर्णसमन्वितम्।
इयं हि जलमृत्प्रोक्ता दुर्भेद्या सलिलैः खलु ॥ ६० ॥

पुराणे लोहकिट्ट के चूर्ण (मण्डूर चूर्ण) को चूना और गुड़ के साथ मिला-

कर इन तीनों को बब्बूल के क्काथ से खूब घोटकर लेह के समान बना लेते हैं। इसको जलमृत्तिका कहते हैं। इस मृत्तिका से सन्धिबन्धन करने से जलादिक से यह सन्धि की मिट्टी नहीं छूट सकती है ॥ ६० ॥

तत्र वह्निमृत्स्ना—

खटिकापटुकिट्टैश्च महिषीदुग्धमर्दितैः ।
वह्निमृत्स्ना भवेद्धोरवह्नितापसहा खलु ॥ ६१ ॥
एतया मृत्स्नया रुद्धो न गन्तुं क्षमते रसः ।
विदग्धवनिताप्रौढप्रेम्णा रुद्धः पुमानिव ॥ ६२ ॥

खड़िया, निमक और मण्डूर के चूर्ण को भैंस के दुग्ध से अच्छी प्रकार घोटकर वन्हिमृत्स्ना बनाई जाती है, यह वन्हिमृत्तिका अत्यन्त तेज अग्नि के ताप को सहन कर सकती है। इस मृत्तिका से कपरौटी करके रोका हुआ पारद अत्यन्त तेज आंच लगने पर भी हावभाव कटाक्षादि करने में चतुर नायिका के प्रगाढ प्रेम से रुके हुए पुरुष की तरह कहीं उड़कर नहीं जा सकता है ॥ ६१–६२ ॥

शेषनाभियन्त्रवर्णनम्—

नन्दी नागार्जुनश्चैव ब्रह्मज्योतिर्मुनीश्वरः ।
वेत्ति श्रीसोमदेवश्च नापरः पृथिवीतले ॥ ६३ ॥
ततो जलं विनिक्षिप्य वह्निं प्रज्वालयेदधः ।
नाभियन्त्रमिदं प्रोक्तं नन्दिना सर्ववेदिना ॥
अनेन जीर्यते सूतो निर्धूमः शुद्धगन्धकः ॥ ६४ ॥

इस यंत्र की विधि को नन्दी, नागार्जुन, ब्रह्मज्योति, मुनीश्वर और सोमदेव ये ही पांचों रस-शास्त्र के आचार्य जानते हैं। इसको इस पृथ्वी में दूसरा कोई नहीं जानता है। फिर इस प्रकार उस यन्त्र को चूल्हे पर चढा कर के आलवाल तथा मूषा के चारों तरफ़ के बचे हुए सकोरे के अवकाश में जलभर के नीचे आग जला देनी चाहिए। सर्व प्रकार की रस की क्रियाओं के ज्ञाता नन्दी ने इसको नाभियंत्र कहा है। इस यंत्र के द्वारा शुद्धगन्धक के साथ पारद का निर्धूम जारण हो जाता है ॥ ६३–६४ ॥

अथ ग्रस्तयन्त्रम्—

मूषां मूषोदराविष्टामाद्यन्तःसमवर्तुलाम् ।

चिपिटां च तले प्रोक्तं ग्रस्तयन्त्रं मनीषिभिः ॥
सूतेन्द्ररन्धनार्थं हि रसविद्भिरुदीरितम् ॥ ६५ ॥

प्रारम्भ से अन्त तक एक समान लम्बी, चौड़ी और गोल तथा तल भाग में कुछ चिपटी हो ऐसी एक मूषा बनवा कर उसमें पारद इत्यादि को भर कर ऐसी ही एक दूसरी मूषा के साथ सन्धिबन्धन कर देना चाहिए। इसको रसशास्त्र के पण्डित ग्रस्तयंत्र कहते हैं। इस यंत्र से पारद का पाक या भस्म करते हैं ॥ ६५ ॥

अथ स्थालीयन्त्रम्—

स्थाल्यां ताम्रादि निक्षिप्य मल्लेनाऽऽस्यं निरुद्ध्य च ।
पच्यते स्थालिकाधस्तात्स्थालीयन्त्रमिदं स्मृतम् ॥ ६६ ॥

एक मिट्टी की हण्डिका में ताम्र अथवा अन्य धातु भरकर (अम्लरस या क्वाथ के साथ) सकोरे से हण्डिका का मुख कपड़मिट्टी से अच्छी तरह बन्दकर के हण्डिका के नीचे अग्नि जलाते हैं। इसको स्थालीयन्त्र कहते हैं ॥ ६६ ॥

अथ धूपयन्त्रम्—

विधायाष्टाङ्गुलं पात्रं लौहमष्टाङ्गुलोच्छ्रयम् ।
कण्ठाधो द्व्यङ्गुले देशे गलाधारे हि तत्र च ॥ ६७ ॥
तिर्यग्लोहशलाकाश्च तन्वीस्तिर्यग्विनिक्षिपेत् ।
तनूनि स्वर्णपत्राणि तासामुपरि विन्यसेत् ॥ ६८ ॥
पत्राधो निक्षिपेद्धूमं वक्ष्यमाणमिहैव हि ।
तत्पात्रं न्युब्जपात्रेण च्छादयेदपरेण हि ॥ ६९ ॥
मृदा विलिप्य सन्धिश्च वह्निं प्रज्वालयेदधः ।
तेन पत्राणि कृत्स्नानि हतान्युक्तविधानतः ॥ ७० ॥
रसश्चरति वेगेन द्रुतं गर्भे द्रवन्ति च ।
गन्धालकशिलानां हि कज्जलया वा मृताहिना ॥ ७१ ॥
धूपनं स्वर्णपत्राणां प्रथमं परिकीर्त्तितम् ।
तारार्थं तारपत्राणि मृतवङ्गेन धूपयेत् ॥ ७२ ॥
धूपयेच्च यथायोग्यैरन्यैरुपरसैरपि ।
धूपयन्त्रमिदं प्रोक्तं जारणाद्रवसाधने ॥ ७३ ॥

आठ अङ्गुल चौड़ा और आठ ही अङ्गुल ऊंचा एक लोह का पात्र बनवा कर

उसके कण्ठ के नीचे दो अङ्गुल चौड़े स्थान में एक आधार बनवा कर उस में पतली और तिरच्छी लोहे की शलाकाओं को टेढ़ी रख देनी चाहिए। फिर उन शलाकाओं के ऊपर छोटे २ कण्टक वेध्य सोने के पत्र रखकर प्रथम पत्रों के नीचे गन्धक हरताल आदि की कज्जली लौहपात्र में डालकर उसपात्र को एक दूसरे नीचे मुखवाले पात्र से ढककर कपड़मिट्टी (या जलमृत्तिका) से सन्धिबन्धन करके चूल्हे पर चढा कर नीचे आग जलाना चाहिए। इस तरह पात्र में रखी हुई कज्जली के धूम से सोने के पत्र काले पड़ जाते हैं तथा मृत भी हो जाते हैं। इस तरह से मृत सुवर्णपत्रों को पारद तुरन्त ही भक्षण कर जाता है और वे भक्षण किये हुए पत्र पारद में शीघ्र ही द्रुत हो जाते है। गन्धक, हरताल, मनःशिला, इनकी कज्जली से अथवा मृतनाग से स्वर्णपत्रों को प्रथम धूपित करना चाहिए। चांदी के पत्रों को धूपित करने के लिये उन पत्रों को मृतवङ्ग से धूपित करना चाहिए। अन्य यथायोग्य उपरसों से भी तारपत्रों को धूपित करते हैं। (जिस वस्तु से पत्रों को धूपित करना हो उस वस्तु की कज्जली बनाकर पत्रों के नीचे लोह पात्र में रख देनी चाहिए) इसको धूपयन्त्र कहते हैं। इस यंत्र को जारण करने योग्य द्रव्यों कि सिद्धि करने के लिये प्रयुक्त करते है ॥ ६७–७३ ॥

अथ कन्दुकयन्त्रम्—

स्थूलस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा वासो बध्वा मुखे दृढम्।
तत्र स्वेद्यं विनिक्षिप्य तन्मुखं प्रपिधाय च ॥ ७४ ॥
अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं यन्त्रं तत्कन्दुकाभिधम्।
स्वेदनीयन्त्रमित्यन्ये प्राहुश्चेदं मनीषिणः ॥ ७५ ॥

एक बड़े मिट्टी के भाण्ड में जल अथवा किसी औषधि का स्वरस अथवा क्वाथ भर कर उस का मुख एक मज़बूत वस्त्र से बांध कर उस वस्त्र पर स्वेदन करने की वस्तु रख कर उस भाण्ड के मुख को सकोरे द्वारा ढक कर कपड़मिट्टी से बन्द कर देवें। फिर चूल्हे पर चढा कर नीचे अग्नि जलानी चाहिए। इस को कन्दुकयन्त्र कहते हैं। अन्य रस शास्त्र के पण्डितों ने इस को स्वेदनीयन्त्र भी कहा है ॥ ७४–७५ ॥

अथ प्रकारान्तरम्—

यद्वा स्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा तृणं क्षिप्त्वा मुखोपरि।
स्वेद्यद्रव्यं परिक्षिप्य पिधानं प्रविधाय च।

अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं यन्त्रं तत्कन्दुकं स्मृतम् ॥ ७६ ॥

अथवा भाण्ड के भीतर जलादिक भर करके मुख पर वस्त्र नहीं लगा कर तृण (घास फूस) भर देते हैं और उन तृणों पर स्वेदन करने योग्य वस्तु को रख कर सकोरे से मुख बन्द करके कपड़ मिट्टी से सन्धि बन्धन कर देते हैं तथा नीचे अग्नि जला देते हैं । इसको भी कन्दुक यन्त्र कहते हैं ॥ ७६ ॥

अथ खल्वयन्त्रम्—

खल्वयोग्या शिला नीला श्यामा स्निग्धा दृढा गुरुः ।
षोडशाङ्गुलकोत्सेधा नवाङ्गुलकविस्तरा ॥ ७७ ॥
चतुर्विंशाङ्गुला दीर्घा घर्षणी द्वादशाङ्गुला ।
विंशत्यङ्गुलदीर्घा वा स्यादुत्सेधे दशाङ्गुला ॥
खल्वप्रमाणं तज्ज्ञेयं श्रेष्ठं स्याद्रसकर्मणि ॥ ७८ ॥

खरल वनाने के लिये नीली अथवा कालेरंग की चिकनी, मज़बूत और भारी शिला (पत्थर) लेनी चाहिए । ऐसी शिला से १६ अङ्गुल ऊंची, ९ अङ्गुल चौड़ी और २४ अङ्गुल लम्बी खरल तथा उसमें घोटने की १२ अङ्गुल लम्बी घर्षणी वनवानी चाहिए । अथवा १० अङ्गुल ऊंची और २० अङ्गुल लम्बी खरल वनवाना चाहिए । इस तरह का खरल की लम्बाई चौड़ाई का प्रमाण पारद आदि के शोधन मर्दन संस्कारों के लिये ठीक होता है ॥ ७७–७८ ॥

अथ खल्वयन्त्रस्य त्रैविध्यनिर्देशः—

खल्वयन्त्रं त्रिधा प्रोक्तं रसादिसुखमर्दने ॥ ७९ ॥

रस आदि पदार्थों को अच्छी तरह सुखपूर्वक घोटने के लिये ३ प्रकार के खल्व यन्त्र कहे गये हैं ॥ ७९ ॥

द्विविधखल्वयोः सामान्यलक्षणम् ।

निरुद्गारौ सुमसृणौ कार्यौ पुत्रिकया युतौ ॥ ८० ॥

उनमें से दो प्रकार की खरलें स्पर्श में स्निग्ध तथा उनमें रखी हुई वस्तु घोटने से बाहर न गिर सके, ऐसी होनी चाहिएं । साथ में घोटने की घर्षणी (वत्था) भी चिकनी और योग्य प्रमाण की होनी चाहिए ॥ ८० ॥

अर्धचन्द्राकृतिखल्वनिर्देशः—

उत्सेधे स दशाङ्गुलः खलु कलातुल्याङ्गुलायामवान्
विस्तारेण दशाङ्गुलो मुनिमितैर्निम्नस्तथैवाङ्गुलैः ।

पाल्यां द्व्यङ्गुलविस्तरश्च मसृणोऽतीवार्द्धचन्द्रोपमो
घर्षो द्वादशकाङ्गुलश्च तदयं खल्लो मतः सिद्धये ॥ ८१ ॥
अस्मिन्पञ्चपलः सूतो मर्दनीयो विशुद्धये ।
तत्तदौचित्ययोगेन खल्लेष्वन्येषु योजयेत् ॥ ८२ ॥

१० अङ्गुल ऊंची, १६ अङ्गुल लम्बी, १० अंगुल चौड़ी और ७ अङ्गुल गहरी तथा किनारों की बनावट दो अङ्गुल चौड़ी और अर्ध चन्द्र के आकार की चिकनी खरल बनवावें तथा उसकी घर्षणी (मूसली) १२ अङ्गुल की बनवाना चाहिए । इस खरल को अर्धचन्द्र खरल कहते हैं । यह खरल रसादिकों की सिद्धि के लिये उत्तम है । इस खरल में शुद्धि के लिये ५ पल (२० तो०) पारद डालकर घोटना चाहिए । इसी तरह पारद की मात्रा के अनुसार छोटे या बड़े खरल बनवा कर उनमें योग्य मात्रानुसार पारद घोटना चाहिए ॥ ८१-८२ ॥

वर्तुलखल्लनिर्देशः ।

द्वादशाङ्गुलविस्तारः खल्लोऽतिमसृणोपलः ।
चतुरङ्गुलनिम्नश्च मध्येऽतिमसृणीकृतः ॥ ८३ ॥
मर्दकश्चिपिटोऽधस्तात्सुग्राहश्च शिखोपरि ।
अयं तु वर्तुलः खल्लो मर्दनेऽतिसुखप्रदः ॥ ८४ ॥

१२ अंगुल लम्बी और चौड़ी तथा ४ अंगुल गहरी, अत्यन्त चिकने पत्थर की और विशेष कर बीच के भाग में अत्यन्त चिकनी खरल बनवानी चाहिए तथा उसकी घर्षणी (मूसली) नीचे से चिपटी और ऊपर के भाग में उत्तम प्रकार से पकड़ने योग्य होनी चाहिए । इस को वर्तुलखल्ल कहते हैं । रसादिकों के घोटने में यह अत्यन्त उत्तम है ॥ ८३-८४ ॥

अथ तप्तखल्लप्रमाणनिर्देशः—

लौहो नवाङ्गुलः खल्लो निम्नत्वे च षडङ्गुलः ।
मर्दकोऽष्टाङ्गुलश्चैव तप्तखल्लाभिधोऽप्ययम् ॥ ८५ ॥

९ अङ्गुल लम्बी चौड़ी, ६ अङ्गुल गहरी लोहे की खरल और उसकी घर्षणी ८ अङ्गुल की बनवानी चाहिए । इसको तप्तखल्ल कहते हैं ॥ ८५ ॥

अथ तप्तखल्लविधिः—

कृत्वा खल्लाकृतिं चुल्लीमङ्गारैः परिपूरिताम् ।

तस्यां निवेश्य तं खल्लं पार्श्वे भस्त्रिकया धमेत् ॥ ८६ ॥
तदन्तर्मर्दिता पिष्टिः क्षारैरम्लैश्च संयुता ।
प्रद्रवत्यतिवेगेन स्वेदिता नात्र संशयः ॥
कृतः कान्तायसा सोऽयं भवेत्कोटिगुणो रसः ॥ ८७ ॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये यन्त्रनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

जिस आकार की लोहे की खरल बनी हो वैसा ही चूल्हा (भट्ठी) बनवा कर अङ्गारों (जलतेकोयलें) से भर देना चाहिए । फिर उस चूल्हे पर खरल को रख कर चूल्हे की अग्नि को पार्श्व से धौंकनी द्वारा प्रदीप्त करनी चाहिए । पश्चात् उस खरल में औषधियों के साथ घोटी हुई पारद की पिष्टी डालकर क्षार तथा अम्ल पदार्थों के साथ खूब घोटते रहना चाहिए । इस तरह स्वेदन करने से पारद की पिष्टी द्रवीभूत हो जाती है । यदि यह तप्त खरल साधारण लोह की न बनवा कर यदि कान्त लोह की बनवाई जाय तो उस में सिद्ध किया हुआ पारद करोड़ गुना अधिक फलप्रद हो जाता है ॥ ८६–८७ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्वलाख्यभाषाटीकायां यन्त्रनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः ।

अथ मूषादिकथनम्—

अथ मूषायाः पर्यायाः—

मूषा हि क्रौञ्चिका प्रोक्ता कुमुदी करहाटिका ।
पाचनी वह्निमित्रा च रसवादिभिरीर्यते ॥ १ ॥

रसशास्त्र के व्याखाताओं ने मूषा के क्रौञ्चिका, कुमुदी, करहाटिका, पाचनी और वह्निमित्रा ये इतने पर्याय शब्द (एकार्थ वाचक) कहे हैं ॥ १ ॥

अथ मूषाया निरुक्तिः ।

मुष्णाति दोषान्मूषा या सा मूषेति निगद्यते ॥ २ ॥

जो पारद आदि के दोषों को नष्ट करे उसको मूषा कहते हैं ॥ २ ॥

मूषाया उपादानम् ।

उपादानं भवेत्तस्या मृत्तिका लोहमेव च ॥ ३ ॥

मूषा का निर्माण लोह और मृत्तिका से होता है ॥ ३ ॥

अथ मूषाप्रशंसा—

मूषा मुखविनिष्क्रान्ता वरमेकापि काकिणी ।
दुर्जनप्रणिपातेन धिग्लक्षमपि मानिनाम् ॥ ४ ॥

मूषा के मुख से निकाली हुई (भस्म होकर) एक कोड़ी भी उत्तम है किन्तु दुर्जन की बन्दना करने से प्राप्त हुए लक्ष रुपये भी मानियों के लिये हेय हैं ॥४॥

विमर्श—काकिणीशब्द की चर्चा भिन्न २ शास्त्रों में इस तरह है 'वराटकानां दशकद्वयं तत् साकाकिणी' इति लीलावती। 'पणगण्डकयोस्तुर्ये उद्मानस्य काकिणी, इति रुद्रोक्तिः। काकिणी पणतुर्यांशे मानदण्डेऽपि दृश्यते। कृष्णलैकवराटयोः स्यादुन्मानस्यांशकेऽपिच ।। इति मेदिनी।

सन्धिलेपस्य पर्यायाः—

मूषापिधानयोर्बन्धे बन्धनं सन्धिलेपनम् ।
अन्ध्रणं रन्ध्रणं चैव संश्लिष्टं सन्धिबन्धनम् ॥ ५ ॥

मूषा और उसके आच्छादन करने के ढक्कन की सन्धियों को बन्द करने में 'बन्धन, सन्धिलेपन, अन्ध्रण, रन्ध्रण, संश्लिष्ट और सन्धिबन्धन इतने शब्द प्रयुक्त होते हैं ॥ ५ ॥

अथ मूषोपयुक्तमृत्तिका

मृत्तिका पाण्डुरस्थूला शर्करा शोणपाण्डुरा ।
चिराध्मानसहा सा हि मूषार्थमतिशस्यते ॥
तदभावे च वाल्मीकी कौलाली वा समीर्यते ॥ ६ ॥

मूषा बनाने के लिये जो मिट्टी लेते हैं वह पीली और मोटी (ज्यादा महीन न हो) या लाल और पाण्डु वर्ण की तथा रेत जिसमें मिली हो और जो बहुत देर तक तेज आंच को फूंकने से भी फटे नहीं ऐसी होनी चाहिए। इस तरह की मृत्तिका मूषानिर्माण करने के लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है। यदि उपर्युक्त लक्षणों वाली योग्य मिट्टी नहीं मिले तो उसके स्थान में दीमक अथवा कुम्हार के कार्य में आने वाली मिट्टी लेना चाहिए ॥ ६ ॥

मतान्तरम्—

या मृत्तिका दुग्धतुषैः शणेन शिखित्रकैर्वा हयलद्दिना च ।
लौहेन दण्डेन च कुट्टिता या साधारणा स्यात्खलु मूषिकार्थे ॥७॥

जलेहुए तुषों की राख (भूसी की राख), सनई, कोयले तथा घोड़े की लीद इन सव वस्तुओं को मिट्टी के वरावर लेकर उसमें मिला देवें, फिर एक लोहे के दण्डे से सवको खूब कूटकर वारीक कर लेना चाहिए। इस तरह की बनी हुई मृत्तिका मूषा बनाने के लिये साधारण तया ठीक होती है ॥ ७ ॥

मूषामृत्तिकायां संयोज्यद्रव्याणि—

श्वेताश्मानस्तुषा दग्धाः शिखित्राः शणखर्परे ।
लद्दिः किट्टं कृष्णमृत्स्ना संयोज्या मूषिकामृदि ॥ ८ ॥

सफेद पत्थर, जले हुए तुष, कोयले, सनई (शण), खर्पर (घटकपाल) का चूर्ण, घोड़े की लीद, मण्डूर, कालीमिट्टी, इतनी वस्तुएं मूषा बनाने की मिट्टी, में मिलानी चाहिए ॥ ८ ॥

अथ वज्रमूषा—

मृदस्त्रिभागाः शणलद्दिभागौ भागश्च निर्दग्धतुषोपलादेः ।
किट्टार्धभागं परिखण्ड्य वज्रमूषांविदध्यात्खलु सत्त्वपाते ॥ ९ ॥

मिट्टी के ३ भाग, सनई और लीद के दो भाग, जले हुए भूसे का १ भाग, श्वेत पत्थर का १ भाग, मण्डूर का आधाभाग, इन सब को अच्छी तरह कूट कर धातु वगैरके सत्त्व पातन करनेके लिये मूषा तैयार करें। इसको वज्रमू षा कहते हैं॥९॥

अथ योगमूषा—

दग्धाङ्गारतुषोपेता मृत्स्ना वल्मीकमृत्तिका ।
तत्तद्विडसमायुक्ता तत्तद्विडविलेपिता ॥ १० ॥
तया या विहिता मूषा योगमूषेति कथ्यते ।
अनया साधितः सूतो जायते गुणवत्तरः ॥ ११ ॥

जले हुए तुष और कोयलों की राख, दीमक के घर की मिट्टी, पाण्डुरस्थूलादि गुणों वाली मिट्टी और बिड़ (क्षार, अम्ल, गन्धक, लवण) इन सब पदार्थों को एकत्रित कर ओंखली में अच्छी प्रकार से कूट करके मूषा बना लेनी चाहिए। फिर इस मूषा को भीतर तथा वाहर से बिड़ के घोल से लिप्त करके सुखा लेनी

चाहिए। इस प्रकार से बनाई हुई मूषा के अन्दर सिद्ध किया हुआ पारद अत्यन्त देहसिद्ध्यादि गुणों को करने लायक हो जाता है। इसको योगमूषा कहते हैं॥१०-११॥

अथ वज्रद्रावणीमूषा—

गारभूनागधौताभ्यां शणैर्दग्धतुषैरपि ।
समैः समा च मूषा मृन्महिषीदुग्धमर्दिता ॥ १२ ॥
कौञ्चिका यन्त्रमात्रं हि बहुधा परिकीर्त्तिता ।
तया विरचिता मूषा वज्रद्रावणिकोचिता ॥ १३ ॥

तालाब का चिकना गारा (मिट्टी), केंचुओं का सत्त्व या उनकी मिट्टी, सनई, जले हुए तुषों की राख, इन सबको समान भाग लेकर तथा इनके बराबर मूषा बनाने की मिट्टी लेकर सबको एकत्रित करके भैंस के दुग्ध से घोट कर जिस यन्त्र में मूषा रखनी हो उस यन्त्र के अनुसार छोटी, बड़ी अनेक प्रकार की मूषा बनानी चाहिए। इस प्रकार की मूषा को वज्रद्रावणिका मूषा कहते हैं। यह मूषा हीरा आदि कठोर पदार्थों के द्रावण करने में उत्तम होती है ॥ १२-१३ ॥

अथ गारमूषा—

दुग्धषड्गुणगाराष्टकिट्टाङ्गारशणान्विता ।
कृष्णमृद्भिः कृता मूषा गारमूषेत्युदाहृता ॥
यामयुग्मपरिध्मानान्नासौ द्रवति वह्निना ॥ १४ ॥

जली हुई गार के ६ भाग तथा मण्डूर, कोयले, सनई ये प्रत्येक ८ भाग लेकर मूषोपयोगी काली मिट्टी में मिला कर के भैंस के दुग्ध में सबको खूब घोट कर मूषा बनानी चाहिए। इसको गारमूषा कहते हैं। यह गारमूषा दो प्रहर तक अग्नि में फूंकने से भी नहीं द्रुत होती है ॥ १४ ॥

अथ वरमूषा—

वज्राङ्गारतुषास्तुल्यास्तच्चतुर्गुणमृत्तिका ।
गारा च मृत्तिकातुल्या सर्वैरेतैर्विनिर्मिता ॥
वरमूषेति निर्दिष्टा याममग्निं सहेत सा ॥ १५ ॥

थूहर की लकड़ी के कोयले (या उनकी राख) और तुषों की राख ये दोनों समान भाग लेकर तथा इन दोनों से चौगुनी कालीमिट्टी तथा मिट्टी के बराबर

गारा (तालाब मृत्तिका) इन सब के द्वारा बनाई हुई मूषा को वरमूषा कहते हैं। यह एक प्रहर तक अग्नि को सहन कर सकती है ॥ १५ ॥

अथवर्णमूषा—

पाषाणरहिता रक्ता रक्तवर्गानुसाधिता ।
मृत्तया साधिता मूषा क्षितिखेचरलेपिता ॥
वर्णमूषेति सा प्रोक्ता वर्णोत्कर्षे नियुज्यते ॥ १६ ॥

कंकड़ और पत्थर से रहित तथा रक्तवर्ग की औषधियों (कुसुम्भपुष्प, कत्था, लाक्षा, मजीठ इत्यादि) के स्वरस या क्वाथ से घोटी हुई लाल रंग की मृत्तिका से एक मूषा बना कर उसको इन्द्रगोप (वीरबहूटी) अथवा भूनागसत्त्व या काशीश के चूर्ण से लिप्त कर देनी चाहिए। इसको वर्णमूषा कहते हैं। इस मूषा के अन्दर पारद या अन्य लोहादिकों की भस्म करने से उस भस्म का उत्कृष्ट वर्ण हो जाता है ॥१६॥

अथ रौप्यमूषा—

पाषाणरहिता श्वेता श्वेतवर्गानुसाधिता ।
मृत्तया साधिता मूषा क्षितिखेचरलेपिता ॥
रौप्यमूषेति सा प्रोक्ता वर्णोत्कर्षे नियुज्यते ॥ १७ ॥

पाषाण से रहित और श्वेतवर्ग की औषधियों (तगर, कुड़े की छाल, चमेली, श्वेतगुञ्जा इत्यादि वर्गोक्त) के स्वरस या क्वाथ से घोटी हुई श्वेत मिट्टी की मूषा बना कर उसको क्षितिखेचर के चूर्ण से लिप्त कर देनी चाहिए। यह रौप्यमूषा है। इसके अन्दर चांदी आदि की सिद्ध की हुई भस्म अत्यन्त श्वेत होती है ॥ १७ ॥

अथ विडमूषा—

तत्तच्छेदमृदोद्भूता तत्तद्विडविलेपिता ।
देहलोहार्थयोगार्थं बिडमूषेत्युदाहृता ॥ १८ ॥

भिन्न २ प्रकार की मूषोपयोगी मृत्तिका से मूषा बनाकर उसको क्षार, अम्ल या गन्धक, लवण इत्यादि भिन्न २ प्रकार के विड़पदार्थों से लिप्त कर देना चाहिए। इस को बिड़मूषा कहते हैं। इसका देह को लोह के समान दृढ करने वाले पारद या लोह आदि पदार्थों को सिद्ध करने के लिये उपयोग होता है ॥ १८ ॥

अथ वज्रद्रावणमूषा—

गारभूनागधौताभ्यां तुषमृष्टशणेन च ।

समैः समा च मूषामृन्महिषीदुग्धमर्दिता ॥ १९ ॥
क्रौञ्चिका यन्त्रमात्रे हि बहुधा परिकीर्त्तिता।
तया विरचिता मूषा लिप्ता मत्कुणशोणितैः ॥ २० ॥
बालाब्दध्वनिमूलैश्च वज्रद्रावणक्रौञ्चिका।
सहतेऽग्निं चतुर्यामं द्रवेण व्याधिता सती ॥ २१ ॥

तालाब का चिकना गारा १ भाग, केंचुओं का सत्त्व १ भाग, तुषों (भूसे) की राख १ भाग, कूटा हुआ सन १ भाग तथा इन सबके बराबर मूषा के लायक काली या नीली मिट्टी लेकर सब को एकत्रित कूट कर भैंस के दुग्ध में घोटें। फिर जिस प्रकार की आकृति (स्वरूप) वाले यन्त्र में रखना हो उस स्वरूप की मूषा बनाकर उसको खट्मल (मत्कुण) के रक्त से लिप्त कर सुखा लेवें। फिर उस को नवीन (हरे) कांटेदार चोलाई की जड़ के स्वरस या क्वाथ से अथवा सुगन्धवाला, नागरमोथा, अमरवेल (आकाशलता) के काढ़े से लिप्त कर सुखा लेनी चाहिए। फिर इसको द्रवपदार्थों से भरकर हीरा इत्यादि कठोर पदार्थों का इस में द्रव करते हैं। यह मूषा ४ प्रहर तक अग्नि को सहन कर सकती है। इस को वज्रद्रावणक्रौञ्चिकामूषा कहते हैं ॥ १९-२१ ॥

अथ मूषाऽऽप्यायनम्—

द्रवे द्रवीभावमुखे मूषाया ध्मानयोगतः।
क्षणमुद्धरणं यत्तन्मूषाऽऽप्यायनमुच्यते ॥ २२ ॥

मूषायंत्र में रखे हुए द्रवण होने योग्य लोह, रत्न आदि पदार्थ अग्नि के संयोग से फूंकने से जब द्रवित होने लगते हैं, उस समय उनको क्षण भर स्थायी करने के लिये चूल्हे पर से उतार लेते हैं। इस क्रिया को मूषाऽऽप्यायन कहते हैं ॥२२॥

अथ वृन्ताकमूषा—

वृन्ताकाकारमूषायां नालं द्वादशकाङ्गुलम्।
धत्तूरपुष्पवच्चोर्ध्वं सुदृढं श्लिष्टपुष्पवत् ॥ २३ ॥
अष्टाङ्गुलश्च सच्छिद्रं सा स्याद्वृन्ताकमूषिका।
अनया खर्परादीनां मृदूनां सत्त्वमाहरेत् ॥ २४ ॥

बैंगन (वृन्ताक या भण्टा) के समान आकार की मूषा बनाकर उसमें धत्तूरे के पुष्प के समान और दोनों प्रान्तभागों में छिद्रयुक्त ८ अङ्गुल की एक नलिका

जिस तरह पुष्प डण्ठल के साथ अच्छी तरह लगा रहता है उसी तरह अच्छी तरह से लगा देनी चाहिए। इसको वृन्ताकमूषा कहते हैं। इसके द्वारा कोमल खर्पर जैसे पदार्थों का सत्त्व निकाला जाता है ॥ २३-२४ ॥

अथ गोस्तनीमूषा—

मूषा या गोस्तनाकारा शिखायुक्तपिधानका।
सत्त्वानां द्रावणे शुद्धौ मूषा सा गोस्तनी भवेत् ॥ २५ ॥

जिस मूषा की आकृति (बनावट) गाय के स्तन के समान हो और उसका ढक्कन शिखा के समान नीचे से मोटा और ऊपर से पतला हो ऐसी मूषा को गोस्तनीमूषा कहते हैं। यह मूषा सत्त्वों के द्रवण करने और उनको शोधन करने के लिए उत्तम होती है ॥ २५ ॥

अथ मल्लमूषा—

निर्दिष्टा मल्लमूषा या मल्लद्वितयसम्पुटात्।
पर्पट्यादिरसादीनां स्वेदनाय प्रकीर्तिता ॥ २६ ॥

दो मिट्टी के सकोरों को परस्पर जोड कर कपड़मिट्टी से दोनों के मुख की सन्धि को बन्द कर देते हैं। इसको मल्लमूषा कहते हैं। यह मूषा पर्पटी तथा अन्य रसों के स्वेदन करने के लिये बनाई जाती है ॥ २६ ॥

अथ पक्वमूषा—

कुलालभाण्डरूपा या दृढा च परिपाचिता।
पक्वमूषेति सा प्रोक्ता पोट्टल्यादि विपाचने ॥ २७ ॥

कुम्हार के बनाये हुए भाण्ड (या उसके घट के लिये बनाये हुये भिन्न २ कपाल के) के समान आकृति की दृढ मूषा बना कर उसको अग्नि में पका लेनी चाहिए। इस को पक्वमूषा कहते हैं। यह मूषा हिरण्यगर्भ या रसगर्भ पोट्टली आदि के पकाने में काम आती है ॥ २७ ॥

अथ गोलमूषा—

निर्वक्रगोलकाकारा पुटनद्रव्यगर्भिणी।
गोलमूषेति सा प्रोक्ता सत्वरद्रवरोधिनी ॥ २८ ॥

मल्लमूषा के समान मूषा के दो गोल भाग पृथक् २ बनाकर उन में से एक में पुट देने योग्य पदार्थों को भर कर दोनों को परस्पर जोड़कर अच्छी तरह (मुख

पर छिद्र न रह जाय) बन्द करके कपड़मिट्टी कर देनी चाहिए। इसको गोलमूषा कहते हैं। यह मूषा अग्नि में उड़ने लायक द्रव हुए पदार्थों को बाहर नहीं उड़ने देती है। अथवा द्रव्यों को शीघ्र ही निर्मल कर देती ॥ २८ ॥

अथ महामूषा—

तले या कूर्पराकारा क्रमादुपरि विस्तृता।
स्थूलवृन्ताकवत्स्थूला महामूषेत्यसौ स्मृता।
सा चायोऽभ्रकसत्वादेः पुटाय द्रावणाय च ॥ २६ ॥

जो मूषा तल भाग में कूर्परसन्धि (एल्बो ज्वाइण्ट) के समान पतली हो तथा क्रम से ऊपर को विस्तृत (चौड़ी) होती जाय और बैंगन के समान मोटी (प्राय मध्य भाग में) हो उसको महामूषा कहते हैं। यह मूषा लौह, अभ्रक, इत्यादि धातुओं के सत्व को पिघलाने तथा पुट देने के लिये उत्तम होती है ॥२९॥

अथ मण्डूकमूषा—

मण्डूकाकारमूषा या निम्नताऽऽयामविस्तरा।
षडङ्गुलप्रमाणेन मूषा मण्डूकसंज्ञिका।
भूमौ निखन्य तां मूषां दद्यात्पुटमथोपरि ॥ ३० ॥

जो मूषा मेंढक के आकार के समान बीच में चोड़ी और दोनों भागों पर पतली हो तथा जिसकी लम्बाई और चौड़ाई ६ अंगुल हो ऐसी मूषा को मण्डूक मूषा कहते हैं। इस मूषा के अन्दर द्रव्य भर कर पृथ्वी में एक बिलस्त गहरी इसको गाड़ करके उसके ऊपर उपलों से पुट देवें ॥ ३० ॥

अथ मुसलाख्यमूषा—

मूषा या चिपिटा मूले वर्तुलाऽष्टाङ्गुलोच्छ्रया।
मूषा सा मूसलाख्या स्याच्चक्रिबद्धरसे हिता ॥ ३१ ॥

जो मूषा तल भाग में चपटी तथा ऊपर की ओर गोल स्वरूपवाली तथा ८ अंगुल ऊंची हो उसको मूसलाख्यमूषा कहते हैं। यह मूषा आगे स्त्री रोगाधिकार में कथित चक्रिबद्ध रस के बनाने में हितकर होती है ॥ ३१ ॥

अथ कोष्ठिकानिर्देशः—

सत्त्वानां पातनार्थाय पातितानां विशुद्धये।
कोष्ठिका विविधाकारास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ ३२ ॥

लोह, अभ्रक, रत्न आदि अनेक पदार्थों के सत्त्वों को निकालने के लिये तथा निकले हुए सत्त्वों की शुद्धि करने के लिये अनेक स्वरूप की कोष्ठिकाएं शास्त्र में कही गई हैं, उनके लक्षण नीचे लिखे जाते हैं ॥ ३२ ॥

अथ अङ्गारकोष्ठी—

राजहस्तसमुत्सेधा तदर्धायामविस्तरा ।
चतुरस्रा च कुड्येन वेष्टिता मृण्मयेन च ॥ ३३ ॥
एकभित्तौ चरेद्द्वारं वितस्त्याभोगसंयुतम् ।
द्वारं सार्धवितस्त्या च सम्मितं सुदृढं शुभम् ॥ ३४ ॥
देहल्यधो विधातव्यं धमनाय यथोचितम् ।
प्रादेशप्रमिता भित्तिरुच्चरङ्गस्य चोर्ध्वतः ॥ ३५ ॥
द्वारं चोपरि कर्त्तव्यं प्रादेशप्रमितं खलु ।
ततश्चेष्टिकया रुद्ध्वा द्वारसंधिं विलिप्य च ॥ ३६ ॥
शिखित्रैस्तां समापूर्य्य धमेद्भस्त्राद्वयेन च ।
शिखित्रान् धमनद्रव्यमूर्ध्वद्वारेण निक्षिपेत् ॥ ३७ ॥
सत्त्वपातनगोलांश्च पञ्च पञ्च पुनः पुनः ।
भवेदङ्गारकोष्ठीयं खराणां सत्त्वपातिनी ॥ ३८ ॥

राजहस्त (साधारण मनुष्य के हस्त से सवाया हस्त राजहस्त मानना चाहिए, प्रायः साधारण मनुष्य का हस्त २४ अङ्गुल लम्बा होता है और राजहस्त तीस अङ्गुल लम्बा माना जाता है, राजहस्त ही को प्रायः गजहस्त कहते हैं) के समान ऊंची और उसकी आधी अर्थात् पन्द्रह अङ्गुल चौड़ी तथा चार मिट्टी की भित्तियों से युक्त एक चोकोर कोष्ठी बनाकर उसकी एक भित्ति में बीच के भाग से कुछ ऊपरी भाग में एक बालिस्त (बेंत) या डेढ बालिस्त चौड़ा द्वार बनावें, तथा देहली के नीचे धौंकनी के द्वारा फूंकने के लिये उचित द्वार बनावें, फिर उस कोष्ठी के ऊपरी भाग में प्रादेश(१) के समान मोटी भीत्ति की छत बनाकर प्रादेश के समान चौड़ा एक द्वार छत में बनाकर ईंट से उसे ढककर सन्धिबन्धन कर देवें, फिर ऊपर के भाग में स्थित भित्ति के द्वार से कोयले तथा सत्त्वपातन

---

(१) अङ्गुष्ठ तथा तर्जनी अङ्गुली के मध्य के अवकाश को प्रादेश कहते हैं यथा—"अङ्गुष्ठस्य प्रदेशिन्या न्यासः प्रादेश उच्यते" ।